# श्रीकृष्ण-चरित

( पूर्वार्ध )

सुदर्शन सिंह

# श्रीकृष्ण-चरित

[ पूर्वार्ध ]

सुदर्शन सिंह

# दो शब्द

'एषु प्रवाहेषु स एव मन्ये क्षणोऽपि गण्य पुरुषायुषेषु ।
आस्वाद्यते यत्र कयापि वृत्त्या नीलस्य बालस्य निजं चरित्रम् ॥'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की 'श्रीकृष्ण-गीतावली' के उलटे-सीधे अनुवाद से लिखने का व्यवस्थित क्रम प्रारम्भ हुआ—यह कहना तो कठिन है; किंतु वृन्दावन पहुँचने पर त्रिभुवन-सुन्दर ( 'संकीर्तन' मेरठ के श्रीकृष्णचरिताङ्क का वास्तविक नाम ) ही पहली पुस्तक लिखी गयी और उसे लिखते-न-लिखते यह प्रतीत होने लगा कि चरित तो बहुत अपूर्ण रह गया है। उसे समाप्त करके उसी समय पुनः उद्योग में लगा, पर वह भी वैसा ही रहा। आज उस बात को चौदह-पंद्रह वर्ष होने को आये हैं। परिस्थितियों के प्रवाह में इतस्ततः लुढ़कते-लुढ़कते अस्त-व्यस्त जीवन में प्रायः सदा ही यह आकाङ्क्षा रही है हृदय में कि 'कहीं व्यवस्थित हो पाऊँ, ठीक समय मिले, तो गोविन्द का एक सुन्दर चरित्र लिख लूँ।' भला, कभी कोई इस विश्व में व्यवस्थित भी हुआ है ? यहाँ भी 'ठीक समय ?'

परिस्थिति-क्रम से ही यहाँ आया और इतनी सुविधा, इतना अनुकूल वातावरण क्या सदा ही प्राप्त होता है ? लेकिन प्रारम्भ करने के कुछ ही काल पश्चात् लगने लगा है—'यह तो बहुत अपूर्ण हो रहा है !' इससे संतोष के स्थान पर सदा अधूरेपन का बोध हुआ है और जब आज पूर्वार्ध के ये दो शब्द लिखने बैठा हूँ—'यह तो कुछ भी नहीं हुआ। इतने दिनों की आकाङ्क्षा, श्यामसुन्दर के इतने भुवनमोहन मङ्गलायतन चरित और उनका यह रूप—कुछ भी नहीं हुआ यह तो !' हृदय जैसे कुड़मुड़ कर रहा है। आज—आज भली प्रकार प्रतीत हो रहा है कि 'श्रीरामचरितमानस'-कर्ता ने क्यों अपने आराध्य के चरित के सम्बन्ध में कहा था—'सेस सहस मुख सकहिं न गाई।'

उस सच्चिदानन्दघन, नवजलधरसुन्दर, मयूरमुकुटी के मधुरिमामय मङ्गलचरित—नित्य नूतन हैं वे। कोई भी हृदय—कोई भी चित्त उस माधुर्य के अपार पारावार का एक सीकर भी ग्रहण कर ले—अहोभाग्य उसका ! और यहाँ तो जैसा चित्त मिला है—ठीक ही है, जो है, वही तो है अपने पास। इस चित्त में, इस मन में आता ही कितना क्षुद्रतम अंश है उस सुषमासिन्धु की मोहिनी क्रीड़ा का और जितना आता है, लेखनी कहाँ उसे भी व्यक्त कर सकती है। शब्दों में—इन काले-काले अक्षरों में मानस के भावों को बहुत छोटी ही टुकड़ी तो उतर पाती है ! हाथ मन के साथ दौड़ पाते—पर शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता ही बहुत अल्प है।

जो भी, जैसा भी हुआ, यह—उस वनमाली का चरित है। इसे लिखने में मुझे जो सुख मिला है—मेरे लिये महान् है इतना ही पुरस्कार ! न किसी से क्षमा माँगनी है और न कोई निवेदन करना है। यह श्याम का चरित—श्याम तो सभी का है न ! जो जिस रूप में देखे उसे, जैसे चाहे उसे, उसके लिये वह तो वैसा ही है। उस परम सत्य को लेकर वाणी जो भी कहे—भला, उसमें असत् आ कैसे सकता है। उस चिर-चपल का वर्णन तो होने से रहा; पर उसे लेकर जो कहा जाय—सभी तो उसमें सत्य ही है। फिर वे लेखनी से जो मैंने कागज़ काले किये हैं—अपने ही लिये किये हैं। 'स्वान्तः-सुखाय' के इस उद्योग में दूसरों से कहना भी क्या है।

श्रीमद्भागवत तो अपना उपजीव्य है। उसके कथा एवं भाव-बीज सुरक्षित रहें, भरसक ऐसा प्रयत्न किया है। अनेक स्थलों पर उलटा-सीधा अनुवाद करने का प्रयत्न किया है श्रीशुकदेवजी की पावन वाणी का। अन्यत्र कहीं से कुछ नहीं लिया है, यह बात तो नहीं है; पर मन में यह रहा है कि सात्वत-संहिता श्रीमद्भागवत से दूर न हो जाय कोई भी अंश। कौन जाने यह भावना कहाँ तक सफल हुई है। रही तुष्टि की बात, सो मन में तो वही है—'यह तो कुछ भी न हुआ!' क्या बस? अस्तु,—

'कमनीयकिशोरमुग्धमूर्तेः
कलवेणुक्वणिताद्दताननेन्दोः।
मम वाचि विजृम्भतां मुरारे-
र्मधुस्निग्धः कणिकापि कापि कापि ॥' —श्रीलीलाशुक

मंगलवार, ज्येष्ठ कृष्ण ८, सं० २००७ वि०
गीता बगीचा, गोरखपुर

सुदर्शनसिंह

उनको—

जो कन्हैया के हैं और कनू जिनका अपना है !

—सुदर्शन

# अध्याय-सूची


| | |
|---|---|
| १—माङ्गलिका | ३ |
| २—गोकुल | ८ |
| ३—मथुरा | १४ |
| ४—श्रीबलराम | २२ |
| ५—श्रीकृष्णचन्द्र | २८ |
| ६—कंस की कूटनीति | ३८ |
| ७—जय कन्हैयालाल की | ४४ |
| ८—वंदे नंदनंदनं देवं | ५३ |
| ९—पूतना-परित्राण | ६२ |
| १०—दुग्धपान | ७४ |
| ११—शकट-भञ्जन | ७८ |
| १२—नामकरण | ८५ |
| १३—भूमि का भाग्य | ९० |
| १४—व्रजराज के प्राङ्गण में | ९३ |
| १५—अन्न-प्राशन | ९९ |
| १६—तृणावर्त-त्राण | १०४ |
| १७—वर्षगाँठ | १०९ |
| १८—बालक्रीड़ा | ११३ |
| १९—मृद्-भक्षण | ११८ |
| २०—फल-विक्रयिणी | १२४ |
| २१—विप्र का सौभाग्य | १२८ |
| २२—व्रजजनानन्द | १३२ |
| २३—माखन-चोर | १३६ |
| २४—तस्कराणां पतये नमः | १३९ |
| २५—दामोदर | १४७ |
| २६—कर्ण-वेध | १५७ |
| २७—गोकुल-परित्याग | १६१ |
| २८—वृन्दावन | १६९ |
| २९—ऊधम | १७२ |
| ३०—गोदोहन | १७६ |
| ३१—गोपाल | १८१ |
| ३२—वेणु-वादन | १८६ |
| ३३—वत्सोद्धार | १९१ |
| ३४—बक-वध | १९५ |
| ३५—व्योम-वध | १९९ |
| ३६—अघ-अर्दन | २०३ |
| ३७—वन-भोजन | २१० |
| ३८—विधि-विडम्बना | २१४ |
| ३९—ब्रह्म-स्तुति | २२१ |
| ४०—गो-चारण | २२६ |
| ४१—कालिय-मर्दन | २३३ |
| ४२—धेनुक-वध | २४५ |
| ४३—दधि-दान | २५० |
| ४४—ढुण्ढा की होली | २५५ |
| ४५—प्रलम्ब का पाखण्ड | २५८ |
| ४६—दावानल-पान | २६३ |
| ४७—गोवर्धन-पूजन | २६९ |
| ४८—गिरिधर | २७५ |
| ४९—गोविन्द | २८३ |
| ५०—दिव्यदर्शन | २८८ |
| ५१—चीर-हरण | २९४ |
| ५२—विप्र-पत्नियाँ | ३०२ |
| ५३—मदन-विजय | ३१० |
| ५४—मान-भङ्ग | ३१९ |
| ५५—महारास | ३२८ |
| ५६—सुदर्शन-उद्धार | ३३३ |
| ५७—शङ्खचूड़-वध | ३३८ |
| ५८—अरिष्ट-संहार | ३४१ |
| ५९—केशी-वध | ३४६ |
| ६०—अक्रूर का आगमन | ३५१ |
| ६१—मथुरा-प्रस्थान | ३६० |
| ६२—नगर-दर्शन | ३७० |

६३—रजक-मोक्ष ३७४
६४—सुदामा माली ३७८
६५—कुब्जा पर कृपा ३८१
६६—धनुर्भङ्ग ३८४
६७—गजोद्धार ३८८
६८—मल्ल-मर्दन ३९२
६९—कंस-कदन ३९९
७०—पितृदर्शन ४०२
७१—यादव महाराज उग्रसेन ४०५
७२—बाबा की विदाई ४०९
७३—माता रोहिणी मथुरा को ४१३
७४—उपनयन ४१८
७५—गुरुकुल में ४२३
७६—गुरुपुत्रानयन ४३२
७७—कुब्जा ४३९
७८—उद्धव व्रज में ४४२
७९—श्रीराधा ४५८
८०—भद्र ४६२

# पृष्ठ-भूमि

"योऽस्योत्पेत्तक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः।
यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥"

—भागवत १०।८७।५०

हम जो कुछ देखते, सुनते, खाते, पीते, छूते या सोचते हैं—हमारा यह जगत् उतना ही नहीं है, यह तो प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है। हमारी इन्द्रियाँ बहुत थोड़ी शक्ति रखती हैं और हमने जो कुछ देख या सुनकर सीखा है, मन वही तो सोच सकता है। बड़े से बड़ा आज का वैज्ञानिक भी कहता है कि हम अब तक जो कुछ जान पाये हैं, वह अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एवं असीम ज्ञान-राशि का तुच्छतम भाग कहने योग्य भी नहीं है। जैसे स्थूल जगत् में हम अभी इस पृथ्वी के ही अनेक भागों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अन्धकार में हैं, असंख्य नक्षत्र-राशियों की अब तक कल्पना भी हममें नहीं है, वैसे ही ज्ञान की दृष्टि से भी हमारी शक्ति पङ्गुप्राय ही है। नित्य नवीन रहस्य सम्मुख आते हैं और हमें चकित, विमूढ़ कर जाते हैं। हमारे श्रेष्ठतम वैज्ञानिक अभी जीव की मरणोत्तर गति, जीव की सत्ता के विषय में कुछ नहीं जानते, जब कि स्थिति ऐसी नहीं है कि साहसपूर्वक वे उसे अस्वीकार कर सकें। हम जिन्हें असभ्य, बर्बर, जंगली कहते हैं, उन जातियों में अब भी कितने ऐसे चमत्कार हैं जो विज्ञान के लिये न सुलझने वाली पहेलियाँ ही हैं। वे नंगे पावों जलते अंगारों पर चलते, तथा शरीर में चाकू या कोई शस्त्र भोंक लेते हैं; किंतु न तो उनके अङ्ग जलते और न शरीर से रक्त निकलता है, वरं शरीर पर कोई चिह्न तक नहीं रह जाता शस्त्र हटा लेने पर। अफ्रिका, प्रशान्त महासागर के द्वीप तथा और भी दुर्गम काननों में रहनेवाले ये असभ्य लोग अपनी अनेक क्रियाओं में विज्ञान को चुनौती ही देते हैं। इन अज्ञात प्रान्तों की घटनाओं के अतिरिक्त समाचार पत्रों में जो अनेक आश्चर्यभरी घटनायें छपती हैं, उनका क्या अब तक समाधान हो सका है? कभी कहीं आकाश से रक्त की वर्षा का विवरण और कभी सागर में किसी प्रेत-जहाज का दर्शन! अमेरिका—जैसे सुसभ्य देश में भी ये प्रेत-जहाज पहुँच जाते हैं और बंदरगाह से तोप के गोले दागनेपर भी जब उनका पता नहीं लगता तब विध्वंसक दौड़ते हैं और जब वह जहाज सहसा अदृश्य हो जाता है, तब कहीं पता लगता है कि वह तो प्रेत-जहाज था। अस्तु, मेरा उद्देश्य इन अद्भुत घटनाओं का संकलन करना नहीं है। तात्पर्य इतना ही है कि हमें यह समझ लेना चाहिये कि हम जिस विश्व में हैं, जिसमें जीते, श्वास लेते, चलते-फिरते हैं, वह अनन्त रहस्यों से पूर्ण है। हम उसके सम्बन्ध में जो कुछ जानते हैं, वह ज्ञान नितान्त नगण्य है और कौन कह सकता है कि वह हमारी तथ्य-हीन कल्पना ही नहीं है। इतने पर भी जब हमारा दीप्त अहंकार कहता है—'यह कैसे, यह कैसे सम्भव है! यह हो नहीं सकता!' तो तर्क के जाल में हम अपने को उलझाकर सत्य से दूर ही करते जाते हैं; क्योंकि सत्य का पथ आस्था का पथ है। भारत की प्राचीनतम वाणी है कि जो भाव प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते, उनके विषय में तर्क करना निरर्थक है। आप्त वचनों पर आस्था करके ही उनका निर्णय हो सकता है।

## जगत् का मिथ्यात्व

आज हम अपने जिस जगत को देखते हैं, वह और उसके पदार्थ क्या हैं ? बहुत दिनों तक साठ, सौ या ऐसी ही कुछ निश्चित संख्या के परमाणु बताये जाते थे, जो पदार्थों के मूल कारण थे विज्ञान की दृष्टि में। आज परमाणु का भी विभाजन हो गया है और उसके केन्द्रीय अणु को भी तोड़ा जा सकता है, यह मान लिया गया है। परमाणु टूट गया—अतः मूल में कुछ संख्या में परमाणु हैं, यह धारणा तो गई; पर रह क्या गया ? शक्ति। परमाणु टूटने पर शक्ति को छोड़कर रह क्या जाता है। उष्णता, प्रकाश और शक्ति ये एक ही विद्युत् के अनेक रूप हैं, यह तो विज्ञान का सामान्य विद्यार्थी भी जानता है ! इस शक्ति से ही सभी पदार्थ घनीभूत हुए हैं और आइन्स्टीन का सापेक्षवाद बतलाता है कि पदार्थों की आकृति, लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई तथा उनके सब गुण केवल गति-सापेक्ष हैं। अर्थात किसी पदार्थ में जो रूप, आकार, गुण आदि दीख पड़ते हैं—वे वस्तुतः नहीं हैं। वे तो गति के एक विशेष रूप में होते रहने के परिमाणस्वरूप प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार यह समस्त दृश्यमान जगत है नहीं—प्रतीत हो रहा है और यह प्रतीति गति-सापेक्ष है। विज्ञान का यह सापेक्षवाद स्थूल प्रयोगों से सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त है। यद्यपि भारतीय दर्शन के 'जगत के मिथ्यात्व' वाले सिद्धान्त से इसका पर्याप्त अन्तर है, फिर भी हम देखते हैं कि किस प्रकार विज्ञान हमें उसके समीप लिये जा रहा है।

दृश्यमान जगत गति-सापेक्ष है और उसका मूल है शक्ति—परमाणु के टूट जाने पर जो शक्ति बचती है, वही शक्ति; फिर उसे विद्युत् या और कोई भी नाम क्यों न दिया जाय। यह शक्ति या इसके पीछे भी कुछ हो तो वह परम मूल जड है या चेतन ? विज्ञान के पास इसका अभी तक कोई उत्तर नहीं। डार्विन का विकासवाद और हक्सले का जडाद्वैतवाद आज पिछले युगों के अशुद्ध तर्क हो गये हैं। समाज में और पाठशालाओं में इनकी चाहे जितनी महिमा हो, आइन्स्टीन-जैसे महान वैज्ञानिकों के समाज में अब इनका कोई महत्व नहीं। आज वैज्ञानिकों ने भली प्रकार शोध करके देख लिया है कि किसी भी प्राणी में कृत्रिम रूप से अथवा अकस्मात् जो विशेषता लाई जाती है, वह प्रकृति को सह्य नहीं। प्रकृति उसे उसकी संतति में कदापि आने नहीं देती। अतः विकास-क्रम से प्राणियों की रचना सम्भव नहीं। इसी प्रकार अनुकूल भूमि एवं जलवायु में भी बिना बाहर से बीज आये वर्षों तक एक तृण भी उग नहीं पाता। परमाणु कभी भी जीवाणु नहीं बनता, अतः मूल सत्ता जड है—इस धारणा के लिये कोई भी स्थान नहीं है। जीवाणु वर्षों तक जड अणुओं की भाँति सुप्त रह सकते हैं और उन्हें परमाणु से भिन्न करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है। अभी जीवाणु का विभाजन परभाणु की भाँति सम्भव नहीं हुआ है और होगा भी, यह आज के महत्तम वैज्ञानिकों के लिये भी संदिग्ध है; पर वे स्पष्ट कहने लगे हैं कि मूलसत्ता चेतन ही जान पड़ती है, यद्यपि यन्त्रों के लिये वह सदा अज्ञेय रहेगी। बात यही ठीक है—नियम है कि दो सर्वथा विपरीत धर्मवाले तत्वों का सम्पर्क सम्भव नहीं होता। जड स्थूल यन्त्र चाहे जितने भी परिष्कृत क्यों न हों, वे चेतन से, जो उनसे सर्वथा विपरीतधर्मी है, सम्पर्क नहीं कर सकते। हम बुद्धि और मन से चाहे मनन करें अथवा विज्ञान के यन्त्रों से अन्वेषण, हमारा मार्ग 'नेति नेति' का मार्ग ही रहेगा। ये आन्तरिक एवं बाह्य साधन प्राकृतिक हैं। इनसे प्रकृति का ही ग्रहण होगा; किन्तु निपुण समीक्षा से प्राकृत तत्वों का मिथ्यात्व सिद्ध होता जायगा। इनसे सत्य का साक्षात्कार होने से रहा। अवश्य ही उसके सम्बन्ध में अनुमान हो सकता है।

## जगत् की भावरूप सत्ता

वस्तुओं का रूप, रंग, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई, आकार, परिमाण आदि सब सापेक्ष हैं—गति-सापेक्ष ! इनमें से कोई भी सत्य अथवा तथ्य नहीं है, यह तो सापेक्षवाद ने ही सिद्ध कर दिया है; पर पदार्थों का मूल क्या है ? क्यों गति इतने विविधरूपों में व्यक्त हुई ? परमाणु

के विभाजित होने पर जो शक्ति रह जाती है, वह परमाणु और उससे पदार्थ बनी ही क्यों ? विज्ञान अभी इसका उत्तर दे नहीं सका है। मूलतत्व चिन्मयरूप, चेतन है—यह अनुमान ही हो सकता है विज्ञान द्वारा; पर जो मूलतत्व है—जब वही अज्ञात है, तब उससे यह दृश्यमान जगत् कैसे बना, यह पता कैसे लग सकता है ? पदार्थ सत्य हैं, इस प्रकार जड की सत्ता स्वीकार करके उनकी छानबीन करने के मूल में ही भूल है। जब मूलतत्व चेतन है, तब उसे चेतन के कार्यों से ही ढूँढना चाहिये। जड के द्वारा—जो केवल एक सापेक्षिक भ्रम प्रमाणित हो चुका—उस चित् को कैसे पाया जा सकता है। भ्रान्ति में सत्य का अन्वेषण भ्रान्ति ही तो देगा।

चेतन के अन्वेषण के लिए हमें दूर नहीं जाना है। हम, आप, सब चेतन ही तो हैं। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'—जो हममें है, वही ब्रह्माण्ड में है। हमने जिस जगत् की सृष्टि की, पदार्थों को जो रूप हमने दिया, वह रूप कहाँ से आया ? हमारे मन में भाव उठा, क्रिया हुई और तब बाहर वह रूप प्रकट हुआ। कुम्हार जो घड़ा बनाता है, चित्रकार जो चित्र बनाता है, वह सब बाहर प्रकट होने से पूर्व उसके भाव में होते हैं। उन रूपों की पूर्ण सत्ता भाव में विद्यमान है।

हमारे संकल्प शक्तिहीन हो गये हैं, हम स्थूलरूपों में इतने असक्त हो गये हैं कि बिना किसी स्थूल आधार के हमारा भाव स्थूलरूप धारण नहीं कर पाता; किन्तु हम देखते हैं कि निपुण बाजीगर कोई पदार्थ न होने पर भी केवल अपने संकल्प से पदार्थों की प्रतीति बहुसंख्यक दर्शकों को करा देता है। बाजीगर के संकल्प मात्र से दर्शकों को उस पदार्थ के रूप, रंग, गन्ध, स्वाद, परिमाणादि सबकी प्रतीति होने लगती है। यदि बाजीगर अपने मनोबल से किसी पदार्थ की प्रतीति कुछ क्षणों के लिये पूर्णतः करा सकता है तो उससे अत्यधिक मनोबल सम्पन्न व्यक्ति कुछ वर्षों तक के लिये भी पदार्थ को व्यक्त कर सकता है और हमारे समस्त पदार्थ कुछ वर्षों की ही तो आयु रखते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों के वर्णन ग्रन्थों में बहुत हैं और अब भी ऐसे व्यक्तियों के यदा-कदा मिलने में किसी आस्थायुक्त व्यक्ति को संदेह न होगा, जो पदार्थ को स्थायी रूप से प्रकट कर सकते हैं या दूसरे पदार्थ के रूप में बदल सकते हैं। ऐसा वे अपने दृढ़ मनोबल से ही तो करते हैं। शरीर के छोटा-बड़ा करने, अदृश्य होने, पदार्थ व्यक्त करने, अदृश्य करने, रूपान्तरित करने आदि-आदि सिद्धियों के समस्त वर्णन असत्य हैं—ऐसा कहने वाला कुतार्किक ही कहा जायगा। पर प्रश्न यह है कि ऐसे अवसरों पर स्थूल परमाणुओं का क्या होता है ? परिमाण, आकार कहाँ जाते हैं ? यदि इस मन का पत्थर दो तोले का, छोटा-सा हो गया तो उसका शेष आकार और परमाणु गये कहाँ ? यदि हम इस पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि पदार्थों का यह स्थूल रूप ही बाजीगर के दिखाये पदार्थों की भाँति केवल मानसिक है। इनके रंग-रूप-परिमाण सब मानसिक हैं। स्वप्न में देखे पदार्थ, बाजीगर के दिखाये पदार्थ और जगत् के पदार्थ—इनमें तथ्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। केवल इनके स्थायित्व का अन्तर ही हमें भ्रम में डालता है। अन्यथा सिद्धि का तत्व ही यह है कि समस्त जगत् भावरूप है। जगत् का स्थूल रूप जड प्रतीति के रूप में मिथ्या है और भावरूप में सत्य है। यह भाव ही स्थूल जगत् की अभिव्यक्ति का मूल है।

भाव एक ही व्यक्ति में कितने आ अकते हैं, आते हैं, इसकी संख्या करना कठिन है; किन्तु भाव होते हैं चेतन के। हममें—हमारे मन में चाहे जितने भाव आते हों, पर हम एक ही हैं। हमें उतने रूपों में विभक्त नहीं किया जा सकता और यदि व्यक्तियों के स्थूल शरीरादि में आबद्ध अहंकार को निकाल दें तो 'अहं' का पार्थक्य रह नहीं जाता। तब एक ही सत्ता रह जाती है और वह चेतन है। इसे हम यों भी समझ सकते हैं कि जो भाव हमारे मन में आते हैं, वेही दूसरे के मन में भी आ सकते हैं। यदि भावों की उद्गमरूप चित् सत्ता एक ही नहीं है तो ऐसा कैसे सम्भव है।

## एक सच्चिदानन्द सत्ता

पदार्थ भावरूप हैं, यह तो ठीक; पर भाव क्या हैं? हमारा मन भावों का निर्माण करता है, यह कहना कठिन है। क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे मन में वही भाव आ सकता है, जिसे हमने बाहर देखा या सुना हो। स्वप्न में भी हम बाहर के संस्कारों को ही मूर्त रूप में देखते हैं, फिर चाहे वे कितने ही अस्तव्यस्त क्यों न हों। लेकिन एक बात स्मरण रखने की है कि ज्ञान बाहर से नहीं आता। बाह्यशिक्षा केवल भीतर के ज्ञान को जाग्रत करने के लिये निमित्त बनती है और इसी मान्यता के आधार पर बालकों की प्रवृत्ति के अनकूल शिक्षा का सिद्धान्त स्थिर होता है। दूसरे, तुकाराम प्रभृति ऐसे अनेक संत हुये हैं, जिन्हें बाह्य शिक्षा अत्यल्प या सर्वथा नहीं प्राप्त हुई और फिर भी उनका ज्ञान लोकोत्तर सिद्ध हुआ। यदि ज्ञान बाह्य उपकरणों से ही प्राप्त हो सकता हो तो ऐसा कभी सम्भव नहीं था। यही बात सिद्ध कर देती है कि हमारे भीतर जो चित् सत्ता है, वह ज्ञानमयी है और उसको किसी बाह्य उपकरण की आवश्यकता नहीं है ज्ञान के लिये।

सत्ता है और वह ज्ञानमयी है; पर एक वस्तु अभी रही जाती है और वह है सुख। समस्त प्राणियों का प्रयत्न सुख—आनन्द के लिये है और बिना विस्तार किये भी यह समझना कठिन नहीं होना चाहिये कि पदार्थों में सुख हो तो एक ही पदार्थ सबको सुख दे सकता। जैसे बाह्य उपकरण हमारे अन्तर्ज्ञान को जाग्रत् करने के निमित्त बनते हैं, वैसे ही वे हमारे भीतर के सुख को भी जाग्रत् करते हैं। सुख-आनन्द भी भीतर से ही आता है और तब उस मूलसत्ता को सच्चिदानन्द रूप में पहिचानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

यह प्रत्येक व्यक्ति का दैनिक अनुभव है कि चञ्चलता से, व्यग्रता से हमारा ज्ञान विस्मृत होता है, हमारा आनन्द लुप्त होता है। स्थिरता—एकाग्रता में ही हम अपने ज्ञान एवं सुख को उपलब्ध कर पाते हैं। समस्त साधन इसी मानसिक स्थिरता की प्राप्ति के लिये ही होते हैं। यदि सत्ता स्वतः चञ्चल हो तो चञ्चलता में भी उसके ज्ञान एवं आनन्द रूप की उपलब्धि हो सकती; और सीधी बात तो यह है कि जो एक ही सत्ता है और सर्वव्यापक है, उसमें गति कैसे सम्भव है। सत्ता यदि व्यापक न हो तो हम यह कैसे आशा करेंगे कि सर्वत्र हम भावों को उपलब्ध कर सकेंगे। लेकिन हम चाहे जहाँ जायँ, हमारी चेतना में अन्तर नहीं आता; अतः सत्ता व्यापक ही माननी होगी और तब वह एकरस, निर्विकल्प भी सिद्ध ही है।

## सगुणसत्ता

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वतसत्ता है—यह तो ठीक; किंतु हमारे इस जगत् का प्रश्न इतने से ही हल नहीं होता। पदार्थ चाहे इस रूप में सत्य हों या भावरूप में; पर इनमें भेद क्यों है? जगत् में इन नाना रूपों, नाना आकृतियों की प्रतीति कैसे होती है? इसे अज्ञानजन्य विवर्त—भ्रम कहना कुछ बहुत संगत नहीं है। हम स्पष्ट जानते हैं कि अज्ञान भेद का कारण नहीं हुआ करता। उलटे, भेद तो ज्ञान से बढ़ते हैं। अन्धकार में समस्त वस्तुएँ एकाकार हैं, रंगज्ञानहीन अंधे के लिये सभी रंग एक से हैं; जो संगीत-शास्त्र नहीं जानता, उसके लिये सभी आलाप केवल पें-पें हैं; पर जो इन विषयों को जितना जानता है; उसे इनमें उतने ही सूक्ष्म भेदोपभेद प्रतीत होते जाते हैं। दूसरे, भ्रम का भी आधार होता है। शास्त्र कहते हैं कि संसार मिथ्या है—रस्सी में सर्प की भाँति, सीप में चाँदी की भाँति और विज्ञान भी कहता है कि पदार्थों की सत्ता केवल आपेक्षिक प्रतीति है। हम ऊपर कह आये हैं कि पदार्थ इस रूप में असत् हैं, प्रतीति मात्र हैं; उनकी सत्ता केवल भावरूप है; पर सीप में चाँदी या रस्सी में सर्प तभी प्रतीत होगा, जब हमें पृथक् रूप से सीप, चाँदी, रस्सी, सर्प की सत्ता उपलब्ध हो। भ्रम का आधार और रूप दोनों अस्तित्व रखते हैं, उनकी अन्यत्र प्रतीति ही भ्रम कही जाती है। जिस 'शशशृङ्ग' का अस्तित्व

ही नहीं, उसका भ्रम भी कहीं सम्भव नहीं। तब यह जो विश्व में अनेकता की प्रतीति है, इसका आधार सत्य क्या है? यदि यह यहाँ मिथ्या है तो सत्य कहाँ है?

भाव और पदार्थों के नानात्व के अतिरिक्त एक वस्तु है शब्द—वाणी। ज्ञान तो हमारे भीतर से आता है; पर उसे प्रकट करने के जो शब्द हैं, वे हम दूसरों से ही सीखते हैं। भाषा हम सुनकर-पढ़कर ही पाते हैं। जो लोकोत्तर ज्ञान सम्पन्न संत हुए हैं, उन्हें भी अपनी ही भाषा से काम चलाना पड़ा है। भाषा के मूल रूप में परिवर्तन नहीं होता, उसके बाहरी रूप ही बदलते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई शब्द बना नहीं सकता, जिसके पर्यायवाची शब्द पहिले से ही प्रचलित न हों और यदि ऐसा शब्द बना भी सके तो वह निरर्थक होगा; क्योंकि बिना पहिले से पर्याय-बोध हुए कौन कैसे समझेगा उसे। मैक्समूलर आदि पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों ने भी माना है कि भाषा के मूलरूप में सृष्टि की आदि से अब तक एक नूतन 'धातु' भी नहीं बढ़ी। भाषा एक आन्तरिक साधन है, जो अपने अर्थ के साथ प्राप्त हुई है। हम वेदों को इसीलिये श्रुति कहते हैं कि वे अनादि हैं, उनका कोई निर्माता नहीं। सृष्टिकर्ता को भी वे श्रवण-परम्परा से ही प्राप्त हुए हैं। इतनी महान् वस्तु है। वही हमारी वाणी हमारे समस्त भावों की मूल है; क्योंकि भाव भी तो शब्दरूप में ही मन में आते हैं। किंतु यह वाणी स्वतः प्राप्त नहीं होती, यह किसीसे प्राप्त हुई है। वाणी का यह साधन देनेवाला भी तो होगा ही और इतनी विविध अर्थ, धातु, भावमयी वाणी देने वाला क्या निर्विशेष, निर्गुण ही होगा?

जहाँ तर्क की गति न हो, उन अचिन्त्य विषयों में तर्क का सहारा लेना व्यर्थ एवं भ्रामक ही होता है। शास्त्र ही वहाँ प्रमाण होते हैं। यदि थोड़े-से शब्दों में शास्त्रों का तात्पर्य उद्धृत करे तो वह इस प्रकार होगा—

## नित्यधाम और देवजगत्

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत सत्ता है। उसी के दो रूप हैं—एक निर्गुण, निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, अचिन्त्यानन्त सद्गुणगणों का धाम स्वरूप। ये दोनों स्वरूप एक के ही हैं और अभिन्न हैं। उस एक सगुण स्वरूप की भी अनेक मूर्तियाँ हैं। उन लीला-विग्रहों के धाम हैं, वहाँ वे अपने स्वरूपभूत नित्य पार्षदों के साथ लीला-विहार करते हैं। ये धाम, पार्षद आदि सब नित्य, चिन्मय हैं। इनमें वही निर्गुण तत्व सगुण रूपों में नाना होकर नित्य क्रीड़ा करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है, वैसे ही ये सगुण स्वरूप भी अपने धाम, पार्षदादि के साथ सर्वत्र व्यापक हैं। सभी सगुण स्वरूप, सभी लीलाएँ सदा सर्वत्र व्याप्त हैं। देश-काल की कल्पना वहाँ नहीं जाती। वस्तुतः तो जैसे स्वप्न का देश और काल है, जैसे वहाँ स्थान न होने पर भी अनन्त देश है और क्षण में ही युग बन जाते हैं, वैसे ही हमारा यह जाग्रत् का देश-काल भी है। हमारी कल्पना का—हमारा देश-काल उसी प्रकार उस चिन्मय धाम एवं रूप की क्रीड़ा में अस्तित्वहीन है, जैसे जाग्रत् में स्वप्न का देश-काल।

वह शाश्वत सत्य शक्ति एवं शक्तिमान्—उभय स्वरूप है। शक्ति और शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भी भिन्न, और भिन्न होकर भी अभिन्न हैं। वस्तुतः ये अभिन्न ही हैं, उनका भेद क्रीड़ा के लिये ही है। यह भेद वैसे ही अभेदरूप है, जैसे निर्गुण एवं सगुण का भेद होकर भी अभेद। इसी भेद से निर्गुण एवं सगुण शक्तिमान् सत्-चित्-आनन्द तत्वशक्ति के रूप में त्रिधा होकर संधिनी, संवित् और ह्लादिनी रूप में स्थित है। सगुण स्वरूपों की भाँति ये शक्तियाँ भी परस्पर तथा शक्तिमान् से भी अभिन्न ही हैं।

*"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"*

व्यापक तत्व के एक पाद—एकांश में ही मायाशक्ति का आवरण है और उसी में अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। तीन पादों में योगमाया का विस्तार है। वहाँ नित्यधाम हैं, जहां निर्गुण व्यापक तत्व अपनी ह्लादिनी शक्ति के साथ सगुण-साकार होकर क्रीड़ा करता है। शक्तिमान् के सगुण रूप

के अनुसार ही वे चिन्मयधाम हैं और उसी के अनुरूप उस एक ही ह्लादिनी शक्ति के राधा, सीता, लक्ष्मी, उमा, त्रिपुरा आदि नाम तथा रूप हैं।

व्यापक तत्व के सत्, चित्, आनन्द जहाँ चिन्मय नित्य धाम में त्रिधा नित्य होकर शक्ति-स्वरूप मूर्तिमान् हैं, वे ही माया में क्रमशः तम, रज एवं सत्वगुण का नाम पाते हैं। ये ही त्रिगुण स्थूलता, ज्ञान एवं क्रिया (गति) तथा सुख का रूप लेते हैं जगत् में और व्यष्टि में समस्त मनो-भावों के त्रिविध मूल के रूप में मिलते हैं। सत्व हममें अनुराग—प्रेम और विकृत होने पर काम-राग-लोभ आदि बनता है। रज यदि शुद्ध हो तो ज्ञान, वैराग्य, धर्म एवं कर्तव्यनिष्ठा बनता है, विकृत होने पर क्रोध, द्वेष, हिंसा का रूप धारणकरता है; तथा तम शुद्ध रूप में शान्ति के और विकृत होने पर प्रमाद, मोह, अज्ञान के रूप में व्यक्त होता है। बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्—सभी इन्हीं तीन मूल भावों के विकार हैं। समस्त भाव इन्हीं तीनों के नाना रूप हैं और भाव स्वरूप पदार्थ भी इन्हीं के परिणाम हैं। प्रकृति नित्य इन तीनों गुणों से युक्त रहती है।। सत्वगुण निर्मल होने से पहिले दिव्य जगत् की उसी में अभिव्यक्ति होती है। दिव्य (सत्वात्मक) जगत् ही मूल सृष्टि है। जैसे सूर्य से किरणें, किरणों से प्रतिबिम्ब; वैसे ही नित्यधाम से भावस्तर और उनसे दिव्य जगत्।

## हमारा जगत्

जगत् का कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं, जो उस अचिन्त्यमहाशक्ति लीलामय की लीलाओं के सम्बन्ध में पूर्णतः घटित होता हो। सभी उदाहरण अपूर्ण संकेतमात्र करके रह जाते हैं। यही दशा इस बिम्ब-प्रतिबिम्ब वाद की है। अस्तु, जैसे एक ही बिम्ब से अनन्त प्रतिबिम्ब हो सकते हैं, वैसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और उनके दिव्य जगत् हैं। जैसे व्यष्टि में हमारे समस्त मनोभाव त्रिगुणात्मक हैं, वैसे ही समष्टि भी त्रिगुणात्मक ही है और सत्व, रज, तम के अधीश्वररूप से प्रत्येक ब्रह्माण्ड की स्थिति, उत्पत्ति एवं संहार के लिये उसी दिव्यजगत् में स्थित अखिलेश अंशरूप से ब्रह्माण्डों में विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्ररूप से अवस्थित होता है। ब्रह्माण्डों के ये अधीश्वर—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अनन्त हैं और आदिनारायण या भगवान् महाशिव से इनका रूपसाम्य भले हो, ये हैं केवल उनके अंशांश मात्र ही।

ये प्रतिबिम्ब कहाँ हैं? नित्य चिन्मय धामों को आवेष्टित किये विरजा का चिन्मय प्रवाह है। वही प्रतिफलित होता है कारणार्णव में और सउ कारणार्णव में वे अनन्तशायी अपने ही स्वरूपभूत अनन्त की शेषशय्या पर शयन करते हैं। वह कारणार्णव ही इन अनन्त ब्रह्माण्डों का बीज है और उसी में ये नन्हे बुलबुलों की भाँति उठते और विलीन होते रहते हैं। इन बुद्बुद्-रूप ब्रह्माण्डों में दिव्य लोकों का प्रतिरूप प्रतिफलित होकर देवजगत् के रूप में व्यक्त होता है और जैसे व्यक्ति में मन के समस्त भावों के पीछे चित् सत्ता है, वैसे ही ब्रह्माण्डों में देवजगत् का भी नियन्त्रण, समस्त ब्रह्माण्ड के संचालकरूप से नित्यधाम की अपनी संधिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तियों के अंशांश सहित अपने अंशांश रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेशस्वरूपों में वे ही सर्वेश करते हैं।

हमारा यह स्थूल जगत् भावरूप है, जैसे जल में पड़े सूर्य के प्रतिबिम्ब की छाया दर्पण में पड़ी है। देव जगत् ही हमारे भाव जगत् का अधिष्ठाता है। यों समझ लीजिये कि हम कोई भाव उत्पन्न नहीं करते। जैसे रेडियो का यन्त्र जिस स्तर में शब्द ग्रहण करने की स्थिति में रखा जाय, उसी स्तर के शब्द वह ग्रहण करने लगता है, स्वयं उसका कोई शब्द नहीं, वैसे ही हमारा मन भी स्वयं कोई भाव उत्पन्न नहीं करता। भावों के अनन्त स्तर हैं। मन जिस स्तर में पहुँचता है, उस स्तर की बातें मन में स्फुरित होने लगती हैं। प्रत्येक भाव देवजगत् से सम्बन्धित है, उसके अधिष्ठाता कोई एक देवता हैं। क्योंकि स्थूल जगत् की बाह्य सत्ता केवल भावरूप है, अतः सभी पदार्थों के शास्त्रों ने अधिष्ठाता देवता माने हैं। हमने मकान बनाया और जब मकान बन गया, उसके अधिष्ठाता देवता की हम पूजा करते हैं। बात यह है कि भावरूप में मकान पहिले हमारे मन

में आया, तब बाहर आया। भाव नित्य है, उसके अधिष्ठाता ही उस भावस्तर के अधीश्वर हैं; अतः जब भाव स्थूलरूप में प्रकट हुआ, उस स्थूलरूप के भी वे ही अधीश्वर एवं संचालक हैं, भले यह स्थूलरूप हमारे मन एवं कार्यों के माध्यम से व्यक्त हुआ हो।

दिव्य जगत् भावरूप से देव जगत् में आया और देवजगत् से वह भावस्तर होकर स्थूल जगत् के रूप में व्यक्त हुआ। प्रतिबिम्ब में सदा ही बिम्ब का कुछ सादृश्य और अपनी विकृति भी होती है। सूर्य के प्रतिबिम्ब में अल्पता, चञ्चलतादि अपने होते हैं और प्रकाश तथा उष्णता बिम्ब के अंश। दुःख, रोग, शोक, विकृति आदि जगत् के अपने विकार हैं और ज्ञान, सत्ता, आनन्द, भाव, अनुरागादि दिव्य गुण उस मूल बिम्ब के अंशलेश।

स्थूल जगत् का यह आकृतिभेद, यह नानात्व—इसका मूलाधार तो नित्य दिव्यधामों की विविधता ही है। अवश्य ही ये रूप बहुत विकृत रूप में यहाँ हमें दीखते हैं; क्योंकि पदार्थ की छाया में अनेक प्रकार के आकृतिभेद तथा प्रकाशहीनता आदि दोष आते ही हैं। फिर भी ये छाया हैं; अतः इनमें सादृश्य भी हैं ही, वह सादृश्य चाहे कितना भी अल्प क्यों न हो। किसी भी भाव का नैष्ठिक आलम्बन भगवान के दिव्यरूप का साक्षात्कार करा सकता है। भगवान् अनुरागी आराधक को उसके भाव के अनुरूप रूप में ही दर्शन देते हैं और भगवान का वह रूप तत्काल धारण किया हुआ रूप नहीं होता। उनके सभी रूप नित्य हैं, यह शास्त्र कहते हैं और तब यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् चिन्मय दिव्य रूपों के मूलाधार में ही भावों का उद्गम है। ऐसा कोई भाव सम्भव नहीं, जो उनके नित्य रूप से उद्भूत न हुआ हो; क्योंकि प्रत्येक भाव की परिणति उनके तदनुरूप नित्यरूप की प्राप्ति में होती है।

## जीव की स्थिति

एक ही तत्व—निर्गुण और सगुणरूप और उसके दोनों रूप व्यापक, नित्य, चिन्मय, सच्चिदानन्दघन। सगुण स्वरूप शक्ति-शक्तिमान रूप से अभिन्न होकर भी लीला के लिये भिन्न। सगुणरूपों के अनन्त नित्य चिन्मय धाम। नित्य धामों के भावस्तर, उनसे देवजगत् और देवजगत से स्थूल जगत् के भावस्तर और फिर भावरूप स्थूल जगत्। इस सब क्रम में जीव की कहाँ क्या स्थिति है, यह और शेष रह गया है।

हम जहाँ भी घड़ा बना देंगे, वहीं आकाश का एक अंश उसमें घटाकाश बन जायगा। ब्रह्माण्डों में वही सगुण विभु अपने अंशांश से त्रिदेव हुआ और उसी का अंश भावरूप देहों में जीव बना है। विभुरूप से तो वह सर्वत्र है ही और सर्वसमर्थ रूप से भी वह प्रत्येक जीव के साथ अन्तर्यामीरूप से है। उसके नित्यलोक के पार्षदों के अंशांश ही जब जीव हैं—वे ही जीव हैं भावरूप पिण्डों में और तब उनका नित्यसखा वहाँ से पृथक् कैसे रह सकता है। श्रुति कहती है—

*"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"*

प्रत्येक पिण्ड में, चाहे वह देवशरीर हो या कोई कीटदेह, विभु चेतन के अतिरिक्त भी द्विविध चेतन सत्ता है—एक तो उस पिण्ड का अभिमानी प्रारब्धप्रेरित जीव और दूसरा सर्वसमर्थ अन्तर्यामी। उस नित्यदिव्य धाम के ये प्रतिरूप दृश्य और इनमें ये जीव—जैसे इस माया में प्रतिफलित वे सत्, चित्, आनन्द इन तम, रज एवं सत्व गुण के रूप में प्रतिभासित हुए; जैसे उस नित्यलोक की चिन्मय आकृतियों की यहाँ ये भावरूप छाया-परिणतियाँ इन कुत्सित नश्वर रूपों में प्रकट हुईं; वैसे ही इन आकृतियों के अधिष्ठाता जीव भी इन आकृतियों में 'अहं, मम' के दृढ़ बन्धन से आबद्ध हो गये। यह 'अहं' और 'मम' की आसक्ति उन्हें अपने कर्मों से संश्लिष्ट किये हुए है और अनादि काल से कर्म विवश जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े वे नाना योनियों में भटक रहे हैं। अविद्या के द्वारा वे भ्रान्त हुए हैं और अपने समीप ही स्थित अपने नित्य सहचर उस अन्तर्यामी की ओर नहीं देख पाते, जो सदा समुत्सुक है उन्हें अपना लेने के लिये।

## अवतार

इस मायिक जगत् में जीव तो अनादिकाल से भटक रहे हैं। देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी, कीट, तृण आदि—पता नहीं किन-किन, योनियों में अपने ही कर्मों के परिणामस्वरूप वे जन्म लेते और प्रारब्ध समाप्त होने पर फिर दूसरे शरीर धारण के लिये पहिले शरीर को छोड़ देते हैं; किंतु कभी-कभी वे सर्वेश भी अपने विविधरूपों में यहाँ आते हैं। उनके अवतारों की कोई मिति—इयत्ता नहीं; फिर भी उनके कुछ निश्चित अवतार भी हैं, जो अपने समय पर होते हैं।

जीव अविद्यालिप्त होकर इस संसार में भटक रहा है। उदाहरण के लिये हम उसे दहकते कोयले की अग्नि कह सकते हैं, जिसमें कोयले से पृथक् अग्नि का ग्रहण सम्भव नहीं; पर भगवान् अपनी योगमाया का आश्रय करके स्वेच्छा से पधारते हैं। वे जीव की भाँति कर्मवश जन्म नहीं लेते और न जीव की भाँति प्रारब्ध-परतन्त्र उनका चरित होता है। वे अपनी इच्छा से ही इस स्थूल जगत् में अपने को व्यक्त करते हैं। अपनी इच्छा से ही लीलाओं को प्रकट करते हैं और अपनी इच्छा से ही सबका तिरोभाव कर लेते हैं। दीपक की ज्योति-कलिका जैसे शुद्ध अग्नि है, उसमें दीपक, बत्ती या तेल का अंश नहीं, वैसे ही—उससे कल्पनातीत विशुद्ध रूप में भगवान् का अवतार-विग्रह सच्चिदानन्दघन होता है। उसमें न पञ्चभूतों का स्पर्श, न स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों का भेद और न माया का स्पर्श ही होता है। वह तो एकरस घन सच्चिदानन्द है। श्रीविग्रह ही नहीं, भगवान् के वस्त्र, आभरण, आयुध, माल्य आदि सब अमायिक चिन्मय तत्व ही होते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि सर्वेश के सभी साकार विग्रह अपने धामादि के साथ विभु हैं और वे कभी मायिक जगत् में आते नहीं हैं। प्रभु कृपापूर्वक कभी इस जगत् के किसी अंश में अपनी लीला व्यक्त कर देते हैं, स्थूल जगत् से अपने दिव्य जगत् का सामञ्जस्य कर देते हैं और जब चाहते हैं, उस लीला को तिरोहित कर लेते हैं। ललितोपाख्यान में एक कथा है—किसी राजा के पास देवर्षि नारद के आने पर राजा ने पूछा कि आप इस समय कहाँ हैं? मेरे मानस जगत में स्वप्न-कल्पना की भाँति स्थित हैं या बाह्य जगत् में दृश्य सत्ता की भाँति? देवर्षि ने कहा—'मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ। तुम्हारे लिये तो तुम्हारे स्थूल जगत् में ही हूँ; क्योंकि तुम अपने सभी पदार्थों से मेरी पूजा कर रहे हो और मैं उसे स्वीकार कर रहा हूँ। तुम मुझे स्वप्न की भांति असत् नहीं कह सकते; किन्तु मैं तुम्हारे स्थूल जगत् में भी नहीं हूँ। मैं अपने ही देश-काल में हूँ और तुम्हारे लिये ही मैंने इच्छापूर्वक अपने देश-काल का तुम्हारे देश-काल से सम्बन्ध कर दिया है; लेकिन यदि यहाँ कोई दूसरा मनुष्य आवे तो वह मुझे नहीं देख सकेगा। वह मुझे छू भी नहीं सकेगा। क्योंकि मैं अपने ही देश-काल में हूँ। इतना ही नहीं, तुम जो पदार्थ मुझे दोगे, मैं जब उसे ले लूँगा तब वे पदार्थ मेरे देश-काल में आने के कारण उस मनुष्य के लिये अदृश्य एवं सत्ताहीन होते जायँगे।' भगवान् भी इसी प्रकार नित्य अपने ही चिन्मय धाम में रहते हैं और अवतार के समय केवल अपनी इच्छा से उस नित्यधाम को इस स्थूल जगत् में व्यक्त कर देते हैं। उनकी जो लीलाएँ यहाँ होती दीखती हैं, वस्तुतः वे उनके उसी धाम में होती हैं और इसीलिये उस लीला भूमि का समस्त स्थल, सभी प्राणी, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि दिव्य ही होते हैं। इसीलिये वहाँ इतनी अद्भुत बातें होती हैं कि उन सबको स्थूल जगत में घटित करते समय हमारी बुद्धि भ्रान्त हो जाती है और उसे हम कल्पना कहने लगते हैं।

## अवतार क्यों?

अन्ततः अवतार होते ही क्यों हैं? क्या आवश्यकता है उस आत्मकाम आनन्दघन सर्वेश को कि वह इस मायिक जगत् में आता है? क्यों अपनी लीला यहाँ व्यक्त करता है वह? इसका [ उत्तर तो गीता में उसने स्वयं दिया है—

*'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*
*अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥*

*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।*
*धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥'*

'धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः'—धर्म ही लोकों को धारण करनेवाला है। वही समस्त प्रजा को स्थित रखता है और जब धर्म का ह्रास होने लगता है, अधर्म बढ़ जाता है, लोग धर्म के तत्व को भूलकर अधर्म में लग जाते हैं, छल, कपट, दम्भ, हिंसा, संघर्ष, अशान्ति, दुःख से विश्व पूर्ण हो जाता है, वह करुणामय—वह जीवों का नित्य सुहृद् यह कष्ट, यह व्यथा अपने सुहृदों की सह नहीं पाता। वह प्रत्येक युग में धर्म की रक्षा के लिये अवतार लेता है। स्वयं तप करके, धर्माचरण करके धर्म की वृद्धि करता है। उसके नर-नारायण, कपिल आदि ऐसे ही अवतार हैं, जो लोक की मङ्गल-कामना से, लोक की स्थिति के लिये तपोरत हैं। जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के रूप में जगत की सृष्टि, स्थिति, संहार के लिये प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थित है, वही यदि लोक की स्थिति के लिये स्वयं धर्म को पुष्ट करता है तो क्या आश्चर्य ।

उसे अनेक कारणों से आना पड़ता है। मुख्यतः वह आता है साधुओं के परित्राण के लिये। जब उसके लाड़ले भक्त उसे पुकारते हैं, उसके लिये व्याकुल होते हैं और उसे यहीं देखना चाहते हैं, यहीं उसके साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं तो उनकी तुष्टि के लिये वह आता है। उसके यदि लोक-मङ्गल भुवन-पावन चरित न हों तो कैसे जीव का त्राण हो, साधु—सत्पथगामी जीवों का कल्याण हो। वे उसके दिव्य रूप, पावन गुण एवं मङ्गलमय चरितों का ध्यान, चिन्तन, श्रवणादि करके इस अविद्या के दुःखमय चक्र से छूट जायँ, इसलिये वह अपनी लीलाओं को यहाँ व्यक्त करता है और उसकी सभी लीलाएँ ऐसी ही परम पावनी हैं।

जब तप, धर्माचरणादि से कोई इतना प्रबल हो जाता है कि स्थूलजगत् एवं देवजगत् की भी कोई शक्ति उसे दबा नहीं सकती और तप आदि से प्राप्त उस शक्ति के बलपर वह मर्यादाओं का नाश करके लोक को त्रस्त करने लगता है, तब भी सर्वेश का अवतार होता है। दुर्मद, प्रबलतम उस दुष्ट का नाश करके जगत् में शान्ति की स्थापना के लिये वे पधारते हैं। वाराह, हयशीर्ष, नृसिंहादि उनके दुष्ट-दलनार्थ हुए अवतार हैं ।

जीव अल्पशक्ति हैं। तुच्छ बुद्धि है उनकी। जीवों में एक मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है और मनुष्य बिना सिखाये कुछ सीखता ही नहीं। प्रकृति अधोगामिनी है। सभी मायिक पदार्थ ह्रासोन्मुख ही रहते हैं। मनुष्य का ज्ञान भी क्षीण होता जाता है। दीर्घकाल में वह भूल ही जाता है श्रुति-शास्त्रानुमोदित ज्ञान एवं धर्माचरण को। बार-बार उसे सिखाना पड़ता है। बार-बार धर्म की स्थापना करनी पड़ती है भ्रान्त, अबोध मनुष्य के लिये और इस प्रयोजन से भी उन सर्वेश का अवतार होता है। वे व्यास, नारद, सनकादि, मनु, प्रजापति आदि के रूप में धर्मसंस्थापन के लिये युग-युग में पधारते ही रहते हैं ।

## अवतार-भेद

जो सर्वेश है, सर्वसमर्थ है, वह कब, कैसे, कहाँ प्रकट होगा, इसका कोई नियम नहीं हो सकता। वह किस मूर्ति में आवेगा, कौन कह सकता है। लेकिन इस जगत् के नियम हैं और वे अटल-प्राय हैं। जगत् के ह्रास-उत्थान, युग-परिवर्तन आदि सभी उन नियमों के अनुसार होते हैं। यद्यपि वह निखिल-नियन्ता किसी नियम के परवश नहीं; फिर भी जब जगत् में युगादि का निश्चित काल है, इसके ह्रासोत्थान का समय है, तब इसमें कब दुष्टों के दमन, धर्मस्थापनादि की आवश्यकता होगी, इसका भी समय है और उन समयों पर सर्वेश जिन रूपों में प्रकट होते हैं, उन रूपों को युगावतार कहा जाता है। ये युगावतार अपने-अपने युगों में प्रायः होते ही हैं। वामन, नृसिंह, परशु-राम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि आदि युगावतार माने हैं शास्त्रों ने और श्रीकृष्ण तो अट्ठाईस मन्वन्तरों के पश्चात् कलि एवं द्वापर के संधिकाल में पधारे थे। इन चिर-चपल के आने का कोई समय कैसे निश्चित हो सकता है।

संसार की स्थिति के अधीश्वर भगवान नारायण हैं—ब्रह्माण्ड के अधीश्वर भगवान विष्णु। अतः सभी अवतार उनके अंश ही माने जाते हैं; क्योंकि अवतार होने का कारण ही जगत् में मर्यादा, धर्मादि की स्थापना तथा दुष्टों का नाश है। लेकिन इस अंश का यह अर्थ नहीं कि अवतार-विग्रह पहिले नहीं था और भगवान् विष्णु ने अंशरूप में वह शरीर धारण किया। भगवान के सभी रूप, सभी लीलाएँ नित्य हैं। अवतार-विग्रह भी नित्य हैं। वे नित्य रूप में ही भगवान विष्णु के अंश हैं और जब स्थिति के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु को प्रतीत होता है कि जगत में अवतार-विग्रह के प्राकट्य की आवश्यकता है, उनकी इच्छा से ही आवश्यकता के अनुरूप उस नित्य अवतार-विग्रह का जगत् में आविर्भाव हो जाता है। यह तो हुई सामान्यतः अंशावतार की बात; किंतु कभी-कभी वे लीलामय परात्पर पुरुष भी जगत के जीवों पर दया करके स्वयं जगत् में पधारते हैं। वे साकेत से श्रीरामरूप में पधार सकते हैं, गोलोक से श्रीकृष्णरूप में व्यक्त हो सकते हैं या और किसी नित्यधाम से उसके अनुरूप रूप में। जब यह पूर्णावतार होता है, उस समय जो भगवान विष्णु का अंशावतार—युगावतार होने वाला होता है, वह भी उसी पूर्णरूप में मिल जाता है। उदाहरण के लिये श्रीकृष्णचन्द्र का यह पूर्णावतार था। श्रीमद्भागवतकार ने ही कहा—'कृष्णस्तु भगवान स्वयम' और फिर 'सितकृष्णकेशः' भी आता है। श्री वसुदेवजी ने जो सायुध, साभरण चतुर्भुज मूर्ति देखी—वह युगावतार, श्रीनारायण का अंशावतार हो सकता है और द्वारिका में अर्जुन के साथ क्षीरसागरशायी के सम्मुख जाने पर उन भूमा पुरुष ने श्री कृष्णचन्द्र को अपना अंश बताया भी; पर—

*'एते चांशकला पंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'*

के सम्बन्ध में विचार करें तो उपर्युक्त अंशावतार से पृथक् परात्पर-पूर्णावतार का भी व्याख्यान भागवत ही करता है और तब स्वतः यह बात स्मरण होती है—

*"नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।*
*ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥"*

आत्मभूत ज्ञानियों के लिये भी दुर्लभ ये गोपकुमार श्याम-सुन्दर ही परात्पर पूर्ण तत्व हैं, यह कहाँ संदिग्ध रह जाता है और वे तो नित्य नन्द-नन्दन हैं। मथुरा और द्वारिका से उन्हें प्रयोजन भी क्या। शास्त्र ही कहते हैं कि वे व्रज को छोड़कर एक पद भी बाहर नहीं जाते। व्यक्त व्रजलीला-काल में भगवान् विष्णु के जो युगावतार उनमें अन्तर्हित थे; उन्होंने ही मथुरा एवं द्वारिका के चरित पूर्ण किये और यह उन्हीं स्थिति-स्थापक के उपयुक्त था। लीलाविहारी गोपाल को इन बातों में क्या रस! अस्तु,

दिव्यलोकाधीश, नित्यलीलाविहारी, परात्पर, परतत्व भगवान स्वयं कब पधारेंगे, कोई नहीं कह सकता। वे किसी धाम से, अपने किसी दिव्यरूप में आ सकते हैं; पर जब भी वे आवेंगे, उस समय के युगावतार उनमें अन्तर्भूत हो जायँगे। इसके अतिरिक्त ये युगावतार या अंशावतार भी पूर्ण ही हैं। उस अनन्त पूर्ण का कोई अंश अपूर्ण नहीं होता। जिस अवतार को जगत् में जितनी शक्ति, ऐश्वर्यादि के उपयोग की आवश्यकता होती है, उतनी ही शक्ति या ऐश्वर्य प्रकट होता है उस अवतार में और इस प्रकट हुई शक्ति के अनुसार ही अंश की कल्पना की जाती है; किंतु उस अवतार-विग्रह में उतनी ही शक्ति है, यह सोचना तो भ्रम ही नहीं, अपराध भी होगा। सभी सर्वथा पूर्ण अचिन्त्यशक्ति एवं ऐश्वर्यमय ही होते हैं; भगवान् के रूप और उनमें तत्वतः कोई भी भेद हुआ नहीं करता। भेद तो केवल बाह्यप्रतीति मात्र है।

अवतारों की अभिव्यक्ति के अनुसार भी दो भेद अवतारों के किये जाते हैं—ऐश्वर्यावतार एवं लीलावतार। मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंहादि भगवान के अवतार ऐश्वर्यावतार हैं। इन अवतारों में न कोई उनकी माता है और न कोई पिता। वे अपने ऐश्वर्य से ही प्रकट हो गये और फिर अवतार का प्रयोजन पूरा होने पर अन्तर्हित भी हो गये। श्रीराम, श्रीकृष्णादि भगवान के लीलावतार हैं। इनमें भगवान् नरलीला का अनुकरण करते हैं। वे वात्सल्यादि रसों के सम्यक् आस्वादन के लिये

माता-पिता बनाकर ठीक सामान्य शिशु की भाँति जन्म-ग्रहण की लीला करते हैं। यद्यपि सामान्य शिशु की भाँति उन सर्वेश का गर्भवास या माता के उदर से जन्म नहीं होता, उनका आनन्दघन चिन्मय श्रीविग्रह पिता-माता के रज-वीर्य से बना नहीं होता; किंतु वे वात्सल्य की पूर्ण पुष्टि के लिये ठीक जन्म का ही अनुकरण करते हैं और माता उन्हें अपना उदरजात तथा पिता औरस पुत्र ही मानते हैं।

## एक साथ अनेक अवतार

एक बात अवतार-विग्रह के सम्बन्ध में और जान लेने की है कि एक ही समय भगवान् के अनेक रूपों में अवतार हो सकते हैं और उनके परस्पर सम्बन्ध के वचन भी शास्त्रों में मिल सकते हैं। जैसे नर-नारायण—ये भगवान् के आदि युग के अवतार हैं और कल्पान्त तक लोक-मङ्गल के लिये तप करते हुए वे स्थित रहेंगे। महाभारत में अनेक स्थानों पर अर्जुन और श्रीकृष्ण को नर-नारायण का अवतार कहा गया है। भगवान् के श्रीविग्रह सभी नित्य हैं; अतः उनका अमुक अवतार ही अमुक हुआ, इसका यह अर्थ नहीं कि पहिला रूप अब नहीं है और वही दूसरे रूप में हो गया। नर-नारायण ही अर्जुन-श्रीकृष्ण हैं या श्रीराम ही द्वापर में श्रीकृष्ण हुए—इसका यह अर्थ नहीं कि द्वापर में श्रीकृष्ण के अवतार धारण करने पर श्रीनारायण या श्रीराम के मङ्गल-विग्रह नहीं रहे। वे मङ्गल-विग्रह तो शाश्वत हैं। श्रीराम ही श्रीकृष्ण हुए—इसका तात्पर्य इतना ही है कि दोनों परस्पर अभिन्न तत्व हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं। जैसे हम कहते हैं कि जो तत्व निर्गुण निराकार है, वही अपने चिन्मय धाम में निखिल दिव्य सद्गुणगणैकधाम साकार है, ठीक इसी प्रकार श्रीनारायण और श्रीकृष्ण का, श्रीराम और श्रीकृष्ण का अथवा और किन्हीं अवतारों का एकत्व बताया जाता है। वैसे उनके श्रीविग्रह तो सभी नित्य हैं और उनमें से स्थूल जगत् में एक साथ अनेक श्रीविग्रह व्यक्त रहें, इसमें कुछ भी असम्भाव्य या अद्भुत नहीं है।

भगवान् मूर्त जगत् में एक साथ अपने अनेक रूपों से प्रकट रहें, इसमें तो आश्चर्य की कोई बात है ही नहीं। भगवान् के नित्यपार्षद तथा उनके परम प्रिय अनुरागी जीव भी एक साथ अनेक रूपों से जगत् में रह सकते हैं। ऐसे भगवत्कृपाप्राप्त अनुग्रह-समर्थ जीव अपने अंश रूप से विश्व में एक या एकाधिक रूपों में रहते और उन-उन रूपों के अनुरूप कार्य करते हैं। उनके ये सब रूप वास्तविक होते हैं, कायव्यूह या इन्द्रजाल के समान नहीं होते। उदाहरण के लिये देव-माता अदिति और प्रजापति महर्षि कश्यप कल्पान्त अमर हैं और अब भी हैं। श्री वसुदेव-देवकीजी पूर्वजन्म में कश्यप-अदिति थे, यह बात स्वयं भगवान् ने ही कही है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कश्यप-अदिति अब वसुदेव-देवकी हो गये तो कश्यप-अदिति नहीं रहे। सामान्य जीव एक शरीर का त्याग करके ही दूसरा जन्म ले सकता है; किंतु अनुग्रह करने में समर्थ भगवान् के निज जनों के लिये ऐसी बात नहीं है। वे संसार में कर्म-पराधीन होकर तो जन्म लेते नहीं। वे तो भगवान् की इच्छा से भगवान् की लीला में योग देने आते हैं; अतः वे एक साथ अपने अंशरूप से अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में, अनेक प्रकार के चरित करते हुए रह सकते हैं। भगवान् के समान ही उनके पार्षद भी अपने सगुण साकार रूप में ही विभु हैं, यह बात पहिले कही जा चुकी है।

## नित्यपार्षद और पार्षदजीव

हमारा स्थूलजगत् उस चिन्मय नित्यधाम का ही प्रतिबिम्ब है, भले वह देवजगत् के माध्यम से प्रतिफलित हुआ हो, और यहाँ इन भावरूप शरीरों में जो चेतन जीव हैं, वे उन नित्य धाम के पार्षदों के ही अंशांश हैं—यह बात पहिले स्पष्ट कर दी गयी है। अविद्या के परिमाणरूप इस विकारी दुःखमय प्रपञ्च में आसक्ति करके 'अहं' 'मम' के सम्बन्ध से आबद्ध जीव अपने ही कर्मों के चक्र में पड़ा नाना उच्च-नीच योनियों में अनादि काल से भटक रहा है। इस कर्मचक्र के छुटकारे का उपाय यही है कि या तो वह ज्ञानमार्ग का आश्रय लेकर अपने 'अहं' के अभिमान को सर्वात्मा

में एक कर दे और अपनी सत्ता को विभु, निर्गुण, निर्विकल्प सत्ता में विलीन कर दे; अथवा किसी एक भाव का आश्रय करके, उसमें दृढ़ निष्ठा से एकाग्र होकर उस भाव के मूल के साक्षात् सम्पर्क में आवे और तब चिन्मय धाम में उसका अपना जो वास्तविक रूप है, उसे पहिचान ले। जहाँ उसने अपने उस वास्तविक रूप को पहिचाना, जहाँ उसे अपनी उस वस्तुस्थिति का पता लगा, अविद्या के तुच्छ आवरण उसे आबद्ध रखने में स्वतः असमर्थ हो जायँगे। वह अपने नित्य करुणासागर सेव्य से तब पृथक् रह नहीं सकता। धन्य होता है वह क्षण जब विश्व के त्रयताप में संतप्त कोटि-कोटि जन्मों से भ्रान्त जीव अपने नित्यधाम की स्थिति को जानता और अपने अंशी, अपने नित्य पार्षद-देह के साथ एकत्व प्राप्त करता है।

जब वे सच्चिदानन्दघन अवतार-विग्रह में प्रकट होते हैं, उनका चिन्मय धाम और उनके नित्य पार्षद भी पधारते हैं। ये पहिले, साथ या पीछे तक भी लीलानुरूप क्रम से जगत् में व्यक्त होते हैं। इस समय जगत् के असंख्य कृतकृत्य जीव अपने इन अंशियों से एक होने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। जैसे कभी वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी धरा ने घोर तप किया और उनकी एकमात्र इच्छा थी कि वे सर्वेश को पुत्ररूप में प्राप्त करके उनका लालन-पालन करें। उनमें वात्सल्य-भाव हो। भगवान् ब्रह्मा ने उन्हें वरदान दे दिया। गोकुल में वे ही द्रोण गोपराज नन्द हुए और धरा हुई व्रजेश्वरी यशोदा, यह श्रीमद्भागवत का कहना है। श्रीकृष्ण नित्य नन्दनन्दन हैं और उनकी बालक्रीड़ा उनके चिन्मय धाम में शाश्वत है अतः व्रजराज नन्दबाबा और व्रजेश्वरी मैया यशोदा तो नित्य हैं उस चिन्मय नित्य गोलोक में। अवतार के समय जैसे भूमि के व्रज में वह दिव्य लोक मूर्त हो गया, वैसे ही नित्य व्रजराज एवं व्रजरानी के साथ द्रोण एवं धरा ने एकत्व प्राप्त किया। यह तो एक उदाहरण मात्र है। श्रीकृष्णचन्द्र को वात्सल्य, सख्य, माधुर्य के भावों से अपना करके अनुभव करनेवाले और भी अनन्त जीव होंगे और उन्होंने अपने अंशी उन-उन भावों के नित्य आधार पार्षदों के साथ तादात्म्य प्राप्त किया होगा। यह तादात्म्य तो सभी लीलावतारों के समय और सर्वदा ही चलता है। सदा ही जीव भाव के आश्रय से उस भाव के नित्याधार दिव्यलोकस्थित अपने अंशी पार्षद के साथ एकत्व प्राप्त करता है। यह क्रम अवतार के प्रकट होने और अन्तर्हित होने पर भी समान रूप से चलता है; क्योंकि तादात्म्य प्राप्त करने के अधिकारियों के लिये तो उनके आराध्य तथा आराध्य का धाम एवं लीलाएँ नित्य व्यक्त—नित्य प्रत्यक्ष ही हैं।

## प्राकृत दृष्टि

भगवान् के नित्य चिन्मय दिव्य अवतार-चरितों को जो लोग सामान्य मानव-चरितों की सीमा में ही आबद्ध करना चाहते हैं; जो उन सर्वसमर्थ लीलामय की लीलाओं को भी अपने-जैसे साधारण व्यक्ति की ही क्रियाएँ मानने का प्रयत्न करते हैं, वे उन दिव्यचरितों का भौतिक जीवन में अनेक स्थलों पर कोई सामञ्जस्य नहीं कर पाते। उनकी बुद्धि भ्रान्त होती है और तब वे अनेक लीलाओं के पीछे की कल्पना करते हैं अथवा उसका कोई और अर्थ करने का प्रयत्न करते हैं। वे भगवच्चरित्र को मानवचरित के चाहे जितने उच्चस्तर से देखें, अन्ततः उस अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्य-धाम को अपने तुच्छ आदर्श में कहाँ तक परिसीमित कर सकते हैं। तब या तो अनेक दिव्य चरितों को वे अस्वीकार कर देते हैं या बड़ी सचाई से पूरे चरित को ही 'अन्तर्द्वन्द्व का रूपक' कहकर संतोष कर लेते हैं। तब वे यह स्वीकार ही नहीं करते कि इसी धरापर वह दिव्य चरित कभी प्रकट हुआ था। क्योंकि उनकी कल्पना का क्षेत्र भी इतना संकुचित होता है कि चरित की अलौकिकता उसमें समा नहीं पाती।

'पुराण-व्याख्या त्रिधा—आधिभौतिकी आधिदैविकी आध्यात्मिकी च।' पुराण की तीन प्रकार की व्याख्याएँ हुआ करती हैं—१-आधिभौतिकी अर्थात् सत्य इतिहास, २-आधिदैविकी अर्थात् देवजगत् से सम्बन्धित और ३—आध्यात्मिक अर्थात् अन्तर्जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ नित्य दिव्य लोकों में है, वही भावस्तर के रूप में ब्रह्माण्ड

में प्रतिफलित होता है। यही अध्यात्म तथ्य है और यही भावस्तर में या देवजगत् में मूर्त होकर अधिदेव बनता है। देवजगत् अर्थात् अधिदेव ही फिर भावरूप से अधिभूत के रूप में व्यक्त हुआ अर्थात् स्थूल जगत् बना। अतः यह तो सम्भव है कि स्थूल जगत् से देवजगत् में और देवजगत् से नित्य भगवद्धामों में अपार विस्तार एवं बाहुल्य हो और ऐसा है ही; पर यह सम्भव नहीं कि जो नित्य धाम में नहीं, वह देवजगत् में उपलब्ध हो या जो देवजगत् में नहीं, वह धरापर स्थूलरूप में प्राप्त हो। ऐसी जितनी उपलब्धियाँ होंगी, वे केवल विकृतियाँ ही हो सकती हैं। फलतः हमारे जगत् में जिसे हम कल्पित करेंगे, उसकी देवजगत् या नित्यधाम में सत्ता ही न होगी। यहाँ जो इतिहास है, सत्य है, वही अधिभूत अधिदेव एवं अध्यात्म में सत्य हो सकता है। पुराणों के वर्णन क्योंकि ऐतिहासिक रूप में अभ्रान्त सत्य हैं, इसी से उनकी आधिदैविक एवं आध्यात्मिक व्याख्या भी सत्य है। जो इतिहास में सत्य न होकर केवल रूपक होगा, उसकी देवजगत् या अन्तर्जगत् में कोई सत्ता ही न होगी, यह हमें भली प्रकार अवगत कर लेना चाहिये।

श्रीकृष्णचरित में चीर-हरण और रास को लेकर पता नहीं क्या क्या लोग कहते हैं और अपनी कलुषित बुद्धि का कालुष्य वहाँ भी देखना चाहते हैं। अनेक सद्भाव-सम्पन्न भावुक-हृदय इन दूषित तर्कों से क्षुब्ध होते हैं और वे प्रयत्न करते हैं इन लीलाओं का कोई आध्यात्मिक अर्थ करने के लिये। लेकिन बहुत सीधी बात है कि अपने ही विकारों से अंधा व्यक्ति यदि तनिक भी विचार करने की स्थिति में हो तो देख लेगा कि क्यों श्रीकृष्ण के परमद्वेषी शिशुपाल ने इन घटनाओं की चर्चा तक नहीं की। शिशुपाल जब श्रीकृष्ण की अच्छाइयों को भी दोष देखकर गाली दे रहा था, उसे इतने बड़े अपने अनुकूल कारण क्यों नहीं सूझे ?

*"एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्।"*

व्रज में श्रीकृष्णचन्द्र कुल ग्यारह वर्ष, छः महीने, चार दिन ही रहे हैं। श्रीमद्भागवत के विद्वान् व्याख्याकारों का मत है कि इन वर्षों को नाक्षत्र वर्ष मानना चाहिये। यदि ऐसा करें तो ये ग्यारह वर्ष भी नहीं रह जाते। तब तो इनमें से प्रत्येक वर्ष चान्द्रमान के एक वर्ष से लगभग एक मास और कम हो जाता है। अर्थात् चान्द्र या सौर वर्ष से श्यामसुन्दर केवल साढ़े दस वर्ष की अवस्था तक व्रज में रहे। इस गणना को न मानें, तब भी 'एकादशसमाः' तो स्पष्ट ही है। लगभग सात वर्ष, तीन मास की अवस्था में चीर-हरण और आठ वर्ष, एक मास की अवस्था में शरत्पूर्णिमा को रास किया उन्होंने। यदि श्रीकृष्णचन्द्र परात्पर पूर्णपुरुष सर्वशक्तिमान् हैं, जो कि शास्त्रों का नित्यानुमोदित सत्य सिद्धान्त है, तो उनके लिये बाल्य एवं कैशोर का बन्धन क्या। जो कारागार में माता देवकी के सम्मुख सायुध साभरण चतुर्भुज व्यक्त हुआ, वह यदि अपनी नित्य सहचरियों के लिये किशोर हो गया तो हुआ क्या ? श्यामसुन्दर की वे सहचरियाँ भी तो उससे नित्य अभिन्न हैं। फिर जो सर्वान्तर्यामी है, वही सर्वेश ही तो सबका वास्तविक पति है। उसके लिये 'पर' कौन ? वह तो कृपा करके ही अपनाता है न। जीव का परम सौभाग्य—परम प्राप्य यही तो है कि वह सर्वेश वरण करले उसे। वह स्वयं वरण न करे तो जीव कैसे पा सकता उसको ?

*'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः।'*

लेकिन शङ्का तो उन्हें होती है, जो कृष्णचन्द्र को मानव मानने चलते हैं, फिर उनका वह मानव चाहे जितना महान् क्यों न हो। ऐसे लोगों से इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे उस समय के व्रजसुन्दर के वय की ओर से दृष्टि बंद न करें। आज भी जहाँ ग्रामों में नगरों की दूषित वायु नहीं पहुँची, आठ-नौ वर्ष तक के बालक-बालिकाएँ नंगे खेलते-कूदते हैं। उस समय तो द्वापर था। इन बालविनोदों में क्या सोचने की बात है भला, ऐसे महान् विद्वानों के लिये जो श्रीकृष्णचन्द्र के चरितों की 'न भूतो न भविष्यति' व्याख्या करने में समर्थ हैं।

हाँ, इनमें से श्रीराधा के सम्बन्ध में भी बड़ी वितण्डा है। परमहंस शुकदेवजी तो अपने आनन्द में नित्य लीन रहनेवाले अवधूत ठहरे। उन्हें क्या पता था कि वे जिस महाभाव-मूर्ति को

रहस्य के आवरण में छिपाकर रख रहे हैं, उस निखिल माधुर्यमयी का लोग अस्तित्व ही स्वीकार न करना चाहेंगे। जो लोग केवल तर्क ही करना चाहते हैं; उनसे विजय पाने की वेदमूर्ति ब्रह्माजी की कामना भी कदाचित् असफल ही होगी; पर ऐसे कुटिल तर्कों से भावुक प्राणों को व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिये श्रुति के ये शाश्वत मन्त्र बहुत कुछ कह जाते हैं। श्रुति ने उन महिमामयी का केवल नाम-स्मरण ही नहीं किया, उनके परमपूज्य पिता के परिचय का संकेत भी किया है—

*'स्तोत्रं राधानां पते'*—ऋग्वेद १।३०।५

*'त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि'*

—ऋग्वेद ३।१५।३

केवल बात रह जाती है कुब्जा के सम्बन्ध की। इस विषय में इतना ही कहना है कि स्तुति करते हुए ब्रह्माजी ने गोपाल से कहा है—

*"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।*
*हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥"*

—भागवत १०।१४।८

ऐसी दशा में यदि दासी कुब्जा उन भुवन-मोहन का क्षणिक स्पर्श एवं सामीप्य पाकर उनके लिये आकुल हो गयी, उसके प्राण उसी मयूर-मुकुटी की प्रतीक्षा में अस्त-व्यस्त हो गये तो क्या अपराध उसका? और—

*'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'*

कहने वाला गीतागायक क्या मुँह लेकर कुरुक्षेत्र में यह घोषणा कर पाता, यदि उसने अपने लिये आकुल उस दासी की प्रतीक्षा सत्य न की होती।

## सामाजिक स्थिति

लीलाओं के सम्बन्ध में शङ्काएँ तो होती ही हैं; शङ्काएँ होती हैं उस समय के ऐश्वर्य-वैभव के वर्णन को लेकर। हम भूल जाते हैं भारत के प्राचीन ऐश्वर्य को। हमारे मन में आज की कंगाल स्थिति घर कर गयी है और हम जब मणि, स्वर्ण, स्फटिक, कौशेयवस्त्र आदि की विपुलता और उनके महादान की बात पढ़ते, सुनते हैं तो हमारा चित्त उसे ग्रहण ही नहीं कर पाता। हम इन वर्णनों को काव्यवैभव कहकर उड़ा देने का प्रयत्न करते हैं। इतिहास के नन्हे से काल में जो चीनी या विदेशी यात्री भारत में आये, यदि हम उनके वर्णनों पर ध्यान दें तो हमें भारतीय वैभव की एक छाया प्रतीत हो सकेगी। स्मरण रखने की बात है कि इन यात्रियों ने जिस भारत को देखा, वह द्वापर या त्रेता के भारत के सम्मुख उतना ही या उससे भी कंगाल है, जितना आज का भारत उन यात्रियों द्वारा वर्णित भारत के सम्मुख हीन। 'श्रीकृष्णचन्द्र ने पृथ्वी को छोड़ दिया!' इस वर्णन को भागवत में देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि परीक्षित् के समय ही कितना कंगाल, कितना दुःखी देश प्रतीत हुआ उस समय के लोगों को। पाण्डव देश की उस दुर्दशा को सह नहीं सके। धर्मराज सम्राट् युधिष्ठिर ने रोते हुये अनुमान कर लिया दीन-हीन देश को देखकर 'अवश्य श्रीकृष्ण-चन्द्र इस अभागिनी भूमि को छोड़कर स्वधाम चले गये!' उसी समय यह दशा हो गयी थी। और वह हीनतर होती ही गयी। विदेशी यात्रियों ने जो वर्णन किये हैं, वे लगभग चार सहस्र पीछे के नितान्त दरिद्र भारत के वर्णन हैं और वे वर्णन आज ऐश्वर्य की मूर्ति का परिचय देते हैं, तब द्वापर का भारत—कल्पना भी वहाँ तक पहुँच नहीं पाती।

हम आज स्थूलदर्शी हो गये हैं। हम पदार्थों को सत्य मानकर इतिहास को भूमि के भीतर ढूँढ़ने लगे हैं। पदार्थ भावरूप हैं और उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, यह बात हमारी समझ में ही नहीं आती। लेकिन जो सत्य है, वह हमारी भ्रान्ति से अन्यथा तो होने से रहा। पदार्थ भावरूप हैं—जब जगत् में दिव्य धर्मभाव का आधिक्य होता है, वे स्वतः प्रकट हो जाते हैं।

'गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन्'—तब खनिज खोदने नहीं पड़ते और जब अधर्म का राज्य बढ़ता है, पदार्थ स्वतः तिरोहित हो जाते हैं। आज सहस्रों गज भूमि नाना स्थानों पर खोद ली गयी, पर स्वतःप्रकाश मणि, गजमुक्ता, चन्द्रकान्त आदि का अस्तित्व ही उपलब्ध नहीं है। मणिस्तम्भ की बात तो दूर, मुकुटों में लगाने को अच्छे रत्न गिने-चुने ही हैं विश्व में।

भारत में अन्न, फल, घी, दूध की तो तब भी राशि बिखरी थी, धारा प्रवाहित थी, जब विदेशी यात्री यहाँ आये थे। द्वापर के भारत में स्थित वैभव की कल्पना ही व्यर्थ है। मणि, स्वर्ण, रत्न, कोई मूल्य इनका रहा हो तो कदाचित् आज की मिट्टी से भी कुछ कम ही। लेकिन भारत में सम्पन्न और भिक्षुक के व्यवहार का अन्तर वैसा नहीं था, जैसा हम आज सोचते हैं। दासियाँ, दास सब गृह के सदस्य ही थे और गृह-सेवा, अतिथि-सत्कार, गोसेवा, देव-पूजन के लिये भूमि-सम्मार्जनादि कार्य तो किसी भी सम्राट् या सम्राज्ञी के लिये भी गौरवास्पद थे। कोटि-कोटि गोधन ही भारत का परमोपास्य धन था और सभी श्रेणी के लोग 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के पावन आदर्श को बुद्धि में ही नहीं, व्यवहार में भी देख सकते थे। प्रमाद, आलस्य, विलास—ये भारतीय जीवन में विदेशी सम्पर्क से ही प्रविष्ट हुए। सरल, उदार, श्रमशील, स्फूर्तिमय, ओजस्वी, सादा और साथ ही लोकोत्तर वैभव-सम्पन्न भारतीय जीवन, जो पुराणों में उपलब्ध होता है, वह अपने उज्वल उदात्त भाव से ही व्यक्त हुआ।

व्रज एक गोपावास ही था, आप यह कहें तो किसी को क्या आपत्ति होनी है। यह दूसरी बात है कि आज के विश्व का एकत्र वैभव भी व्रज के ऐश्वर्य के सम्मुख कंगाल ही है; परंतु वे मणि-सौध भी उस समय नगर नहीं बना पाये थे। उस समय के नगरों के सम्मुख व्रज गोपावास ही था। अवश्य ही भारत के परमाराध्य गोधन का वह केन्द्र नगरों के लिये भी स्पृहा की ही वस्तु था; क्योंकि तब धन का माध्यम धातु और पत्थर नहीं थे। वे तो पर्याप्त लुढ़कते रहते थे। धन का माध्यम थीं गायें और व्रज इस धन का सबसे महान् धनी था।

## भौगोलिक स्थिति

सामाजिक स्थिति के समान ही भौगोलिक स्थिति भी हमें अनेक उलझनों में डाल देती है। सच्ची बात तो यह है कि वे लीलामय आते हैं अपने चिन्मय धाम में ही। उनके साथ उनका धाम भी आविर्भूत होता है। जैसे वे अचिन्त्य लीलाशक्ति के परम निवास हैं, उनके धाम की महिमा भी वैसी ही अतर्क्य है। उनका नित्यधाम भौतिक तो है नहीं, भले वह धरा पर व्यक्त हो गया हो। जैसे वे लीलामय नरवपु का नाट्य करते हैं, वैसे ही धाम भी भौतिक-सा लगता है; किंतु न तो इस नाट्य से भगवान् का श्रीविग्रह पाञ्चभौतिक होता और न उनका धाम। जैसे वे अपनी इच्छा से ही कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज होते हैं, कभी अपने मुख में निखिल ब्रह्माण्ड दिखला देते हैं, वैसे ही उनका चिन्मय धाम भी स्थूल देश प्रतीत होने पर भी ऐश्वर्यमय ही होता है। भगवान् जैसी लीला करना चाहते हैं, उसके अनुरूप वह संकुचित एवं विस्तीर्ण होता रहता है। कभी उसके एक कक्ष में कोटि-कोटि गौओं के साथ समूचा व्रज समा सकता है और कभी नन्दग्राम से गोवर्धन तक की दूरी कुछ क्षणों में ही पार हो जाय, इतनी अल्प हो जाती है। उस मणिभूमि में वहीं दर्पण-सदृश निर्मलता है और वहीं कन्हैया के लोट-पोट होने के लिये धूलि या कंधों तथा उदर पर नन्हे अरुण करों से डालने के लिये कीचड़ भी। उस दिव्य भूमि का वही रूप उस समय जब उसके अधिष्ठाता जैसी लीला करना चाहें।

अब स्थूल जगत् में व्रजभूमि की बात लें तो व्रज में गत पाँच सहस्र वर्षों में कितना भौतिक परिवर्तन हुआ है, कौन कह सकता है। गिरिराज गोवर्धन के अतिरिक्त वहाँ और तो कुछ स्थिर है नहीं। गिरिराज भी धीरे-धीरे भूगर्भ में चले जा रहे हैं। उनके अधिकांश भाग भूमि के बराबर हो गये हैं, यह सभी जानते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है कि द्वापर में गिरिराज का विस्तार एवं ऊँचाई का परिमाण क्या था।

*"वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।*
*वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥"*

—१०।११।३६

श्री मद्भागवत की यह वाणी स्पष्ट करती है कि श्रीगिरिराज नन्दग्राम और बरसाने से बहुत दूर नहीं थे। नन्दग्राम एवं बरसाने की वर्तमान पहाड़ियाँ गिरिराज के विस्तार के अङ्ग ही हैं, जो गिरिराज के धीरे-धीरे भूप्रविष्ट होने से अब पृथक् हो गये हैं। साथ ही श्री यमुनाजी भी नन्द-ग्राम, बरसाने के पास से ही प्रवाहित होती थीं। उनकी धारा तो हटती-बढ़ती रहती है। उनका प्रवाह हटता गया और फलतः उनके तट का वृन्दावन कालक्रम से इतनी दूर जा पड़ा। इस सुदीर्घ काल में धारा का इस प्रकार दूर हो जाना सहज सम्भाव्य है। गिरिराज एवं नन्दग्राम बरसाने के समीप अब भी झाऊ के झुरमुट मिलते हैं, जो सूचित करते हैं कि वहाँ कभी स्रोत था। स्मरण रखने की बात है कि झाऊ सरिता-तट पर ही होने वाला वीरुध् है।

गोकुल तो मथुरा के सम्मुख यमुना जी के उस पार अब भी है ही। वैसे पूरे चौरासी कोस के भीतर की भूमि है और यह पूरी ही भूमि पावन है। यहाँ श्यामसुन्दर ने अपनी अनेक दिव्य लीलाएँ की हैं। व्रजभूमि का तो स्मरण ही परम पावन है, अतः उस परम तीर्थ की महिमा में काल द्वारा हुए नगण्य परिवर्तनों की गणना भी क्या।

## नाम-रूप-लीला-धाम की दिव्यता

यह ठीक है कि वे सच्चिदानन्दघन परात्पर परमपुरुष इस जगत् में नहीं आते, उनके साथ उनका चिन्मयधाम ही व्यक्त होता है और अपनी इच्छा से ही वे स्थूलजगत् के किसी स्थल में अपने धाम का सामञ्जस्य कर देते हैं; पर उन अनन्त का सम्पर्क-प्रभाव भी तो अनन्त है। उनके चिन्मय धाम से युक्त होने के कारण धरा का वह स्थल भी दिव्य अपार शक्तिमय हो उठता है और यह शक्ति सदा रहती है वहाँ।

*"सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।"*

—भागवत १०।१२।३६

उन सच्चिदानन्दघन की मनोमयी—कल्पित मूर्ति एक पल के लिये भी हृदय में स्पष्ट हो जाय तो भागवती गति—उनके नित्यधाम का निवास प्राप्त हो जाता है। उन परम सत्य की भावना भी सत्य ही होती है; फिर उनके नित्यधाम का धरा पर जहाँ आविर्भाव हुआ, वह भूमि क्या चिन्मय होने से शेष रह गयी। उस पारस के सम्पर्क से भी वहाँ क्या भौतिकता के दोष रह सकते हैं? वह तो धाम है और उसका अपार प्रभाव है। हमारे दूषित अन्तःकरण उस प्रभाव को अनुभव करें या न करें, वह तो है और जो भाग्यवान वहाँ पहुंचते हैं, वे उस प्रभाव से परिपूत भी होते ही हैं। वे अनुभव न करें, यह सर्वथा भिन्न बात है।

वह परम दिव्य भगवद्धाम! पर सभी तो वहाँ पहुँच सकें, ऐसा सौभाग्य लेकर नहीं आये हैं इस मर्त्यधरा में। किंतु श्यामसुन्दर की नित्य दिव्य लीलाएँ—ये लीलाएँ तो हुईं ही इसलिये कि भव के ताप-तप्त प्राणी उनके श्रवण, मनन, चिन्तन, कथन, पठन-पाठन आदि से अपने अन्तः-करण को पवित्र करें और वहाँ उस भुवनमोहन का वह त्रैलोक्य-विमोहन रूप प्रकट हो उसका दिव्य रूप, उसके मङ्गलमय परम पावन नाम, उसकी परम मङ्गलमयी लीलाएँ और उसका परम दिव्य धाम—इनमें जिसकी रति हो, इनमें से एक को भी जो अपना सके, वही धन्य है। कृतकृत्य है वह जीवन! समस्त देवता, समस्त लोक-पाल, समस्त भाव-जगत् के अधिष्ठाता कृपा करें! श्रीलीलाशुक के शब्दों में एक ही विनय है उनके चरणों में—

*"साष्टाङ्गपातमभिवन्द्य समस्तभावैः, सर्वान् सुरेन्द्रनिकरानिदमेव याचे ।*
*मन्दस्मितार्द्रमधुराननचन्द्रबिम्बे, नन्दस्य पुण्यनिचये मम भक्तिरस्तु ॥"*

# श्रीकृष्ण-चरित

[ पूर्वार्ध ]

मुरली मनोहर

# माङ्गलिका

*उपासतामात्मविदः पुराणं परं पुमांसं निहितं गुहायाम् ।*
*वयं यशोदाशिशुबाललीलाकथासुधासिन्धुषु लीलयामः ॥*

—श्रीलीलाशुक

यह नन्दनन्दन, त्रिभुवनमोहन, यशोदाकुमार, मयूरमुकुटी, कमललोचन, मुरलीमनोहर, वनमाली, त्रिभङ्गसुन्दर, नवजलधरश्याम, केकीकण्ठाभनील, विद्युद्वसन, गोपाल—इसकी नित्य चिन्मय आनन्दघन, भुवनपावनी लीलाएँ—क्षीरसिन्धु में से महामन्थन के पश्चात् एक कलश मात्र अमृत प्राप्त हुआ; किंतु यह चिर-चपल—यह तो अमृत-सिन्धु का पल-पल सृजन करता है और इसका कथामृत—उस क्षीराब्धि से प्राप्त अमृत का भी कोई सागर बन पाता—उसे भी कोई शेषशायी अपने ही करों से मथता—उससे कोई सुधाकलश उत्थित होता उसका सारभूत—कहना कठिन ही है कि वह भी इस व्रजेन्द्रनन्दन के सुकुमार सौन्दर्यमय चपल-चरितों की मधुरिमा पाता या नहीं।

श्रुति कहती है—हृदय-गुहा में—अन्तर के मूल केन्द्र में एक सूक्ष्मतम अधोक्षज ज्योति है। चिन्मय, आनन्दमय, निर्विकार, एकरस शान्तज्योति। आत्मतत्त्ववेत्ता समाधि के द्वारा उसी का अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं। वह ज्योति—वह ज्ञानघन प्रकाशरूप, वही तो परमपुरुष, शाश्वत—पुरातन अध्यात्म के अन्वेष्य अवाङ्मनसगोचर चिन्मय तत्व हैं। बात ठीक; किंतु कदाचित् कन्हैया की नखमणिचन्द्रिका की अस्पष्ट किरणें ही हैं वे। यदि ऐसा न होता—अध्यात्मतत्त्व, अध्यात्मशास्त्र के परमप्रेरक भगवान् शंकर, परम वीतराग सनकादि—क्या पड़ती है इनको कि वे अपनी हृदय-गुहा में भी इसी चिर-चपल के श्रीचरण स्थापित करने का सतत प्रयत्न करते हैं उस नित्योपलब्ध अधोक्षज ज्योति को भूलकर। भला, महर्षि शुकदेव तो हैं ही इस नटनागर के लीला-शुक और देवर्षि तो नित्य पथिक हैं, वे समाधि न लगावें तो कोई बात नहीं, वे स्वयं चञ्चल हैं, अतः उन्हें यह महाचपल बहुत प्रिय है—पर भोले बाबा, वे शशाङ्कशेखर, मुण्डमाली, भुजगभूषण, वीतरागमुकुट-मणि, गङ्गाधर, योगीश्वर, विश्वनाथ—उनको क्या हो जाता है? वे क्यों इसके चिन्तन, वर्णन, गुण-गान में अपनी सहज समाधि को विस्मृत होकर गद्गदकण्ठ, पुलकितवदन, प्रेमाम्बुपूर्णनयन, विभोर होते हैं? यह कनूँ—यह गोविन्द—है ही यह ऐसा। क्या पता इस नवनीत-चोर को किस-किसके परम परिशुद्ध, उज्ज्वल, स्नेह-स्निग्ध हृदय रुचे और इसने चुरा लिया धीरे से—उज्ज्वलता और स्निग्धता हो तो यह चुराये बिना मानता जो नहीं।

*"यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं*
*संचिन्तयामि मनसा जगति स्फुरन्तम् ।*
*तावद् बलात्स्फुरति हन्त हृदन्तरे मे*
*गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमञ्जुः ॥"*

कोई करे भी क्या, जन्म-जन्मान्तर के पुण्य प्रयत्नों से परमार्थ में रुचि हुई, सतत साधन के चिरकालीन अभ्यास ने अन्तर को उज्ज्वल किया। कालिमा का सूक्ष्मतम कण तक जब बाहर हुआ—उसमें हृदय-गुहा की वह दिव्य ज्योति प्रकट हुई। यहाँ तक तो ठीक—कोई उस चिन्मय तत्व में ही आत्माराम रह सके तो कोई बात नहीं; किंतु वह चिद्घन क्या आनन्दघन से पृथक् है—आनन्द का उद्रेक और परम प्रेम नाम ही तो दो हैं ये। उज्ज्वल अनन्त स्नेह स्निग्ध हुआ और नवनीत-चोर दबे पैर पहुँचा। युग-युग के प्रयत्न से सब प्रकार की समस्त कालिमा को बलात् पृथक्

करके निरञ्जन—परमोज्ज्वल, सर्वथा कालिमा-शून्य, तेजोमय, अजन्मा, समस्त विश्व में व्याप्त ज्योति का मन से चिन्तन करने बैठे और—अब क्या यह भी अपने बस की बात है, हृदय में तो जैसे नीलाञ्जन के घनीभाव से ही एक परममञ्जुल मूर्ति बनी हो यह कोई गोपशिशु बलात् आ धमकता है। यह नटखट—यह त्रिभङ्गसुन्दर, इससे कोई सरल हृदय कैसे पार पावे। कोई चाहे भी तो क्या इसे निकाल सकता है वहाँ से—और चाहे कौन, वह चाहनेवाला चित्त—वह तो पहिले चुरा लिया इसने। श्रीशुकदेव जी क्या कहें, क्या करें, उन्होंने सीधी बात कह दी—

*"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।*
*कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥"*

वह हरि है न—हरण करना ही उसका स्वभाव है और वह भी विशेषतः स्वजनों—शरणापन्नों के पाप, व्रज के नवनीत और आत्माराम आप्तकामों के उसी नवनीत से उज्ज्वल, स्निग्ध, सुकुमार चित्त। श्रुति ने हार मानकर हाथ जोड़ लिया है उसे—

*"तस्कराणां पतये नमः।"*

× × ×

*"परमिममुपदेशमादृियध्वं*
*निगमवनेषु नितान्तचारखिन्नाः।*
*विचिनुत भवनेषु बल्लवीना-*
*मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥"*

आत्माराम—आप्तकाम तो इस नीलनीरद-विहारविभ्रम, श्याम के बिना रहेंगे नहीं। उनका चित्त तो यह हरि हरण करेगा ही। उनका तो स्वभाव है इसी में लगे रहना और जो बच गये—शास्त्रों का अपार कानन क्या कम गहन है? क्या सरल है उसमें किसी के लिये अधिकार-निर्णय? क्या सुगम है वहाँ पथ प्राप्त कर लेना। श्रुतियों का वह अचिन्त्य—कैसे कोई चिन्तन करे उसका। वह त्रिगुणातीत—किसके पास क्या साधन है इस चित्त को छोड़ कर? और वह विभु, वह महान्, वह अनन्त विराट्—नन्हा-सा जीवन, दुर्बल-सा मन, सुकुमार छोटा-सा हृदय—यह श्याम, एक बात तो है, कौतुकी से सबकी पट जाती है। यह धूलि में खेल लेता है, गोमय में लेट लेता है—इसे कहाँ स्वच्छता की अपेक्षा है। कोई मुँह फुलावे तो चिढ़ा लेगा, कोई चञ्चल बने तो दौड़ लेगा साथ-साथ और कोई भागे तो दौड़ा भी लेगा—इसकी मुरली समस्त शब्दों को अपने स्वर में एकाकार कर लेती है और यह सारी प्रकृति, समस्त स्वभावों में साम्य पा लेता है। सबमें इसकी क्रीड़ा चलती है।

यह चपल—कछुए-मछली की बात तो अपने बस की नहीं। कोई कहाँ तक तैरता रहेगा उनके साथ—सो भी ताल-तलैया नहीं—प्रलयपयोधि में। वाराह और सिंह की चर्चा तो अच्छी है, दूर से—खूब दूर से वे देखने को मिल जायँ तो आनन्द भी आवेगा; पर उसके निकट—राम का नाम लीजिये। रात्रि को उनकी चर्चा करके सोने पर कहीं स्वप्न में ही आ धमके तो.....ऐसों से डरते रहना चाहिये। ब्राह्मण—वे छोटे-से हों या बड़े-से, शान्त हों या उग्र—उन्हें तो प्रणाम ही किया जा सकता है। यह भी कोई बात है कि सदा प्रणाम ही किया जाय। आदरणीय यदा-कदा पधारते रहें तो उनकी कृपा और जमकर ही बैठ जायँ तो? आप अपनी सोच लीजिये। एक बात तो है—परमोदार, परमसुहृद्, परमप्रतापी महाराज; सब ठीक; लेकिन महाराज तो रहेंगे महाराज ही। सम्राट् के सेवक बनना प्रिय हो तो आपत्ति किसे होगी—वहाँ के संयम, शिष्टाचार, योग्यता, अधिकार—सबको अपनी-अपनी बात ही सोचनी चाहिये।

यह कनूँ—यह व्रजेन्द्रनन्दन; इससे झगड़ना, लड़ना, चिढ़ना-चिढ़ाना—सब ठीक। बड़े मजे की बात है—इसकी घुँघराली काली अलकों में ढेरों सुकुमार सुमन उलझाये जा सकते हैं। इसके नवघनसुन्दर श्री-अङ्गपर केशर, चन्दन—और कुछ न हो तो खड़िया, गेरू-से ही उलटे-सीधे मनमाने

चित्र बनाये जा सकते हैं। इसे भी क्या उपहार चाहिये—इसे तो गुञ्जा, आम्रकिसलय, वन्यपुष्प से ही सजा दिया जा सकता है और कुछ न मिले तो अँगूठा दिखाकर हँसा भी लिया जा सकता है। इसे गायें हाँकने को दौड़ाया जा सकता है, इस पर चढ़ाई कसी जा सकती है, इससे मल्लयुद्ध किया जा सकता है और यह तो बिना कहे ही नाचता, गाता, वंशी बजाता है।

यह कन्हाई—इसके कमल-लोचन अपनों के कष्ट की कल्पना से ही भर आते हैं। भला, इसे कोई क्या देगा, यह तो औरों को चोरी करके भी नवनीत खिलाता रहता है। यह अग्निपायी—त्रिताप की गन्ध भी इससे बचकर ही मार्ग ढूँढती है। इस चपल का क्या ठिकाना—किसी साथी ने कहीं संकेत किया तो.....बाधा और विघ्न, ग्रह और अरिष्ट, मार और मृत्यु—सब इस नटखट से दूर-दूर ही रहते हैं। यह महानीलमणि—यह अपनों की बात सदा ऊँची रखने पर तुला, हठी और फिर इसका भुवन-विख्यात कौतुक—जहाँ बेचारे लोकपितामह ब्रह्माजी और सुरेन्द्र भी हाथ जोड़ चुके, वहाँ दूसरों की क्या गिनती।

यह गोपाल—इसके क्या नियम और क्या मर्यादा। पर है यह अपने ढंग का अनोखा ही। कहाँ क्या करेगा, कुछ पता नहीं। श्रुतियों के सारे पृष्ठ इसके लिये वैसे ही कोरे हैं; गोपाल जो ठहरा। कहीं कोई नियम नहीं; जो इसके हैं, उनकी तो उलटी भी सही और जो दूर हैं—उनकी सीधी भी सीधी है या नहीं—कौन कह सकता है और यह, इसका स्वभाव तो परम प्रसिद्ध है—श्रीलीलाशुक ने इसी से तो कहा है—

*"गोपालाजिरकर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे।*
*ब्रूषे गोधनहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से विदाम्॥"*

गोष्ठ के गोमय-मण्डित कर्दम में तो यह लोटपोट हो लेगा और सविधि, साङ्ग, आयोजन-पूर्ण ब्राह्मणों द्वारा महायज्ञ में परमपावन आसन स्वीकार करते इसे पता नहीं क्यों लज्जा आने लगेगी। गायें हुंकार करेंगी तो प्रत्येक हुंकार पर बोलेगा और जब बड़े-बड़े विद्वान् शत-शत स्तुतियाँ करते श्रान्त होने लगेंगे, आपको मौनीबाबा बनने की सूझेगी। भला इस चञ्चल का क्या ठिकाना!

एक बात—पक्की ही बात, किसी गोपिका के घर में ऊखल से बँधा इसे ढूँढ़ना हो, बड़ी सीधी सरल बात। वहाँ से भाग छूटने का तो कोई मार्ग ही नहीं और यह मिल जाय—भला कन्हइया से परिचय प्रगाढ़ होते कितने क्षण लगते हैं। यह तो अपने ही अपनी मित्र-मण्डली बढ़ाने को आतुर रहता है। यह श्याम—यह कन्हाई, इसे छोड़कर कौन भटके श्रुतियों के कानन में और भटकना ही हो तो क्या गोपाल के बिना बन-बन भटकना कोई भली बात है? वन-विहार का आनन्द तो इस व्रजराज-कुमार के साथ ही आता है।

जो अन्वेषक हैं, जो सचमुच आनन्द के अभीप्सु हैं, इस आनन्दघन को छोड़ कर उनकी गति कहाँ है? यह भी तो क्रीड़ा-प्रिय है। इसे भी तो क्रीड़ा ही करनी आती है। हाँ, जिन्हें व्यायाम करना है, जिन्हें अपना भी कुछ बल है—उनकी बात दूसरी। जिन्हें आमोद की आकाङ्क्षा है—यह कनूँ, यह मोदमूर्ति—सजीव, साकार, साक्षात् आमन्त्रण है यह।

× × ×

*"एषु प्रवाहेषु स एव मन्ये क्षणोऽपि गण्यः पुरुषायुषेषु।*
*आस्वाद्यते यत्र कयापि वृत्त्या नीलस्य बालस्य निजं चरित्रम्॥"*

यह नवदूर्वादल-श्याम कन्हाई—इसके मञ्जुल चरित्र, उनका भी क्या कोई ठिकाना है? इस नटनागर का ही ठिकाना नहीं—इयत्ता नहीं तो इसके चरितों का ठिकाना—इयत्ता कैसे हो जाय। किसी वृत्ति से, किसी प्रकार इसके चरित जीवन में—मन में आवें—जीवन का वही पुण्य क्षण वास्तविक जीवन-क्षण बनता है। मृत्यु के इस अनन्त अगम्य दुर्निवार प्रवाह में प्रवाहित क्षुद्रतर

तृणतुल्य प्राणी—वह अपने प्रवाह को ही जीवन कहे तो क्या उपाय। कोई मृत्यु के कराल मुखगह्वर की ओर ठेलते ढकेलते क्षणों को ही जीवन-क्षण समझे—प्रायः वही क्षण जीवन-क्षण कहे जाते हैं—क्या समाधान है इस प्रमादपूर्ण स्थिति का। जीवन-क्षण—जीवन तो इस केकीकण्ठाभनील व्रजेन्द्र-कुमार में है! इसके स्मरण के क्षण—जीवन के अमर क्षण—वे ही वास्तविक जीवनक्षण हैं।

क्या सहज सरल हैं ये जीवन-क्षण? यह त्रिभङ्गसुन्दर, चिरचञ्चल, क्या मानस में यों ही आता है? मानस—कितना दुर्बल, कितना भोगालस, कितना विकृत मानस है और यह कन्हाई, यह उज्ज्वल स्निग्ध नवनीत का प्रेमी? लेकिन इसके चरित—इसका यह अनन्त सौन्दर्य, इसकी अवर्ण्य माधुरी—एक बार यह आ गया मानस में और फिर आ गया। विकार—प्रलोभन-आकर्षण, चुनौती सबको! अपनी दुर्बलता? छिः! श्याम है न, उसकी मधुरिमा से भी कुछ और लोभनीय है? सब आवेंगे—विनोद उत्थित करेंगे और स्वतः थकित होकर निवृत्त हो रहेंगे। मोहन की एक झाँकी, वह एक जीवन-क्षण—प्रकाश की एक नन्हीं किरण—युग-युग का अन्धकार भी क्या उसे आच्छादित कर सकता है?

*"ते ते भावाः सकलजगतीलोभनीयप्रभावा-*
*नानातृष्णासुहृदि हृदि मे काममाविर्भवन्तु।*
*वीणावेणुक्वणितलसितस्मेरवक्त्रारविन्दा-*
*न्नाहं जाने मधुरमपरं नन्दपुण्याम्बुपूरात्॥"*

कल्पना—मेरी कल्पना, जब मानव निरन्तर कल्पना ही करता है, जब वस्तुतः सभी जीव कौशेय-कीट की भाँति सदा कल्पना के अपने सूत्र में अपने को बाँधकर मूर्छित करने के प्रयास में ही हैं—मेरी प्रकाश की, उस परित्राण के पावन नीलोज्ज्वल प्रकाश की कल्पना ही क्या अनन्त विराट में निराधार रह सकती है।

असत् की कल्पना—असत् की आकाङ्क्षा जीवन को जगती में—असत् में युग-युग से आबद्ध किये है और सत् की—उस सुकुमार सत् की आकाङ्क्षा, उस शाश्वत श्याम सत् की कल्पना आस्था प्राप्त करके स्थिर—धन्य होने में असमर्थ ही रहेगी?

कल्पना और यथार्थ—पर एक ऐसा भी भाव है, जहाँ हमारा यह दृश्यमान यथार्थ ही कल्पना हो उठता है। जिसकी उज्ज्वल नखमणिचन्द्रिका के आलोक में ही कल्पना मूर्त—यथार्थ होती है। वह भावमय—किसी भी कल्पना का उत्थान क्या उसका आलोक पाये बिना अन्धकार में ही होता है?

कनूँ—मेरे अच्छे कनूँ, मेरी कल्पना ही क्या तेरा यथार्थ नहीं बन सकती? तू उसे अपने श्रीचरणों में सार्थक तो हो जाने दे! भैया, तेरे अरुण मृदुल किसलय-कोमल परम चपल कर—तू अपने आप साज-सम्हाल और सत्य तो तेरी स्वीकृति का ही दूसरा नाम है न?

श्याम, तेरे चारुचरित—किसे पता है कि तू कब क्या करता है और कर सकता है। तूने क्या किया है—भगवती वीणापाणि और भगवान् शशाङ्कशेखर के अमल मानस भी क्या उसे अपने में ही अङ्कित कर पाते हैं? कोई क्या इसी से तुझे छोड़ देगा? तुझे छोड़ दे—कहाँ जायेगा, कहाँ पायेगा यह स्निग्ध अनन्त माधुर्य? तू है ही पूरा नटखट, पूरा अद्भुत, पूरा विचित्र—यह सखाओं द्वारा वनधातुओं से चित्रित तेरा श्रीअङ्ग—लेकिन तू इससे भी विचित्र है और चरित—फिर भला, तेरे चरितों का क्या कहना!

तुझे छोड़कर रहा तो नहीं ही जा सकता—जीवन में तो कोई रह भी ले, मन में जब तुझे छोड़कर रहा जाय—मृत मानस है वह। मन में तो तुझे लेकर ही आत्माराम आप्तकाम महापुरुष रहते हैं, ऋषि-मुनि-सिद्ध रहते हैं और सनकादि, देवर्षि तथा भगवान् शंकर रहते हैं। मृत्यु से जीवन की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, पतन से उत्थान की ओर मुख फेरने का अर्थ ही

है इस हमारे दृश्य यथार्थ से तेरी ओर—सभी अन्तर्मुखता के अभ्यासी मन में तुझे ही तो बसाना चाहते हैं। सभी की अभीप्सा तो एक झाँकी—एक झलक के लिये ही आतुर होती है।

मन—मन तो कल्पना करता है, कल्पना किये बिना वह रह जो नहीं सकता। मोहन—तू आ, तू मेरी कल्पना को यथार्थ करता आ! करने दे इस मन को कल्पना—तेरी, तेरी कल्पना और तू—तू मेरी कल्पना को स्वीकृति देता चल! तुझ से लगकर—तेरी कल्पना कहलाकर भी कुछ असत् रहेगा—रह सकता है?

मेरी यह माङ्गलिका—श्याम, जानता है न, यहाँ भी कुछ इच्छा है, कुछ बात है—कुछ बात। और तू उसकी उपेक्षा कर सकेगा? तुझे उपेक्षा करना आता है? देख, मैं जय गणेश! जय सरस्वती भगवती! कहकर अब कहने चला हूँ—

*"भासतां भवभयैकभेषजं मानसे मम मुहुर्मुहुर्मुहुः।*
*गोपवेषमुपसेदुषः स्वयं यापि कापि रमणीयता विभोः॥"*

# गोकुल

*"श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः।*
*अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥"*

गोकुल—गोकुल और गोलोक, पर्यायवाची ही तो हैं दोनों। नाम में, अर्थ में और स्वरूप में भी गोकुल अपने गोलोक का ही पर्याय है। परात्पर नित्य जगत् का जब वह लीलामय अधिष्ठाता अभी बीते इस श्वेतवाराह कल्प के अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त और हमारे इस कलियुग के प्रारम्भ के संधिकाल में इस धरणी को धन्य करने चला—वह क्या कभी प्राकृत जगत् में आता है? वह आता ही अपने दिव्यधाम, दिव्यभाव, दिव्यरूप में है। उसका वह दिव्यधाम—वह गोलोक उससे पूर्व ही धरा के प्राकृत जगत् को आत्मसात् करके मूर्त हो गया। कालिन्दी का वह वामकूल, वह बृहद्वन धन्य हो गया। वह गोकुल—गोलोक मूर्त हो गया था वहाँ और फिर उसके पादपपुञ्ज, लताकुञ्ज, तृण-दल, पशु-पक्षी, कीट-भृङ्ग, नर-नारी, बाल-वृद्ध—वह नित्य जगत् ही तो मूर्तिमान् हो गया था वहाँ।

नित्यलीला के नित्यपरिकर पधारे, उस लीला के उच्चतम अधिकारी पधारे, उत्कट अभीप्सु पधारे और—और युग-युग की श्रुतियों की कामना सफल हुई। उनका चिरन्तन लक्ष्य उनके मध्य आवेगा—वे व्रजदेवियों में पधारें नहीं तो क्या यह सुयोग पुनः प्राप्त होने को है। मुनियों के मञ्जु मानस, साधनपरिशुद्ध--स्नेहस्निग्ध अन्तर इस गोकुल के तृण, लता, कुञ्ज, भृङ्ग, कीट, पक्षी, मृग, मर्कट आदि के रूप में तृप्त होने—कृतार्थ होने को मूर्त हुए हैं।

गोलोक या गोकुल—चाहे जो नाम दीजिये इसे, है यह गौओं का अपरिमित गोष्ठ—गौओं का, उन गौओं का जिनकी चरणरेणु कामधेनु का सर्जन करती है, जिनकी हुंकृति में श्रुतियाँ सार्थक होती हैं और जिनका धवल क्षीर क्षीरसागर-शायी को भी पिपासु—उत्कण्ठित पिपासु बना देता है। यह नन्दिनी, कपिला, श्यामा, भद्रा का गोकुल—अमल धवल प्रेमाश्रुओं के द्वारा ही इसका कण-कण घनीभूत हुआ है। युग-युग की अनन्त साधना, कल्प-कल्प की उन्मद अभीप्सा अन्तर में संचित किये आकुल हृदय ही यहाँ इन विविध रूपों में आ पाये हैं और इनके मध्य—इनके मध्य ये चिद्घन, आनन्दघन नित्यप्रेमघन श्याम के ये शाश्वत परिकर—इनके आये बिना क्या वह लीलामय आ सकता है?

गोकुल भूमि पर मूर्त हुआ—भूमि की अल्पता उसे आबद्ध तो करने से रही; किंतु भूमि-वासियों की अल्पता की भी एक प्रतीति है और हमारी इसी प्रतीति में वह गोकुल है। गोकुल—जैसे वह नित्यधाम धरा पर आकर गोकुल हो गया है, धरा को धन्य करने के लिये वह धरा के अनुरूप, उसके इस प्रान्त को आत्मसात् करके भी तदाकार हो गया—वैसे श्रीव्रजराज और श्रीव्रजेन्द्र पट्टमहिषी—बाबा और मैया—जब श्याम को आना है तो उन्हें तो पहले ही आना चाहिये न?

गोलोक इस धरा पर—भगवान् ब्रह्मा की इस सृष्टि में तदनुरूप साकार हुआ—गोलोक के अधिपति को भी तो स्रष्टा का मानवर्धन करना ही चाहिये। बाबा और मैया—श्याम की नित्य लीला, वह मोहन का शाश्वत धाम और वहाँ बाबा और मैया की शाश्वत उपस्थिति न हो तो लीला चलेगी कैसे? लेकिन गोलोक आज गोकुल हो गया है! धरा के एक भाग का रूप लेकर ही मूर्तिमान् हुआ वह, तब स्रष्टा की कला को भी कृतार्थ होना चाहिये।

सृष्टि के आदि में वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी भगवती धरा ने भगवान् पितामह के पावन पदों में प्रणिपात किया 'प्रभो, आप कहते हैं कि हम सृष्टि का अभिवर्धन करें; आपकी आज्ञा अनुल्लङ्घनीय है; किंतु—किंतु जब आप हमें सृष्टि में ही लगाते हैं तब हमें आशीर्वाद दें, परात्पर प्रभु जब भूमि पर प्रकट हों, हमारा वात्सल्य उनमें अविच्छिन्न हो !'

अच्छा वरदान है, बड़ी उत्तम प्रार्थना है—पर भगवान ब्रह्मा के आठों नेत्र एक क्षण को बंद हो गये। वे ध्यानस्थ-से हुए और जैसे स्वतः उनके मुख से निकल गया हो-'एवमस्तु !' एक क्षण को स्वयं वे कमलासन चौंके—यह हुआ क्या ? उस साधनातीत को क्या प्रदान किया जा सकता है ? लेकिन स्रष्टा की वाणी तो अज्ञान एवं असत्य का आश्रय नहीं करती। पितामह ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका लिया—जो उस अचिन्त्य अपरिमेय लीलामय की इच्छा !

भगवान् द्रोण और भगवती धरा—कम से कम स्रष्टा की दृष्टि में तो गोकुल में यही व्रजाधिप नन्दराय और श्री यशोदा हो रहे हैं इस द्वापर के अन्त में। बाबा ने अपने अंश को आत्मरूप दे दिया—भगवान् द्रोण उनमें एकीभूत हो गये, जैसे सागर का जल-कण पुनः उसमें आ मिला हो और मैया का ही अंश तो धरा में आता है। उसी के वात्सल्य, क्षमा के अपार सागर के सीकर तो निखिल सृष्टि की माताओं में स्नेह का आविर्भाव करते हैं; पर यह बात स्रष्टा की ज्ञानसीमा से परे है और इसी भाँति हमारी ज्ञानसीमा से परे है यह गोलोक का मूर्तरूप।

× × ×

गोकुल—मथुरा के ठीक सम्मुख श्री यमुनाजी के दूसरे तट पर बसा यह गोकुल, वहाँ असंख्य गायें और उनके संरक्षक गोपगण। गोकुल के अधिपति श्रीव्रजेन्द्र और मैया—मैया यशोदा—बस! यह सीधी-सादी बात ही समझ में आ जाय तो बहुत। हम अपने गोकुल की ही बात करें।

महाराज ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश में महाराज दशार्ह की परम्परा में महाराज वृष्णि इतिहास-प्रसिद्ध हैं। वृष्णि-वंश में विदूरथपुत्र महाराज देवमीढ़ की वंश-परम्परा मुख्य-रूप से द्विधा हो गई। महाराज देवमीढ़ की दो पत्नियों में एक क्षत्रियकन्या और एक वैश्यकन्या थीं। क्षत्रियकन्या के द्वारा उनके पुत्र हुए शूर और इन्हीं महाराज शूर की पत्नी मारिषा के हुए महाभाग श्री वसुदेवजी। महाराज देवमीढ़ की दूसरी पत्नी जो वैश्यकन्या थीं, उनके पुत्र पर्जन्यजी हुए। वैश्यकन्या के पुत्र होने के कारण पर्जन्यजी गोप माने गये। महाराज देवमीढ़ ने उन्हें मथुरा-मण्डल का व्रजाधिप निश्चित किया। इस प्रकार भारत में यादव-राजधानी मथुरा में यह नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई कि राज्य के समस्त गोधन का आधिपत्य नरपति के हाथ में नहीं रहा। पर्जन्यजी ने श्री यमुनाजी के दूसरे तटपर अपना केन्द्र बनाया। उनका गोष्ठ-केन्द्र—उनका गोकुल मथुरा से कम वैभवशाली, शक्तिशाली नहीं रहा। गोधन—भारत का सर्वश्रेष्ठ धन जिसका अपना हो, उसके वैभव, उसके ऐश्वर्य की शोभा और महत्ता स्पर्धा से परे है।

शास्त्र नहीं कहते कि क्षत्रिय के अतिरिक्त कोई और भी शासन-दण्ड सम्हाले। अपने वर्णाश्रमाचार का पालन ही कल्याणप्रद है। मथुरा यदु-राजधानी है—गोकुल उससे अमर्ष करे क्यों। अन्ततः मथुरा-नरेश व्रजाधिप के बन्धु ही तो हैं और वह बन्धुत्व—उसमें अधिकार का मद तो पीछे—बहुत पीछे आया।

व्रजाधिप पर्जन्य की पट्टमहिषी वरीयसी ने पाँच कुमार प्राप्त किये, पञ्चम पुरुषार्थ ही उनकी गोद में जैसे पञ्चधा हो गया हो। उपनन्द, अभिनन्द, संनन्द, नन्द और नन्दन। नन्दिनी और सुनन्दा—दो कन्याएँ भी आयीं उनकी पावन गोद में। गोष्ठाधिपत्य कोई साम्राज्य नहीं, जो वंश-परम्परा से ही चले और ज्येष्ठ पुत्र को ही प्राप्त हो। गोकुल के गोप—वे सहयोगी, सहकर्मी, सहधर्मी ही नहीं—भ्राता होते हैं। उनकी समिति ही अपना अधिपति चुना करती है। गोकुल के गोपों ने व्रजाधिप के मध्यम कुमार नन्दराय को अपना अधिपति चुन लिया। बड़े भाई उपनन्द और अभिनन्द तो प्रस्तावक और समर्थक ही थे और तब भला, छोटे भाई क्या उस उल्लास में योगदान करने से पीछे रह सकते थे।

वह दिन--उल्लास, आनन्द, उत्सव का वह दिन व्रज में क्या विस्मृत होने को है कभी--उस दिन व्रजाधिप पर्जन्य ने श्रीनन्दराय के मस्तक पर अपनी पगड़ी बाँधी, बड़े भाइयों ने दण्ड लेकर दोनों पार्श्वों में उपस्थिति ग्रहण की और छोटे भाइयों ने पृष्ठभाग में रक्षा का भार लिया। वृद्ध गोपों ने आशीर्वाद दिया। तरुणों ने अभिवादन किया और युवकों ने जयनाद से गगन गुञ्जित कर दिया। महर्षि शाण्डिल्य का वेदपाठ और विप्रों के स्वस्तिवाचन--सब परिपूत-से हो गये उस दिन।

माता पाटली की प्राणप्रिय कन्या, महागोप सुमुख की जगत्पावनी पुत्री और बाबा पर्जन्य की शीलमयी पुत्र-वधू--आज व्रजेश्वरी बनी वह। बड़ी जेठानी तुङ्गी ने उसे स्नान कराया, छोटी जेठानी पीवरी ने पट्टवस्त्र दिये, देवरानी कुवला ने आभरण अङ्गों में सजाये और छोटी देवरानी अतुला--वह अनुजा-सी तो आज पदों में लाक्षाद्रव सज्जित करते तुष्ट ही नहीं होती। यशोदा--व्रजेश्वरी यशोदा--और सचमुच व्रज का सौभाग्य-सुयश उस व्रजेश्वरी का दान ही तो है।

आज श्रीनन्दराय व्रजेश्वर हो गये। आज उनका अभिषेक हो गया है। व्रजाधिप--गोकुल तो व्रजाधिप का अपना गोष्ठ है। वे तो मथुरा-मण्डल के--पूरे चौरासी कोस व्रजमण्डल के अधिपति हैं। पूरा व्रज उनका है--उनका अपना ही परिवार तो है। श्रीपर्जन्य जी से बरसाने के अधिपति श्रीमहीभानु जी की प्रगाढ़ मैत्री रही है और जब श्रीनन्दराय जी व्रजेश्वर हुए--श्रीवृषभानुजी बरसाने के अधीश्वर को लगा, वे स्वयं ही गोष्ठेश्वर हो गये हैं। वे स्वयं व्रजपति हो गये होते तो इतने आनन्दित हो पाते--कहना कठिन ही है। श्री नन्दरायजी से उनकी बालमैत्री है। दोनों कुमारावस्था के सखा और किशोरावस्था के सहपाठी हैं। बरसाना--व्रज में वही तो गोकुल के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ गोष्ठ है। व्रजपति का तिलक बरसाने के स्वामी के करों से ही तो साङ्गता प्राप्त करता है और साङ्गता का प्रश्न ही कहाँ रहा, जब वृषभानुजी ने दण्ड लेकर व्रजेश्वर के अभिषेक में हठात् संनन्दजी के साथ पृष्ठरक्षक का स्थान लेकर सबको चौंका दिया। चौंका तो दिया वृद्ध महीभानुजी ने--सबसे प्रथम उपहार वे आवेदित करेंगे--आशा किसे थी। उन्हें तो व्रजपति अभिवादन करते पितृपदों में प्रणत होने के साथ और वे आशीर्वाद दे देते; किंतु--किसे पता था कि वे इस प्रकार तिलक क्रिया सम्पन्न होते ही स्वयं इतनी शीघ्रता से उठेंगे और उनका उपहार--उसकी परिगणना कौन करे! उन्होंने तो उपहार के निश्चित नियम एक ओर ही रख दिये। अमूल्य रत्नराशि, अपार गोधन और यह वस्त्राभरण--यह तो प्रथा नहीं है। प्रथा तो केवल उपहार का नाम करने की है--एक पात्र दधि और बस! व्रजपति क्या कर लेते हैं? प्रेमोपहार--प्रथापूर्ति; किंतु जब स्नेह सीमाओं को अतिक्रान्त कर उमड़ता है, कौन उसे वारित कर सकता है। 'व्रजेश, यह भी तुम्हारा एक अनुचर है--इसे अपनाये रहना' स्नेहगद्गद-स्वर पिता का संकेत पाकर जब सचमुच वृषभानुजी ने मस्तक झुकाकर चरण-स्पर्श ही करने का प्रयत्न किया--श्रीनन्दराय ने कब उनको उठाकर हृदय से लगा लिया--यह देखना कुछ सहज नहीं था। सभासदों के नेत्र स्नेह-सिक्त हो गये--नव व्रजपति ने अविलम्ब श्री महीभानुजी के पदों में जब मस्तक रक्खा और जब उन पूज्य ने चुपचाप उठाकर हृदय से लगा लिया उन्हें। वाणी आशीर्वाद दे--क्या आवश्यकता इसकी और इतनी शक्ति आवे भी कहाँ से। सच्चा अभिषेक तो अब हो रहा है। नेत्रों की इस स्नेह-सुधा से किस तीर्थोदक की तुलना की जाय।

× × ×

श्रीनन्दराय--व्रजेश्वर श्रीनन्दराय--जैसे व्रज नवीन हो गया एक ही दिन में। व्रज और व्रजपति--सदा ही यह बन्धुत्व का ही सम्बन्ध रहा है। व्रज का प्रत्येक गोष्ठ, गोष्ठ का प्रत्येक गोप व्रजपति के लिये जीवनोत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहा है और व्रजपति--व्रजपति ने ही कब जाना है कि उनका भी कोई गोष्ठ है, उनका भी कोई गृह है। उनके लिए प्रत्येक गोष्ठ, प्रत्येक गृह अपना ही रहा है; किंतु अब--अब तो बात ही अद्भुत हो गई है। पता नहीं क्या हो गया है--गोपों को

लगता है, उनके गोष्ठ उनकी अपेक्षा व्रजपति के अधिक स्नेह-भाजन हैं। अब तो अपना गोष्ठ, अपना गृह, अपना शरीर--जैसे सब एक कोटि में आ गया है और प्राण--प्राण तो इन शरीरों में नहीं--वह तो व्रजपति के रूप में साकार हो गया है। व्रजपति--भला, ऐसा भी कहीं किसी ने कोई अधिपति पाया होगा--उन्हें अपने गृह और गोष्ठ का पता ही नहीं। व्रजेश्वरी स्वयं गोष्ठ न सम्हालें तो बहत्तर कोटि गायों का बन्धन कैसे होगा--जैसे वे सोच ही नहीं सकते; किंतु गोकुल ही नहीं, पूरे व्रज में, व्रज के एक-एक गोष्ठ में, एक एक गोप के यहाँ कितनी गायें हैं, उनके प्रतिमास कितने बछड़े होते हैं, किसके गोष्ठ में किन-किन रंगों की गायें हैं, किस गौ या वृषभ की क्या विशेषता है, किस बछड़े या बछड़ी की विशेषता कैसे बढ़ायी जाय--जैसे सब वे वहीं बैठे प्रत्यक्ष देखते-से रहते हैं। पशुओं के जल, तृण, सेवा, स्थान आदि का प्रबन्ध गोप भला, क्या करें? वे कुछ सोचें--इससे पूर्व तो व्रजपति का आदेश उसे सम्पन्न भी करा देता है।

किसी के घर जन्म, गोचारण, विवाह--कोई मङ्गलकृत्य होनेवाला है--इतना बड़ा व्रज, नित्य महोत्सव ही रहता है उसमें। गोप सोचते ही रह जाते हैं--व्रजेश्वर को आमन्त्रित करने का सौभाग्य मिलेगा उन्हें, कहाँ--व्रजाधिप तो आमन्त्रण से बहुत पूर्व स्वयं आकर महोत्सव का प्रबन्ध ले लेते हैं। व्रज में वे ही तो कुलपति हैं। सभी गृहों के विशेष प्रबन्ध वे कैसे सम्हाल लेते हैं--वे ही जानें।

ये गोप--ये कदाचित् सोते समय स्वप्न भी यही देखते होंगे कि व्रजराज की कौन-सी सेवा वे कर सकते हैं। यह गौ सुगन्धित दूध देती है, यह वृषभ अत्यन्त पुष्ट और सरल है, यह बछड़ी पञ्चचिह्नों से सुचिह्नित है, यह अश्व तो श्यामकर्ण है, यह मणि तो नन्दभवन में ही शोभित होगा--ये बड़े उपहार ही नहीं, फल, पुष्प, दल—छोटे-बड़े का प्रश्न ही कहाँ है। ऐसा क्या पदार्थ है, जो व्रजेश को देने के समय कुछ भी महत्वपूर्ण प्रतीत हो। पर ये गोप--इन्हें तो कहीं विशेषता भर दृष्टि पड़ जाय--'यह तो नन्दराय को देना है'--ये उसी समय दौड़ेंगे और व्रजपति--वे कैसे किसी के स्नेह को अस्वीकार कर दें। यह दूसरी बात कि उपहार के बदले उससे शतगुणित उपहार उसके घर पहुँच जाता है।

ये गोपियाँ--ये तो पुरुषों से भी आगे ही रहना चाहती हैं। सब कहीं तो अनुगामिनी हैं और व्रजेश्वरी की सेवा--भला, यह भी पीछे रहने की बात है। गोप कुछ घर लाते हैं और इन्हें सूझती है--'यह तो व्रजरानी के उपयुक्त है।' गोप भी तो प्रोत्साहित ही करते हैं। यह नवतरु का फल है, यह प्रथम नवनीत है गाय के बछड़ा देने के पश्चात् और जो मैके से ये उपहार आये हैं--जैसे व्रजरानी को दिये बिना कुछ काम में लेने योग्य हो ही नहीं सकता। कोई करे भी क्या--कोई दिन तो ऐसा नहीं बीतता, जब नन्दभवन से उन व्रजेश्वरी का कोई न कोई उपहार प्रत्येक गृह में न पहुँच जाता हो। आज नागपञ्चमी है, आज तृतीया है, आज गणेशोत्सव है--श्रीव्रजपति के महोत्सवों की भी कोई गणना है और भला, ऐसा भी महोत्सव कैसे हो सकता है जब कम से कम गोकुल के नर-नारी भी नन्दभवन में भोजन न करें। व्रजेश्वर की चले तो पूरा व्रज प्रत्येक महोत्सव में आवे और व्रजेश्वरी तो समझ ही नहीं पातीं कि प्रत्येक महोत्सव में सब गोष्ठ क्यों नहीं आ सकते; किंतु दूरस्थ गोष्ठों की सुविधा, उनके अनुनय का सङ्कोच भी तो रखना ही पड़ता है। मास में दो-एक बार वे एकत्र हो जाते हैं यहाँ, यही क्या कम कृपा है सबकी।' व्रजपति को किसी प्रकार संतोष करता पड़ता है।

× × ×

'श्रीव्रजराज के कुमार होता' बड़ी तीव्र लालसा है व्रज की। लालसा—उत्कण्ठा—अभीप्सा—आतुरता, दिन बीते, मास बीता और मास व्यतीत होने लगे। लालसा—वह तो कब की आतुरता बन चुकी और अब तो आराधना चलने लगी है। गोप भगवान् सूर्य को अर्घ्य

दे करके प्रार्थना करते हैं, गोपियाँ तुलसी के समीप सायंकाल दीपक रखकर अञ्चल फैलाती हैं, गायों के पदों में पुष्पाञ्जलि देकर प्रत्येक गोष्ठ में प्रत्येक अन्तर बड़ी आतुर भावना से माँगता है--'व्रजराज को एक कुमार !'

ये नन्दराय--कहने पर भी ये कोई अनुष्ठान कहाँ करते हैं। ये तो बहुत आग्रह करने पर हँस देंगे और कह देंगे--'श्रीनारायण प्रसन्न रहें, यही क्या कम है।' व्रजरानी - यशोदाजी--ये पति से अधिक सन्तोषी, उन्हें कौन क्या सिखावे। इनके लिये तो बस, व्रजपति प्रसन्न रहें--एक ही प्रार्थना जैसे विश्व में बनी ही है।

'श्रीनन्दराय के केशों में उज्ज्वलता दर्शित होने लगी, गोपों की आकुलता बढ़ गई। क्या उन्हें युवराज प्राप्त नहीं होगा ? 'व्रजरानी का शरीर तो कुछ स्थूल हो चला !' गोपियों की प्रार्थना ने व्रत का रूप ले लिया। गोपों ने अनुष्ठान आरम्भ कर दिये। समस्त गोकुल—पूरा व्रजमण्डल एक युवराज चाहता है--न चाहें व्रजराज, न करें प्रार्थना व्रजेश्वरी--पूरे व्रज की प्रार्थना, वर्षों की आराधना, व्रत, अनुष्ठान--वे श्रीनारायण क्या इतनी उपेक्षा कर देंगे ? उन्हें एक युवराज चाहिये--युवराज !

× × ×

इधर गोकुल पर वे सर्वेश्वर, दयामय श्रीनारायण परम प्रसन्न हैं; नहीं तो, क्या ये मूर्तिमान् तप—ये महर्षिगण, कहीं इस प्रकार कृपा करते हैं ? अब तो अनेक तापसों ने समीप ही आश्रम बना लिया है। अनेक तपोधन, श्रुतिपारंगत, लोकप्रतिष्ठित विप्रवर्य स्वतः गोकुल चले आये हैं और नित्य इस प्रकार के अतिथि श्रीव्रजराय पर कृपा करने पधारते हैं—किसका पुण्य है इतना महान्, जो व्रजराय से स्पर्धा करे इस सौभाग्य में।

आज ये कोई तापसी पधारी हैं। ये तपस्विनी—ये मानवी हैं ? महाशक्ति जगदम्बा इस वृद्धा तपस्विनी के रूप में नहीं पधारीं—कैसे विश्वास हो ! इतना तेज—इतना प्रभाव मानव तो क्या, देवता में भी क्या शक्य है ? समस्त अन्तःपुर ससम्भ्रम खड़ा हो गया। श्रीनन्दरानी ने उनके चरणों में मस्तक रक्खा, अञ्चल फैलाकर।

'मङ्गल हो !' ओह, इतना स्निग्ध, इतना कोमल, इतना वात्सल्यपूर्ण स्वर ! स्नेह के कारण आशीर्वाद जैसे गद्गद कण्ठ में ही रह गया हो। ये उज्ज्वल रजतमय केश, यह तेजोमय वलीवलित गौरवर्ण शरीर और यह भुवन को परम प्रेम प्रदान करती वाणी—जगज्जननी, भगवती अखिलेश्वरी ही आयी हैं, इसमें गोपियों और व्रजरानी को अब कहाँ सदेह है।

'माँ, श्रीचरणों से यह सेविका का गृह कुछ काल पवित्र हो और मुझे सेवा का सौभाग्य मिले !' श्रीयशोदा जी ने चरण धोये, अर्चा की विधिपूर्वक और अन्त में प्रार्थना की। आज कितना अहोभाग्य है उनका, इस भव्य रूप में कितनी प्रसन्नता से भगवती ने उनकी पूजा स्वीकार की है।

'ना, मैया ! तू मुझे इस प्रकार टाले तो मैं टलने से रहा !' भगवती के साथ यह जो सुन्दर, सुवर सुकुमार बालक है पाँच-छः वर्ष का—कितना चपल, कितना भोला है। व्रजरानी का वात्सल्य तो इसे देखते ही उमड़ पड़ा था। वे तो संकोचवश ही उससे अबतक सम्मान का व्यवहार करती रही हैं। हृदय तो कहता है, उसे अङ्क में ले लो। वह उनके अर्पित नैवेद्य का कितना प्रसन्न होकर भोग लगा रहा है; पर वह मैया किसे कहता है ? वह क्या भगवती का पुत्र है ? लेकिन वह तो व्रजेश्वरी से कह रहा है—'मैया, मैं तेरा नवनीत छोड़कर अब कहीं जाने से रहा ! मैं तो यहीं रहूँगा—बस, यहीं रहूँगा।'

'मधुमङ्गल तनिक चपल है !' अच्छा, तो इसका नाम मधुमङ्गल है ! भगवती ने व्रजरानी के इस भाव को बोलते ही लक्ष्य कर लिया। उन्होंने परिचय दिया—'मुझे लोग पूर्णमासी कहते हैं और यह अवधूत वृत्ति से रहनेवाला बालक मधुमङ्गल है। योग के प्रभाव से हम लोग सदा

इसी वय में रहते हैं। यह चपल है, विनोदी है; पर कहता सच है। मैं स्वयं व्रजराज से प्रार्थना करने आयी हूँ कि मेरे लिये तुम्हारे नगर से बाहर एक उटज का प्रबन्ध हो जाय—मेरी इच्छा इस गोकुल के सांनिध्य में ही रहने की है!'

'गोकुल का और व्रजराज का अहोभाग्य!' नन्दरानी ने चरणों में आनन्दातिरेक से मस्तक रक्खा। कोई फल माँगे और उसे कल्पतरु ही प्राप्त हो जाय—आज तो उनके उल्लसित हृदय ने यही अनुभव किया है।

भला, यह भी कोई आदेश देने की बात है—सेविका ने दौड़कर व्रजराज को संवाद दिया! निपुण सेवक स्वयं व्रजराज के लघुभ्राता लेकर आश्रम की व्यवस्था करने चल पड़े तत्काल और श्रीनन्दराय को तो अब उन तपस्विनी के चरणों में अपना भाल पवित्र करना है।

'तुम्हारी गोद पूर्ण हो!' भगवती पूर्णमासी ने अपने अभिनव आश्रम का संवाद पा लिया और उठीं, नन्दभवन से चलते समय उन्होंने चरणों में प्रणत व्रजरानी को आशीर्वाद दिया।

'भैया, मेरा सखा आवेगा! मेरा सखा!!' यह भगवती का बाल अवधूत—यह आशीर्वाद का भाष्य कर रहा है।

'यह क्या कहा भगवती ने?' श्रीनन्दराय ने विचित्र भाव से सुना। श्रीनन्दरानी ने दृष्टि ऊपर की आश्चर्य के भाव से।

'भगवती ने आशीर्वाद दिया। व्रज में युवराज आवेगा।' गोपियाँ, दासियाँ—उनके आनन्द का कौन वर्णन करे। गोकुल के उत्कण्ठित कर्णों ने सुना भगवती का आशीर्वाद और उनके हृदय ने दुहराया—'व्रज में युवराज आवेगा!'

# मथुरा

*मातरं पितरं भ्रातॄन् सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।*
*घ्नन्ति ह्यसृतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥*

—भागवत १०।१।६७

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रलयपयोधि के मध्य उन शेषशायी भगवान् नारायण की नाभि से निखिल-लोकात्मक पद्म और उस अनन्त सरोज की कर्णिका पर अरुणवर्ण, चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा—उन लोक-स्रष्टा चतुरानन के मानस पुत्रों में ही तपोमूर्ति भगवान् अत्रि और महर्षि अत्रि की पत्नी महासती अनसूया का त्रिभुवन-विख्यात पातिव्रत्य-प्रभाव क्या विवेचना की अपेक्षा करता है ? महर्षि कर्दम की उन लोकपूज्या पुत्री ने अपने तपोबल एवं पातिव्रत्य के प्रभाव से त्रिदेवों को अपना पुत्र बनाया । लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्मा ही अपने अंश से अत्रि-तनय चन्द्रदेव हुए।

भगवान् चन्द्रदेव के पुत्र बुध और उस पाद्मकल्प से इस वर्तमान श्वेतवाराहकल्प के इस अट्ठाईसवें कलियुग तक चला आता परम प्रतापी क्षत्रियों का सोमवंश—कैसे सम्भव है कि कोई इतनी दीर्घ परम्परा की नामावली भी रख सके । वर्तमान मन्वन्तर में सोमवंश में महाराज ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु की राजधानी मथुरा हुई। महाराज यदु के पुत्र क्रोष्टा के वंश में ही महाराज दशार्ह की परम्परा में सात्वत हुए। इन्हीं के नाम पर यादवगण सात्वतीय कहे जाते हैं और दाशार्ह भी। महाराज सात्वत के पुत्रों में वृष्णि परम धार्मिक हुए। अपने पूर्वज महाराज ययाति के शाप को आदर देने के लिये उन्होंने राजसिंहासन अस्वीकार किया और सिंहासन पर उनके भाई अन्धक आसीन हुए। महाराज अन्धक का ही दूसरा नाम महाभोज है और इसी से उग्रसेनादि भोजवंशी कहे जाते हैं। यद्यपि श्रीवृष्णिजी ने सिंहासन स्वीकार नहीं किया, फिर भी वे मथुरा में महाराज का ही सम्मान पाते रहे और आगे भी उनके वंशज महाराज अन्धक के वंशजों के लिये सम्मान्य ही रहे। इसी से जब दोनों वंशों में पर्याप्त अन्तर हो गया, तब अन्धक-वंशीय राजकुल ने वृष्णि-वंश में अपनी कन्याएँ देना अपने लिये गौरव की बात समझा।

महाराज वृष्णि के वंश में आगे विदूरथ जी हुए और उनके पुत्र देवमीढ़ जी के ही पुत्र हुए शूरसेन जी। श्रीकृष्णचन्द्र अपने पूर्वज महाराज वृष्णि के कारण वार्ष्णेय और पितामह शूरसेनजी के कारण ही शौरि कहे जाते हैं। श्रीशूरसेन जी की पत्नी महादेवी मारिषा के दस पुत्र हुए—श्रीवसुदेवजी, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक। श्रीवसुदेवजा के जन्म के समय आकाश देवताओं की दुन्दुभियों के निनाद से गुञ्जित हो गया था और इसी से उनका एक नाम आनकदुन्दुभि भी पड़ गया।

महाराज अन्धक के वंश में आगे महाराज आहुक हुए। महाराज आहुक के दो पुत्र हुए, देवक और उग्रसेन। श्रीउग्रसेन जी ही पिता के पश्चात् मथुरा के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। श्राउग्रसेन जी के नौ पुत्र हुए—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टिमान् और तुष्टिमान्। इनके अतिरिक्त महाराज उग्रसेन के पाँच कन्याएँ हुईं—कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका। इन कन्याओं का विवाह वसुदेवजी के भाइयों से हुआ। महाराज उग्रसेन के भाई देवकजी के चार पुत्र और सात कन्याएँ हुईं। पुत्रों के नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन तथा कन्याओं के नाम हैं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी।

श्रीवसुदेव जी का विवाह महाराज उग्रसेन के भाई देवक की बड़ी कन्या धृतदेवा से हुआ और फिर देवक जी ने अपनी दूसरी पुत्री शान्तिदेवा का भी उन्हीं से विवाह कर दिया। इसी क्रम से उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता और सहदेवा का पाणिग्रहण भी वसुदेवजी ने किया। इस कुल से बाहर श्रीरोहिणी जी का पाणिग्रहण भी किया उन्होंने। अन्त में महाराज उग्रसेन, श्रीदेवक जी और युवराज कंस का आग्रह था कि देवकी का विवाह भी उन्हीं के साथ हो।

कंस—वह परमपराक्रमी शूर, यह ठीक है कि वह उद्धत—उच्छृङ्खल प्रकृति का है और उसने अपनी प्रकृति के नरेशों से ही मित्रता कर रक्खी है; किंतु उसी की शक्ति पर मथुरा का सिंहासन चक्रवर्ती हुआ है। दूसरों की तो क्या चर्चा, मगधराज जरासंध ने युद्ध में उससे संतुष्ट होकर अपनी दोनों कन्याओं का उससे विवाह कर दिया है। मथुरा की सेना का वही महासेनानायक है और सेना में उसने अपनी प्रकृति के ही असुर नायक एकत्र कर लिये हैं। उसका आग्रह कैसे टाला जा सकता है। अपने चाचा की सबसे छोटी कन्या से वह बहुत स्नेह करता है। उसकी सब बहिनें जब वसुदेवजी के ही गृह में उनकी या उनके भाइयों की पत्नियाँ हैं, तब यह सबसे छोटी बहिन अकेली कहाँ जाय? बहिनों के साथ तो उसको कहीं भी परायेपन का बोध एक दिन भी न होगा। भला, मथुरा से बाहर उसे कैसे विवाहा जाय और मथुरा में तो ये वृष्णिश्रेष्ठ श्रीवसुदेवजी ही सर्वोत्तम पात्र हैं। कंस के आग्रह की रक्षा करनी ही थी श्रीवसुदेवजी को।

× × ×

मथुरा के दिग्विजयी युवराज कंस की सर्वाधिक स्नेह-भाजन, सबसे छोटी बहिन देवकी का विवाह है। युवराज के उल्लास का कोई ठिकाना नहीं; किंतु पता नहीं क्यों श्रीवसुदेवजी को इस धूम-धाम में अभिरुचि नहीं हो रही है। उन्हें लगता है, यह राजस आवेग है और इसपर भरोसा नहीं किया जा सकता। कोई अज्ञात आशङ्का उन्हें अकारण ही क्लान्त, शिथिल कर रही है और ये यदुकुल के परमाचार्य, दैवज्ञ-शिरोमणि महर्षि गर्ग—इतनी उमंग तो इनमें कभी देखी नहीं गयी। पता नहीं क्यों बार-बार उनका शरीर रोमाञ्चित होता है, उनको नेत्र पोंछने पड़ते हैं और गद्गद स्वर उनके मन्त्रपाठ को थकित, विरमित कर देता है। ऐसी क्या बात है? पूछने पर भी वे कुछ बतायेंगे, ऐसी कहाँ आशा है और जो गूढोक्ति वे कह जाते हैं, भला कौन समझ सकता है उसे।

विवाह सम्पन्न हुआ। महाराज उग्रसेन ने अपार भेंट दीं दम्पति को और युवराज कंस तो संतुष्ट ही नहीं हो रहे थे। बहिन को क्या दे दें—जैसे उनके लिये सम्पूर्ण सम्भार आज अत्यन्त तुच्छ था। महाभाग देवकजी ने चार सौ ऐरावत के कुल में उत्पन्न स्वर्णमालाओं से सुसज्जित महागज, पंद्रह सहस्र श्यामकर्ण अश्व और छः सहस्र तीन सौ रथ एवं अपार मणि-रत्न, दास-दासियाँ आदि प्रदान किये—अन्ततः यही तो उनकी सबसे छोटी कन्या का विवाह था।

'युवराज, अब लौटें!' श्रीवसुदेवजी ने रथ पर बैठने के लिये प्रस्तुत होते हुए आग्रह किया।

'आप, विराजें!' यह क्या—क्या मथुरा के चक्रवर्ती साम्राज्य के युवराज सूत का काम करेंगे? लेकिन कंस तो कूदकर सूत के स्थान पर बैठ चुके और रथरश्मि सम्हाल ली उन्होंने। बेचारा सूत एक ओर खिसक गया।

'मैं युवराज के इस सम्मान-दान से ही अनुगृहीत हूँ!' भला, हठी कंस के सम्मुख श्रीवसुदेवजी का आग्रह टिक सकता है और आज तो बहिन के स्नेह में जैसे अपने को ही भूल गया है।

'युवराज के लिये इतना ही बहुत है! अब आप वसुदेवजी को आज्ञा दें।' महर्षि गर्ग की वाणी में आग्रह, आदेश, आशङ्का; क्या है—कहा नहीं जा सकता।

'मैं देवकी को उसके सौध तक पहुँचाकर लौटता हूँ।' कंस ने हाथ जोड़कर मस्तक तो झुका दिया आचार्य को; किंतु उसकी वाणी का गर्व स्पष्ट है—वह आदेश मानने को प्रस्तुत नहीं।

'प्रभु मङ्गल करें !' यह भी कोई समयोचित आशीर्वाद है—कौन पूछे आचार्य से। उनकी कालातीत दृष्टि तो पता नहीं क्यों एक बार ऊपर उठी और अत्यन्त गम्भीर हो गये वे। अवश्य ही युवराज ने उनका आदेश स्वीकार नहीं किया, यह उन्हें रुचिकर नहीं लगा। लेकिन युवराज कहाँ ध्यान देते हैं ! विनय कहाँ है उनके स्वभाव में।

× × ×

'मूर्ख कंस !' कंस स्वयं सारथि बनकर श्रीवसुदेवजी एवं देवकी को रथ में बैठाये लिये जा रहा था। यह इस प्रकार कौन उसे पुकारने का साहस कर रहा है। रथ की रश्मि उसने खींच ली। अश्व स्थिर हो गये। क्रोध से नेत्र जल उठे कंस के। उसने इधर-उधर देखा। वह चिल्लाना ही चाहता था, पर शब्द तो ऊपर से आ रहा है। श्रीवसुदेवजी, देवकी और रथ का सूत भी चौंक गया। सब आश्चर्य से ऊपर देखने लगे। ऊपर—ऊपर आकाश में न तो कोई विमान है और न देवता; किंतु शब्द तो बहुत स्पष्ट हैं। वह किसी अलक्ष्य की वाणी कह रही है--'मूर्ख कंस ! तू जिसे इतने सम्मान से लिये जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न संतान तेरा वध करेगी !'

'मेरा वध !' कंस चौंका। 'उसका वध होगा ! उसकी मृत्यु होगी ! वह तो त्रिभुवन-विजयी होना चाहता है। वह तो मृत्यु को भी जीतकर बंदीगृह में बंद कर देने की बात सोच चुका है। उसका वध होगा ? वह मरेगा ?' बात तो यही आकाश से आते उन शब्दों में कही गयी और अब तो वह शब्द भी समाप्त हो गये। कंस के हाथ से रथ की रश्मि छूट गयी। उसे लगा--आज ही उसका वध होने जा रहा है। मृत्यु की कल्पना ही उसके लिये भयप्रद थी। वह तो अमर होना चाहता है।

'मेरा वध और इस देवकी की संतान के द्वारा !' एक क्षण में उसके नेत्रों से अङ्गार झड़ने लगे। उसने अधर दाँतों से काट लिया। रथ से कूद गया नीचे। सब स्नेह, सब सौहार्द, सब भ्रातृत्व एक क्षण में ही पता नहीं क्या हो गया। जहाँ शरीर और शरीर का सुख ही सब कुछ है, वहाँ कैसा प्रेम और कैसा सौहार्द। वहाँ तो अपने सुख, अपने स्वार्थपर जब तक कोई धक्का न लगे, वहाँ तक सब ठीक और जहाँ अपने स्वार्थ पर धक्का लगने की आशङ्का भी हुई, एक क्षण भी नहीं लगता मित्रता को घोरतम शत्रुता में परिवर्तित होते। वह आकाशवाणी सुनी वसुदेवजी ने और देवकी ने भी। उन्हें कम क्षोभ या आश्चर्य नहीं हुआ; किंतु कोई कुछ सोचे, इससे पूर्व तो कंस ने झपटकर देवकी के केश बायें हाथ से पकड़ लिये और उसके दाहिने हाथ ने झटके से कोष से खड्ग खींच लिया।

'अरे, अरे, आप यह क्या करने जा रहे हैं !' वसुदेवजी ने शीघ्रतापूर्वक कंस का हाथ पकड़ा और देवकी तथा कंस के मध्य में झुककर खड़े हो गये। कंस क्रोधावेश में अनर्थ कर सकता था; किंतु अनर्थ करने-जैसी क्षमता भी उसमें रही नहीं थी। वह देवकी को खींच लेने के लिये बल लगा रहा था और यह निश्चित ही था कि उस दैत्य से वसुदेवजी देर तक देवकी को बचा नहीं सकते थे।

'आप तनिक रुकिये और सोचिये तो—सभी शूरों में आपके गुणों की प्रशंसा होती है, भोज-वंश के यश को उज्ज्वल किया है आपने और भला, आप ही एक स्त्री का वध करेंगे और वह भी अपनी छोटी बहिन का, फिर इस विवाह के मङ्गल अवसर पर ? भला, आपके द्वारा यह घोर कर्म कैसे हो सकता है !' वसुदेवजी ने समझाने का प्रयत्न किया।

'यह आकाशवाणी--यह तो आप जानते ही हैं कि जन्म के साथ प्राणी की मृत्यु निश्चित हो जाती है। कोई आज मरे या सौ वर्ष पश्चात् मरे—जिसने जन्म लिया, उसका मरना तो निश्चित ही है।' लेकिन वसुदेवजी की बात कंस की समझ में कैसे आये। वह मरना कहाँ चाहता है।

'सब अपने ही प्रारब्ध कर्मों का फल भोगते हैं। प्रारब्ध समाप्त होने पर जीव शरीर छोड़ देता है और दूसरे शरीर को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार शरीर तो बार-बार मिलता रहता है। वह कोई दुर्लभ वस्तु नहीं और प्रारब्ध पूर्ण होने से पूर्व उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। जो जैसा कर्म

करता है, उसे वैसे ही शरीरों में जन्म लेना पड़ता है। जैसे हम जो सोचते हैं, स्वप्न में भी वही देखते हैं, वैसे ही मृत्यु के पश्चात भी हमें अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इस शरीर के साथ मोह करके व्यर्थ ही लोग भ्रम में पड़ते हैं। उचित तो यह है कि किसी से भी शत्रुता न की जाय; क्योंकि द्वेष का परिणाम मृत्यु के पश्चात् भी भयानक होता है। आप तो बुद्धिमान हैं—यह आपकी छोटी बहिन है, दुर्बल है, अत्यन्त दीन हो रही है; यह आपकी पुत्री के समान है; आप तो दीनों का पालन करनेवाले, दुर्बलों पर दया करनेवाले हैं, आपको इसे नहीं मारना चाहिये। यह कर्म आपके योग्य नहीं है।' चिकने घड़े पर जल की बूँदें तो चाहे पल भर टिकती भी हों, कंस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा इन बातों का। उसने कुछ सुना भी, कहा नहीं जा सकता। वह तो देवकी के केश पकड़कर खींच लेने को उद्यत है। वसुदेवजी बीच में पूरी शक्ति से उसे रोके हुए भी हैं और देवकी—वधिक के पास में बँधी गौ--क्या वर्णन करे कोई उस दशा का। रथ के स्तम्भ दोनों सुकुमार हाथों में पकड़ कर जैसे रथ से एक हो गई हैं वे। उनके कण्ठ में भय के आधिक्य से चीत्कार भी नहीं।

'कंस को समझाया नहीं जा सकता इस समय।' वसुदेवजी ने देख लिया। विद्युत् तो बहुत मन्दगति होती है, इस समय उनके मस्तिष्क में विचारों का अंधड़ उठा था। 'एक अबला नारी, अभी-अभी उन्होंने अग्निदेव को साक्षी रखकर उसका पाणि-ग्रहण किया है। वे पति हैं--रक्षा करना ही उनका परम धर्म है। यह परम दुर्धर्ष कंस--अपने प्राणों की आहुति देकर भी आशा नहीं कि वे देवकी को इस नृशंस से बचा सकें।' एक क्षण—एक क्षण तो एक कल्प से भी बड़ा दुस्सह प्रतीत हुआ वसुदेवजी को, देवकी को और कदाचित् कंस को भी। वह क्रूर भी शीघ्रता करने में प्राणपण से लगा था। सहसा एक विचार आया वसुदेवजी के मन में--'इस समय तो इसकी रक्षा ही प्रधान कर्तव्य है। क्या पता, मेरे पुत्र होंगे भी या नहीं। पुत्र हुए भी तो क्या ठिकाना कि आठवें पुत्र के होने तक कंस जीवित ही रहेगा। इसके विचार भी तो बदल ही सकते हैं, क्रोध का आवेश शान्त होने पर इसे सद्बुद्धि भी आ सकती है। यह सब न भी हो, तो भी उपस्थित भय को तो दूर ही करना है। भविष्य में होने वाले पुत्रों को भय है; पर इस समय तो इसके प्राण बचते हैं।

सहसा वसुदेवजी ने कंस को रोकने का प्रयत्न शिथिल किया और किसी प्रकार मुख को प्रसन्न बनाया। 'आप को भला, देवकी से क्या भय है? उस आकाशवाणी ने तो इसकी संतान के द्वारा आपकी मृत्यु बताई थी!'

'मैं भय की इस जड़ को ही समाप्त कर देता हूँ।' कंस ने दाहिना हाथ उठाया।

'लेकिन मैं इसके पुत्रों को उत्पन्न होते ही आपको दे दूँगा।' शीघ्रता से वसुदेवजी ने वाक्य पूरा किया।

'आप पुत्रों को उत्पन्न होते ही दे देंगे?' कंस का उठा हाथ धीरे से नीचे आ गया। केशों को पकड़नेवाली मुट्ठी भी तनिक शिथिल हुई।

'हाँ, आपको भय तो पुत्रों से है! मैं उन्हें उत्पन्न होते ही आपके पास स्वयं ले आऊँगा! इसे तो आप छोड़ दें। इससे तो आप को कोई भय नहीं।' वसुदेवजी ने स्वर को स्थिर कर लिया था।

'नहीं, इससे तो कोई भय नहीं है!' कंस ने केश छोड़ दिये। खड्ग कोष में चला गया। आप अपने वचन का ध्यान रखिये!' और अब उसमें इतनी शिष्टता नहीं थी कि किसी से क्षमा माँगे या विदा ले। वह मुड़ गया पैदल ही राजसदन की ओर।

देवकी--उन्हें तो प्राणदान ही मिला था। भय के कारण उन्होंने सुना ही कहाँ कि उनके पूज्य पतिदेव ने इस महाक्रूर को कैसे समझाया।

× × ×

माता देवकी को सन्तान होने वाली है। वृष्णिवंश के लिये इससे शुभ, उत्साहप्रद, मङ्गल समाचार कुछ नहीं हो सकता था; किंतु--किंतु क्रूर कंस, उसका भय--आनन्दोल्लास के स्थान पर विषाद ही बढ़ गया है सर्वत्र।

'महाराज उग्रसेन से आवेदन किया जाय! यादव सभासद्-गण इस पर विचार करें।' अनेकों ने अपने विचार प्रकट किये। अनेकों ने वसुदेवजी को मथुरा त्याग देने की मन्त्रणा भी दी; किंतु जब वचन दिया जा चुका--कैसे किसी के प्रति विश्वासघात किया जा सकता है। श्रीवसुदेवजी ने किसी प्रकार का बचाव स्वीकार नहीं किया।

वह दिन भी आया--एक कंगाल के भी पुत्र होता है तो वह अपनी फूटी थाली ही बजा लेता है। यहाँ महाराज उग्रसेन--चक्रवर्ती यादवसम्राट् के दौहित्र हुआ; किंतु किसी को पता तक न लगा। न वाद्य बजे, न आचार्य बुलाये गये, न वन्दियों ने यशोगान किया। श्रीवसुदेवजी ने पुत्रोत्पत्ति का संवाद सुना और मस्तक पर दोनों हाथ रख लिये। नेत्रों में अश्रु आवें--इतना भी बल हृदय में नहीं था--वहाँ शोक की ज्वाला थी। किसी प्रकार सम्हल कर उठे और वैसे ही सूतिका-गार की ओर चल पड़े।

'देवि.....!' कण्ठ से शब्द निकल नहीं पाता, वसुदेवजी ने दोनों हाथ फैला दिये। सत्य--कितना भीषण, कितना दुःखद सत्य है सम्मुख! उन्होंने कंस से कहा है—'पुत्रों को उत्पन्न होते ही पहुँचा दूँगा।'

'मेरा लाल!' माता ने नवजात शिशु को भली प्रकार देखा भी नहीं। अभी उसका नालो-च्छेद भी नहीं हुआ और.....

'हमारे भाग्य में वह नहीं! समझ लो, हुआ ही नहीं!' अब यहाँ ठहरा नहीं जा सकता। हृदय के साहस की भी सीमा है। नहीं--एक क्षण भी ठहरने से सत्य पर स्थित रहना कठिन हो जायगा। धात्री दे पुत्र को, इसकी अपेक्षा किये बिना ही स्वयं उन्होंने उठा लिया और शीघ्रता से मुड़ पड़े। उन्होंने सुना एक चीत्कार और भागे--भागे वेग से। नवप्रसूता मूर्छित हो गयी, मन, प्राण—सब यही कह रहे हैं; पर यदि रुक जायँ--चरण फिर नहीं उठ सकेंगे। संतान को हृदय से तो हाथों ने स्वतः लगा लिया है, पर वे उसकी ओर देखने में भी भयभीत हो रहे हैं; कहीं ममत्व विजय पाले हृदय पर—सत्य! सत्य! और वे भागे जा रहे हैं कंस के राजसदन की ओर।

× × ×

'युवराज, यह तुम्हारा भानजा! देवकी का प्रथम पुत्र.....!' कंस के सम्मुख उस नवजात बालक को रखकर अब वसुदेवजी ने देखा है। कुसुम-सुकुमार, कच्चे मांस का लौंदा, सौन्दर्य की मूर्ति और वह तो हँस रहा है, उन्हीं की ओर देख रहा है। मार्ग में भी उसने रोने का नाम नहीं लिया।

'आप सचमुच सुख-दुःख में एकरस रहनेवाले समदर्शी महात्मा हैं। आपका सत्यानुराग प्रशंसनीय है!' कंस ने देखा एक साधारण दृष्टि से बालक को और फिर उसी बालक की ओर एक टक देखते प्रेमविभोर वसुदेवजी को। वह हँसा और हँसते-हँसते ही बोला--'मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आप इस बच्चे को ले जायँ। आप के अष्टम पुत्र से मेरी मृत्यु होगी, ऐसा आकाशवाणी ने कहा था; यह तो प्रथम पुत्र है। इससे मुझे कोई भय नहीं।' जैसे अब देवकी से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। 'कोई भय नहीं, अतः यह बच्चा लौट जाय—बस!' इससे अधिक के लिये न तो कंस के हृदय में स्थान था और न किसी शिष्टाचार की उसे आवश्यकता जान पड़ी।

'जैसी आपकी इच्छा!' वसुदेवजी ने धीरे से पुत्र को उठा लिया और लौटे। मन में कोई उल्लास, कोई उत्साह नहीं। चरणों में कोई वेग नहीं। जैसे कोई बहुत थका व्यक्ति किसी प्रकार मार्ग काट रहा हो, ठीक ऐसे लौट रहे थे वे।

'मेरा लाल!' माता ने ललककर पुत्र को हृदय से लगा लिया। आनन्द के आवेश में वे पति से यह पूछना ही भूल गयीं कि बच्चा कैसे लौटा।

'इतना मोह ठीक नहीं!' वसुदेवजी ने अत्यन्त व्यथित कण्ठ से कहा। कंस—उस क्रूर पर मुझे विश्वास नहीं। उसका विचार कितने क्षण स्थिर रहेगा, कौन कह सकता है। तुम्हें मिल

गया--ऐसा समझना ही भूल होगी। जबतक है, देख लो इसे !' सचमुच वे स्वयं एकटक उस शिशु को ही देख रहे थे। उनके नेत्रों से अब धारायें चल रही थीं। जैसे वे कहते हों--इतना आनन्द, इतना सौन्दर्य, इतनी मुग्धता लेकर तुम्हें क्या मुझ भाग्यहीन के गृह में ही आना था !'

× × ×

'वसुदेव कितने सच्चे, कितने धीर, कितने सीधे हैं। उस शिशु में कितना स्नेह था उनका !' कंस कुछ ऐसा ही सोच रहा था बैठा। वह वसुदेवजी को चुप-चाप जाते देखता रहा था और वैसे ही बैठा रह गया था।

'जय नारायण ! जय मधुसूदन चक्र-गदा-करधारी !' दूर—दूर से वीणा की झंकार के साथ स्वर आया और कंस तो चौंक ही गया--'नारायण, मधुसूदन, चक्र-गदाधारी !— कहाँ ? कहाँ ?' उसे लगा, कहीं उसे मारने वे नारायण चक्र-गदा लेकर पहुँच तो नहीं गये।

'ओह, ये तो नारदजी हैं !' ऊपर दृष्टि गयी और अपनी व्याकुलता पर स्वयं उसी को हँसी आ गयी। उसने झट से आसन ठीक कर दिया। 'पधारें देवर्षि !'

'क्या सोच रहे थे युवराज ?' देवर्षि तो कहीं स्थिर रहते नहीं, अतः कुशल-मङ्गल में व्यतीत करने के लिये उनके पास समय भी नहीं होता। वे सीधे मुख्य बात से प्रारम्भ करने के अभ्यासी हो गये हैं।

'मैंने अभी-अभी वसुदेवजी के प्रथम पुत्र को लौटा दिया, पर वे उसे ले जाते समय कुछ विशेष प्रसन्न नहीं दीखे। ऐसा क्यों हुआ, यही सोच रहा था। राजनीति सर्वत्र शङ्कालु होती है और उसमें भी जो शरीरासक्त हैं, उन्हें दूसरों से मिथ्या शङ्का ही चैन नहीं लेने देती। कंस को वसुदेव जी के निरुत्साह लौटने में भी कोई गूढ़ रहस्य जान पड़ा। वह उसी समस्या में उलझा था।

'तुमने वसुदेव के पुत्र को लौटा दिया ?' देवर्षि ने इस प्रकार पूछा, जैसे उन्हें विश्वास ही न हुआ हो।

'क्यों, यह तो प्रथम पुत्र था। मेरी मृत्यु तो उनके अष्टम पुत्र से बतायी गयी है ?' कंस ने जिज्ञासा की।

'बतायी तो अष्टम से ही गयी है; पर तुम्हें पता भी है कि ये वसुदेव-देवकी कौन हैं ?' नारदजी ने भूमिका बना दी।

'कौन हैं ये ?' कंस का कुतूहल बढ़ गया।

'ये तथा अन्य सब वृष्णिवंशी देवता हैं—देवताओं के अंश से उत्पन्न हैं और यही नहीं, गोकुल में जो वृष्णिवंशी नन्दादि गोप हैं, वे भी सब देवता ही हैं। इन सबकी स्त्रियाँ देवाङ्गनाएँ हैं।' देवर्षि ने परिचय दिया।

'स्वर्ग के देवता भी मुझसे पराजित हो गये हैं; ये तो देवताओं के अंश ही हैं और फिर कोई हों, अपने ही वंश के तो हैं।' कंस के समझ में बात आई नहीं अब तक।

'तुम अपने को ही यदि जानते—असुरश्रेष्ठ कालनेमि, तुम अपने को ही भूल गये हो। तुम्हारे ये मित्र, सेना-नायक, साथी नरेश, सब असुर हैं। देवासुरसंग्राम में देवताओं ने सबका वध किया और जब तुमलोग इस रूप में पृथ्वी पर मानव योनि में आये, ये तुम्हारे पुराने शत्रु तुम्हारा नाश करने यहाँ भी पहुँच गये। चक्र से तुम्हारा वध करने वाले विष्णु ही देवकी से उत्पन्न होनेवाले हैं। रही अष्टम गर्भ की बात, सो तुम तो जानते ही हो कि विष्णु परम मायावी हैं। तुम इतना भी नहीं समझते कि प्रत्येक गर्भ अष्टम हो सकता है।' देवर्षि ने जो कुछ कहा, कंस को लगा—सब ठीक ही तो है। उसका सदा से देवताओं से सहज द्वेष, पूजा-पाठादि से घृणा—अवश्य वह असुर है। ये वृष्णिवंशी, ये सदा उसका विरोध करते हैं, ये जन्म-जात शत्रु हैं उसके।

'प्रत्येक गर्भ अष्टम गर्भ ?' यही बात उसकी समझ में नहीं आयी। यह कैसे हो सकता है ?

'बताओ तो, इसमें अष्टम रेखा कौन-सी है ?' देवर्षि ने तनिक झुककर भूमिपर गोलाई में अँगुली से कल्पित आठ रेखाएँ खींच दीं। रेखाएँ उस कृत्रिम भूमि पर बनी नहीं; किंतु कंस को

उनका तात्पर्य समझने में इससे कोई बाधा नहीं हुई। वह एक क्षण उस रेखाहीन स्थान को ही इस प्रकार देखता रह गया, जैसे वहाँ कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण दृश्य हो।

'ओह!' उसने अपने ओष्ठ दाँत से दबाये, कोप से खड्ग खींचा और देवर्षि तो आसन से उठकर आकाश में दृष्टि-पथ से भी पार हो चुके।

× × ×

'युवराज!' हाथ में नंगी करवाल लिये, क्रोधावेश में अत्यन्त उग्र बना, अस्तव्यस्त कंस पैदल राजपथ से दौड़ा जा रहा था। उसे सेवकों को पुकारने का भी ध्यान नहीं रह गया था। कुछ सेवक उसके साथ दौड़े। मार्ग में उसका यह उग्र वेश जिसने देखा—चकित, भयभीत हो गया वह।

श्रीवसुदेवजी ने भी देखा कंस को आते। अभी नान्दीमुख श्राद्ध भी नहीं हुआ था। बालक का नालोच्छेदन भी नहीं हुआ—लेकिन इसकी उन्हें पहिले से सम्भावना थी। अभी हुए कितने पल उन्हें पुत्र को सूतिकागृह में देकर बाहर आये। कंस ने कठोर दृष्टि से उनकी ओर देखा और वसुदेवजी ने चुपचाप सूतिका गृह की ओर संकेत कर दिया और वहीं मस्तक झुकाये खड़े रह गये।

एक चीत्कार आयी सूतिका गृह से और कंस शिशु का एक पैर पकड़े, उसे लटकाये निकल आया। वसुदेवजी ने नेत्र नहीं उठाया, पर उनके मानस नेत्रों ने देख लिया—समझ लिया कि उनकी सद्यःप्रसूता पत्नी दौड़ी हैं 'भैया!' कहकर इस पिशाच का पैर पकड़ने के लिये और यह 'धम्' वे सम्भवतः सूतिका-गृह के द्वार-देश पर ही गिर गयी हैं मूर्छिता होकर। पृथ्वी जैसे घूम रही है, नेत्रों के सम्मुख अन्धकार—ज्वाला—पिशाच—और वसुदेव जी संज्ञाहीन-से बैठ गये वहीं।

कंस—उसने कहीं, किसी ओर नहीं देखा। भवन से बाहर एक शिला—हाथ के शिशु को घुमाकर पटक दिया उस प्रेताधम ने, एक हल्की ध्वनि और शिला रक्त से अरुण हो गयी। कंस अपनी हत्या के रक्त के छींटों से रँग गया।

'पकड़ लो इन दोनों को! सावधानी से सुदृढ़ शृङ्खलाओं में बाँधकर कारागार पहुँचा दो।' शिशु-हत्या के पश्चात् कंस जैसे अपने साथ आये सेवकों को देख सका। उसने तुरंत आज्ञा दे दी देवकी एवं वसुदेव को बंदी करने के लिए।

× × ×

'वसुदेवजी के पुत्र की हत्या की गयी। कंस ने स्वयं हत्या की। वसुदेवजी अपनी सद्यः-प्रसूता पत्नी के साथ कारागार में डाल दिये गये।' नगर में बात फैलते कितनी देर लगती थी। भय, आतङ्क, उत्तेजना—सभी कुछ एक साथ व्याप्त हो गया।

'वृष्णिवंशी प्रधान सामन्तों को पकड़ लो। शूरसेन के सभी पुत्रों एवं परिवार को बंदी-गृह पहुँचा दो।' कंस असावधान नहीं था। उसने सेना के प्रधान असुर नायकों को अविलम्बित आदेश दिया। सेना उसके हाथ में, उसके पक्ष के सैनिकों से पूर्ण थी।

'कंस, मेरा पुत्र सही; परंतु ऐसे पुत्र से तो पुत्र-हीन रहना अच्छा है। वह बंदी किया जायगा। राजसभा उसके अपराध का विचार करेगी। दण्ड दिया जायगा उसे।' कुछ लोगों ने महाराज उग्रसेन को समाचार दिया। महाराज ने आश्वासन दिया और साथ ही पार्श्वरक्षक को आज्ञा दी—'कंस बंदी करके उनके सम्मुख उपस्थित किया जाय।'

'यह वृद्ध—यह अब इस योग्य नहीं कि राज्य-संचालन कर सके। यह शत्रु-पक्ष से मिल गया है। बन्दी करो इसे।' कंस ने महाराज की आज्ञा सुनी और जल उठा। अपने असुर नायकों के साथ वह सीधे राजसदन पहुँचा। महाराज कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उनका पुत्र उनके सम्मुख आकर भी इतना उद्धत हो सकता है। महाराज के विश्वस्त सेवक आहत हो गये, उनके पार्श्व-रक्षक बन्दी हो गये।

'तू मेरा वध कर!' महाराज ने उसी तेजस्विता से धिक्कारा पुत्र को, जिससे सिंहासनासीन होनेपर वे उसे धिक्कार सकते थे। 'तू मेरा त्याज्य पुत्र है। मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहता। तुझे जो मन में आवे, कर!' उन्होंने मुख फेर लिया।

कहीं स्वार्थान्ध पशुप्राय मदाविष्ट भी इस प्रकार लज्जित किये जा सकते हैं। राज्य के लोभी नारकीय मानव कहाँ माता-पिता आदि की चिन्ता करते हैं। कंस ने अट्टहास किया—ऐसा अट्टहास जो असुर के ही उपयुक्त था। उसके आदेश से महाराज बन्दी बना लिये गये।

मथुराधिपति कारागार में बन्दी हो गये। कंस स्वयं मथुरा के सिंहासन पर बैठा। अब वह निरङ्कुश हो गया। वसुदेवजी के सभी भाई बन्दी हो गये। वृष्णिवंशियों में कुछ बन्दी हुए, कुछ ने कंस को आश्वासन दिया उसके अनुकूल रहने का, बहुत-से लोग वन एवं गिरि-गुहाओं में और बहुत-से कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, कोसल, विदर्भादि दूसरे राज्यों में अपने प्राण एवं परिवार को लेकर भाग गये। मथुरा कंस और उसके असुर नायकों का क्रीड़ाक्षेत्र हो गयी।

× × ×

कंस का वह कारागार—एक ही कक्ष में लौहशृङ्खलाबद्ध वे जगज्ज्योति दम्पति—उनके कष्ट, दुःख, मर्मपीड़ा का वर्णन न करना ही अच्छा है। एक वर्ष—ठीक एक वर्ष पश्चात् कारागार में ही उस बन्दिनी की गोद में एक शिशु और आया—सुषेण। कारागार के रक्षकों ने अपने महाराज को दौड़कर सूचना दी। भूमिष्ठ शिशु का रोदन सुनते ही वे दौड़ गये।

'नारायण—विष्णु—आया तो नहीं वह। वही कंस का भयातुर भाव, वही उसका दौड़ना, वही प्रवेश कारागार में और वही शिशु का पैर पकड़कर निकलना। शिला-आघात—रक्त और····। चलता रहा यही पैशाचिक कर्म प्रतिवर्ष। भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन और भद्र—ये नाम, ये नाम ही मात्र हैं, वे अबोध बच्चे, वे भूमिपर आये और न आये। उनका रक्त—शिला पर वह सूखकर काला भले हो जाय, अखिलेश के अङ्क में वह घना-घना—गाढ़नील ही होता गया। कौन जाने, उसी ने उसे वह नीलोज्ज्वल वर्ण दिया हो, जो कंस की क्रूरता के परिपाक की प्रतीक्षा कर रहा था भूभार-हरणार्थ भूमिपर आने के लिये।

# श्रीबलराम

*मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।*
*त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥*

—भागवत १०।२।४०

देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा पराजित दैत्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हो गये। नरेशों के, शूरों के गृहों में जन्म लिया उन्होंने। स्वभावतः वे यज्ञ, हवन, तर्पण, वेदपाठ के विरोधी थे। आहुति से देवताओं का और श्राद्ध से पितरों का पोषण होता है। यदि मनुष्य यजन एवं श्राद्ध छोड़ दे—देवता स्वतः दुर्बल हो जायँगे। सम्मुख युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने देवताओं का आहार बंद कर देना चाहा। पृथ्वी और उसपर भी मनुष्य ही तो निखिल लोकों के पोषक हैं। दैत्यों ने नृप-वंशों में उत्पन्न होकर शासन-सूत्र सम्हाल लिया। प्रजा तो शासक का अनुगमन करती है।

भार—स्थूलशरीर के लिये स्थूल पदार्थ का भार होता है; किंतु सूक्ष्म के लिये तो सूक्ष्म ही भारी होगा। सत्वगुण धारक—पालक है और तमोगुण विनाशक। सत्व वायु के समान धारण-कर्ता है और तमस् अन्धकार एवं मृत्यु के समान नष्ट करनेवाला। हमारे इस स्थूल जगत् का धारण जो आधिदैविक शक्तियाँ करती हैं, उन सूक्ष्म शक्तियों—देवताओं के लिये स्थूल पदार्थों का भार क्या; किंतु जब जगत् में तमस् बढ़ जाता है—अधर्म का प्राबल्य होता है, वे दिव्य शक्तियाँ आकुल हो उठती हैं। उनके लिये अन्याय, अत्याचार, कदाचार के जो सूक्ष्म तामस भाव हैं, असह्य हो उठते हैं और भूमि—हमारी इस पृथ्वी की अधिष्ठात्री भूमिदेवी जब ऐसे भार से पीड़ित होती हैं, वे प्रजापति महेन्द्र के पास ही तो जा सकती हैं। देवराज का ही तो कर्तव्य है कि वे समस्त देवताओं के कार्यों का सामञ्जस्य बनाये रक्खें।

द्वापर का अन्त—जगत् में, विशेषतः धर्मभूमि भारत में असुर नरेशों का प्राबल्य हो गया। भूमि के लिये असह्य हो गया उन उद्धतों का अत्याचार। भूकम्प, जलप्लावन, ज्वालामुखी, महामारी—लेकिन यह कुछ शक्य नहीं था। असुरों की शक्ति, उनका पराक्रम, उनकी बुद्धि और विद्या इन सबों को परास्त कर चुकी थी। असुरों ने देवधानी को त्रस्त और आतङ्कित कर दिया था।

भूमि का कष्ट अकेला ही तो नहीं था, देवताओं के हविष्य भी बंद होते जा रहे थे। देवराज के समीप कोई उपाय नहीं था। देव-शक्ति से ये मर्त्यधरा के असुर अधिक प्रबल हो चुके थे। महेन्द्र के पास एक ही उपाय था कि वे सृष्टिकर्ता की शरण लें। भगवान् ब्रह्मा ने सुरों को देखा, भू देवी को देखा और उनके साथ देखा विनाश के अधिष्ठाता भगवान् शशाङ्कशेखर को। देवराज कैलाश से भगवान् शंकर को साथ ले गये थे। इस सृष्टिकाल में असुरों का यह उच्छृङ्खल भाव उन महारुद्र को भी अभिप्रेत नहीं था। स्रष्टा क्या करें? वे तो सृष्टि के अधिष्ठाता हैं। निर्माण ही आता है उन्हें। नियमन—शासन, यह भला वे क्या जानें। सबको लेकर वे क्षीरसागर-तटपर तो पहुँचने ही वाले थे। वे पालनकर्ता शेषशय्या पर आनन्दरूप अवस्थित होंगे। आर्तजन उनको छोड़कर आश्वासन के लिये भला, किसे पुकारें।

भगवान् ब्रह्मा जानते थे—वे सान्द्रनील लक्ष्मीनिवास प्रभु अन्वेषण से प्राप्त नहीं होते। सृष्टि के आरम्भ में अपने कमल के नालछिद्र से वे उन्हें पाने का युगों तक विफल प्रयास कर चुके थे। उन्हें तो आतुर उत्कण्ठा की कातर पुकार से ही पाया जा सकता है। देवताओं ने स्रष्टा के

नेतृत्व में प्रार्थना प्रारम्भ की और प्रार्थना करते-करते पितामह ध्यानस्थ हो गये। अन्तर के आलोक-मय प्रान्त में ही तो वे हृषीकेश निवास करते हैं।

'प्रभु का प्रसाद प्राप्त होगा! वे यदुवंश को कृतार्थ करेंगे! आप सब उनकी सेवा के लिये अपने अंशों से पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करें!' अन्तर के आदेश को पितामह ने सुना दिया। देवता सदा से असुरों के अनुज हैं और अब पृथ्वी पर वे पीछे ही तो प्रकट होंगे। अवतार—अव-तार तो होगा ही। जब मानव प्रयास, नैसर्गिक उपद्रव और देव-शक्तियाँ भी भूमि के हृदय भारत में कदाचार का वेग रोक नहीं पाते—जब मानव प्रकृति पर, देवताओं पर भी विजय करके अपने गर्व में मत्त हो जाता है, तभी तो अवतार होता है।

× × ×

'माता देवकी के गर्भ में मेरे अंश भगवान् अनन्त पहुँच चुके, आप उन्हें वसुदेवजी की दूसरी पत्नी जो गोकुल में नन्दभवन में हैं, उनमें आकर्षित कर दें!' उन अनन्तशायी ने योगमाया को आदेश दिया। द्वापर के युगावतार तो शेषावतार श्रीबलरामजी ही हैं। इतना ही क्रम तो सदा चलता है। योगमाया ने मस्तक झुकाकर आदेश स्वीकार कर लिया।

श्रीवसुदेवजी की अन्य पत्नियाँ कंस के नृशंस अत्याचार के भय से ही श्रीवसुदेवजी के बन्दी होते ही मथुरा छोड़कर गुफाओं में चली गयीं सम्बन्धियों के साथ; किंतु श्रीरोहिणीजी को तो पति का गृह किसी दशा में छोड़ना स्वीकार नहीं था। अन्ततः कंस ने उन्हें कारागार में जाकर पति-सेवा की आज्ञा दे दी और देवकी के सप्तम गर्भ के साथ जब उनमें भी गर्भ के लक्षण व्यक्त हुए, श्रीवसुदेवजी ने उन्हें गोकुल में श्रीनन्दराय के यहाँ रहने की आज्ञा दी। कहीं दुरात्मा कंस उनकी संतान को मार न दे। इच्छा न होने पर भी पति की आज्ञा माननी पड़ी उन्हें।

'इतना ही नहीं!' तब इस बार क्या कोई और विशेषता होगी? प्रभु ने अब रहस्य-भरा संकेत किया—'इसके पश्चात् मैं आऊँगा माता देवकी की गोद में और कुछ देर को तुम्हें भी नन्द-पत्नी माता यशोदा की बालिका बनना है!' अच्छा? यह सब क्यों? पर योगमाया को पूछने की आवश्यकता नहीं थी। इस बार उनके परमप्रभु पधार रहे हैं। उनकी लीला को साङ्गता देनी है। ये शेषशायी प्रभु उसे साङ्गता देंगे और कुछ क्षणों को ही सही वे परात्पर लीलामय की अनुजा बनेंगी! माता यशोदा—सचमुच उनकी पुत्री होने का सौभाग्य प्राप्त हो गया! योगमाया ने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया।

× × ×

माता देवकी—कंस के क्रूर कारागार की वे बन्दिनी—वे चिर दुःखिनी, आज निद्रा में वे किस आनन्द-लोक में हैं? वे तो सदा स्वप्न में भी चीत्कार करके चौंक पड़ा करती हैं। आज यह मन्दस्मित—वर्षों के पश्चात् उनके अधरों ने स्वप्न में यह स्मित पाया है। वे स्वप्न देख रही हैं—'एक अनन्त विशाल उज्ज्वल स्निग्ध प्रकाश और उसके मध्य मृणाल-गौर सहस्रशीर्षा भगवान् शेष। उनके प्रत्येक मस्तक की मणियों से निकलती महाज्योति और उनके कुण्डलाकार भोग पर चरण फैलाये, अर्धोत्थित नवजलधर-सुन्दर वे परम ज्योतिर्मय। उनका मन्दस्मित-शोभित मुखमण्डल, अरुणाभ विशाल लोचन, धनुषाकार पतला भ्रूमण्डल।' माता की दृष्टि ही और किसी अङ्ग पर नहीं गयी। 'कितना सुन्दर, कितना मोहक है यह मुख!' वे देखती रह गयीं उसे।

'अरे, यह किशोर वय और केश पक गये!' स्वप्न में भी माता चौंकीं। घुँघराली काली अलकों में एक—केवल एक उज्ज्वल केश चमक रहा था। सहसा उन भूमा पुरुष ने हाथ मस्तक की ओर किया और केश को बिना देखे ही निकाल लिया अलकों से। एक काला केश उसके साथ और आ गया। उन्होंने काले केश को हाथ में रक्खा और श्वेत को बढ़ा दिया माता की ओर। केश तो उड़ा आ रहा है, उड़ा आ रहा है और वह माता के मुख में प्रविष्ट हो गया।' निद्रा टूट गयी। चौंककर उन्होंने देखा। यह क्या—उनके आराध्य भी इसी समय निद्रा से चौंके हैं। उन्होंने भी कुछ ऐसा ही स्वप्न देखा है।

दिन बीते, मास बीते, और सेवकों से कंस ने सुना—'देवकी को सप्तम संतान होनेवाली है।'

'सप्तम संतान!' कंस का भय बढ़ता ही जा रहा है। 'सप्तम—अष्टम इसके पश्चात् ही तो आता है।' उसने सेवकों को अधिक सावधान रहने का आदेश दिया।

'देवकी का गर्भ नष्ट हो गया!' सहसा कंस द्वारा नियुक्त धात्री ने उसे एक दिन सूचित किया। धात्री को स्वयं आश्चर्य था। न तो कोई शरीर में विकृति और न उदर में—ऐसा कैसे हो गया? चाहे जैसे हुआ हो, गर्भ था और उदर में कुछ नहीं है तो दूसरा क्या अर्थ हो सकता है।

'देवकी का गर्भ नष्ट हो गया!' कंस आश्चर्य एवं भय से चिल्लाया। अब तो अष्टम ही अवेगा न?

'गर्भ नष्ट हो गया—भ्रूणस्राव! कितना बड़ा अनर्थ! कितना भयंकर महापाप!' पुरवासियों में घर-घर यही चर्चा। जब कि बिना वृद्ध हुए या किसी के मारे कोई मरता नहीं था, उस काल में गर्भस्राव—अकल्पित अनर्थ था, महाभयंकर दुर्घटना थी। 'पता नहीं क्या होने वाला है! कंस के दुष्कर्मों का फल है यह।' जितने मुख, उतनी बातें। कंस के भय से किसी ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा; किंतु उससे अनेकों ने संकेत किया यह किसी बहुत बड़े अनर्थ की सूचना है।

'अष्टम गर्भ आने वाला है! पता नहीं क्या होगा!' कंस भी कम भयभीत नहीं हुआ अन्तर में; किंतु बाहर उसने उपेक्षा का भाव ही दिखाया।

योगमाया—कहाँ आकर्षित करें वे माता देवकी के इस शुक्लकेश-सम्भूत को? माता रोहिणी के अंक में आने के लिये तो उस नित्य गोलोकविहारी का अग्रज आ रहा है। अच्छा है—व्रजलीला हो—तब तक यह उस संकर्षण में आकर्षित होकर एक रहे। अन्ततः भूभार-हरण के लिये इस महिमामय को मथुरा में व्यक्त भी तो होना है और वह संकर्षण—दाऊ—जब उसका अनुज 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति' का व्रती है तो उसका अग्रज क्या उसे छोड़कर कहीं जा सकता है। वह तो नित्यव्रजविहारी है। भूमि का संरक्षण तो यह युगावतार ही करेगा; किंतु इस मञ्जुलीला के आविर्भाव में यह एकीभूत रहे अपने उस आदिकारण पर-स्वरूप से। संकर्षण—श्रीबलराम—दाऊ—वे तो नित्य श्रीरोहिणीनन्दन हैं। यह तो उससे एक होकर आगे मथुरा में व्यक्त होनेवाला अंश आया और—एक हो गया।

× × ×

माता रोहिणी—व्रज-सौभाग्य की वे साकार प्रतिमा गोकुल में आयीं और जैसे गोकुल में महालक्ष्मी उनकी छाया का अनुगमन करती आयी हों। व्रजेश्वरी ने समझा उन्हें बड़ी बहिन प्राप्त हो गयी। उन्होंने एक दिन भी तो नन्दभवन में अपने को अतिथि की भाँति नहीं रक्खा। जैसे वे सदा से यहीं रहती आयी हों, वस्तुभण्डार, सेवक, अन्न, वस्त्र, पूजाद्रव्य, दान की वस्तुएँ—सभी उन्होंने पहुँचते ही सम्हालना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें व्यवस्था देनी नहीं थी किसी को और न उन्होंने किसी से पूछा। वे तो जन्मजात व्यवस्थामयी हैं। क्या कहाँ रहना चाहिये, किसे कैसे रक्षित रखा जायगा, किस वस्तु की कब आवश्यकता होगी, किस सेवक को क्या करना चाहिये—एक राजरानी अचानक गोष्ठाधिप के पूरे प्रबन्ध को सहसा सम्हाल ले, है आश्चर्य जनक ही; किंतु उन्होंने तो व्रजेश्वरी को भी चकित कर दिया और उन्हे व्रजपति की आराधना, गोपियों के सत्कार और गोपूजन तक सीमित रहने को विवश कर दिया। वे बड़ी हैं, उनका आदेश टाला भी कैसे जा सकता है।

उस दिन तो गोकुल में आनन्द-समुद्र ही उमड़ आया। श्रीनन्दराय ने महर्षि शाण्डिल्य को बुलाया है। व्रजेश्वरी ने उन्हें एकान्त में कहा है 'जीजी की गोद पूर्ण होनेवाली है!' गोकुल में, नन्दभवन में बालक आवेगा। अभी तो दोहद के संस्कार ही होने हैं; पर उल्लास तो ऐसा है जैसे वह आ गया उनके मध्य। 'गोकुल में तो भला, एक शिशु आवेगा!' जैसे सबके अपने ही पुत्र होनेवाला है! प्रथम पुत्र—माता रोहिणी का ही नहीं, वह तो गोकुल का प्रथम स्नेहभाजन आ रहा है।

घर-घर उसके लिये पूजन, अनुष्ठान चलने लगे हैं। नन्दभवन तो उत्सवमय हो गया है। और जब वे महा-सती उदर में तीन मास का तेज लेकर नन्दभवन आयी हैं तो अब नन्दरानी का अङ्क भी तो भरेगा ही।

माता रोहिणी—कितना सौभाग्य, कितना ऐश्वर्य, कितना वरदान लेकर आयी हैं वे व्रजमें। अभी उनकी वह चिर-प्रतीक्षित संतति आयी नहीं। कितनी महिमामय, कितनी दिव्य होगी वह संतान! व्रज के लोगों को लगता है एक वर्ष हो गया—जैसे एक युग हो गया। इतने दिन व्यतीत हो गये और अब भी वह अज्ञात स्नेहभाजन आया नहीं। भला, कोई सामान्य संतति हो सकती है ऐसी। लोकोत्तर दिव्य पुरुष ही इस प्रकार दीर्घकाल तक माता के उदर में रहने में समर्थ होते हैं। अभी से पता नहीं कितनी भव्यभावनाएँ उन स्नेहपूर्ण हृदयों में उठने लगी हैं।

दाऊ आ रहा है! माता रोहिणी को संतति होने वाली है और गोकुल में अनेक गृहों में बालकों के आने के लक्षण प्रकट हो चुके। दाऊ आ रहा है! उसके नित्य सहचर भी तो उसके लगभग साथ ही आवेंगे। माता रोहिणी जैसे गोकुल के लिये दैवी वरदान हो गयी हैं। उनके प्रति प्रेम, आदर और अब तो भक्ति भी बढ़ती जा रही है सबके मन में। व्रज में और बालक आने वाले हैं—सबको लगता है, यह उन्हीं का प्रभाव है। उन्हीं के आगमन का परिणाम है।

माता रोहिणी—स्वयं उनकी बड़ी विचित्र दशा हो गयी। इतना आनन्द—इतना उल्लास—इतनी उमंग भी मन में आ सकती है, वे सोच भी कैसे सकती थीं। व्रजेश्वरी हठात् अब उन्हें कोई कार्य करने नहीं देतीं; किंतु उनके शरीर में तो अवसाद के स्थान पर जैसे स्फूर्ति का प्रवाह फूट पड़ा है। शक्ति—शक्तिमय ही जैसे शरीर हो गया है। 'किंतु वे अपने आराध्य पतिदेव से दूर हैं' यह विचार आते ही उनकी सब उमंग, सब उल्लास जैसे मूर्छित हो जाता है।

'यह क्या होता है?' कोई स्वप्न दिखायी पड़े तो बात दूसरी; किंतु दिन में, जाग्रत् दशा में यह क्या देखती हैं वे बार-बार? एक, दो, चार, पाँच मुखों के, अनेक नेत्रों एवं बाहुओं के, अनेक वर्णों के ये दिव्य पुरुष—उन्होंने जो सुना और जाना है, उसके आधार पर इनमें से अनेकों को वे पहिचान सकती हैं; पर उन्हें अपनी पहिचान में संदेह हो गया है। भला, ब्रह्माजी, भगवान शङ्कर, देवराज इन्द्र, गणेशजी, स्वामिकार्तिक, यम, वरुण आदि देवता क्यों उन्हें प्रणाम करेंगे। ये दिव्य-पुरुष तो बार-बार आते हैं, बार-बार हाथ जोड़कर कुछ स्तुति-सी करते हैं, बार-बार उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। वैसा ही वेश, वैसे ही वाहन—पता नहीं देवताओं के समान ये दिव्यपुरुष कौन हैं।

कोई वृद्ध, कोई युवा, कोई बालक और उनमें वे तेजोमय चार दिगम्बर शिशु—जटा, माला, तिलक,—माता जानती हैं कि ये ऋषिगण होंगे; पर देवताओं की भाँति वे भी क्यों उनकी स्तुति-प्रदक्षिणादि कर जाया करते हैं?

माता तक ही यह आश्चर्य सीमित नहीं है। उनके समीप रहनेवाली दासियाँ तक जानती हैं कि आजकल उनके लिये सहसा अद्भुत सुगन्ध से कक्ष का परिपूर्ण हो जाना साधारण बात है। चाहे जब अलक्ष्य भाव से सहसा दिव्यपुष्प गिरने लगते हैं और वे प्राङ्गण में ही नहीं, माता के ऊपर कक्ष में भी गिरते हैं और इतने गिरते हैं कि उनकी अच्छी ढेरी लग जाती है। वे दिव्यसुमन—वे तो मुरझाना जानते ही नहीं।

माता के शरीर से अद्भुत कान्ति निकलने लगी है। उन्हें स्वयं लगता है, अलक्ष्य भाव से अनेक शक्तियाँ उनकी रक्षा और सेवा कर रही हैं। कौन होंगी वे? माता स्वयं सोच नहीं पातीं। उस दिन महर्षि शाण्डिल्य के नेत्र प्रेमाश्रु से भर आये थे। उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया था और कह गये थे—'जो आरहा है, वह समस्त बल का अधिष्ठाता है। समस्त प्राणियों के लिये परित्राण है।' और जान क्या क्या। श्रीत्रजेश्वर कहते हैं—'श्रीनारायण प्रसन्न हुए हैं!' माता को लगता है—कुछ अद्भुत तो है, पर भला क्या अद्भुत होगा? एक शिशु—शिशु ही तो आवेगा!

× × ×

बुधवार का मध्याह्न—स्वाती नक्षत्र—भाद्रशुक्लषष्ठी, की वह परम मङ्गल धन्य तिथि—दाऊ आया! व्रज-सौभाग्य की वह मूर्ति, गोलोक का वह नित्य अग्रज, तेज-ओज-बल-स्नेह-सौहार्द की वह

मञ्जु प्रतिमा—व्रजेश्वर ने सुना और आनन्दातिरेक में एक क्षण वे ज्यों-के-त्यों रह गये। गोकुल उमड़ आया। आचार्य शाण्डिल्य तो समाचार पाने से पूर्व ही नन्दभवन की ओर चल चुके थे। वे सर्वज्ञ महर्षि—वे आत्माराम भी कदाचित् आतुर अर्भाप्सा लिये इस शिशु के आगमन-क्षण की ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

दाऊ आया—गोपों के जयनाद, शङ्ख एवं तूर्य-घोष में देव-दुन्दुभियों का नाद भी मन्द प्रतीत होने लगा। आकाश के सुमनों और गोप-गोपियों के करों से उछलते दधि-बिन्दुओं में जैसे प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी। गोपियों के कण्ठ भाव-क्षुब्ध हो उठे और मैया के आनन्द का तो पार ही नहीं है। वह तो समझ ही नहीं पाती कि किसे कितना क्या देना है। जैसे आज सब देकर—विश्व का समस्त वैभव देकर भी वे सन्तुष्ट नहीं होंगी। सन्तुष्ट तो नहीं हो रहे हैं उनके क्षुद्रतम सेवक एवं सेविकाएँ, वे भी अपना सर्वस्व इस उमंग में किसी को दे देना चाहते हैं; फिर जो व्रजपति के अपने हैं, जो गोष्ठ रखते हैं, उन गोप-गोपियों की क्या चर्चा कोई करे। श्रीरोहिणीजी की गोद भूषित होने ही वाली है!' व्रजपति ने गुप्त रूप से मथुरा के कारागार में यह संवाद भेज दिया था। वहाँ का आदेश है—'इसे प्रकट न होने दिया जाय!' कंस अत्यन्त दुष्ट है। श्रीव्रजेश्वर का हृदय—कितनी उमंग है उसमें और व्रजरानी—वे तो असन्तुष्ट-सी हैं। उन्हें किसी प्रकार समझाया है श्रीनन्द-राय ने—'बालक के जीवन का प्रश्न है!' उत्सव न मनाने में ही कुशल है। यह जो कुछ हो रहा है, यह तो नित्य उत्सवमय गोकुल की सहजचर्या है। उत्सव तो मथुरा से छिपाना ही है।

दाऊ आया—भाद्रपद की बढ़ी हुई सरिताओं का जल सहसा निर्मल हो गया। सरों में सहसा रंग-बिरंगे कमल विकसित हो गये। लताएँ पुष्प-गुच्छों से और तरु फल-भार से झूम उठे। रत्नाकर ने सुदीर्घ लहरों से अपने पुलिन को मुक्तामय कर दिया। जैसे वह अनन्त भी अपने आराध्य के आगमन में जगती को अपने उपहार न्योछावर करने को आतुर हो उठा हो।

दाऊ आया—ब्राह्मणों के आहवनीय कुण्डों में अग्निदेव बिना आहुति के ही प्रज्वलित हो उठे। ध्यानस्थ ऋषियों के मन सहसा अतर्क्य आनन्द से आपूरित हो गये। गौओं ने हुंकार की और उनके स्तनों से दुग्ध-धारा चलने लगी। दिशाओं में जैसे कुछ अद्भुत आनन्द प्रदीप्त हो गया हो एक बार ही।

दाऊ आया—सहसा असुरों के हृदय काँप गये। उनके आयुध छूट गये हाथों से और वे क्यों खड़े रहने में असमर्थ हो रहे हैं, यह समझना सरल नहीं था उनके लिये। उन्हें लगा, कोई अलक्ष्य कर उनके गले की ओर बढ़ा-बढ़ा-बढ़ा आरहा है। भय से एक बार ही विह्वल हो गये वे। द्विविद ने एक शिखर से दूसरे पर कूदने की इच्छा की थी—जीवन में पहिली बार वह लक्ष्यच्युत हुआ, गिरा और आहत हुआ। प्रलम्ब मल्लयुद्ध करने उठा था, वह स्वतः स्खलित हुआ—ऐसा उपहास उसका कभी नहीं हुआ था और कंस—उसकी वाम भुजा, वाम नेत्र एक साथ क्यों फड़के! चौंककर उसने हाथ रक्खा खड्ग की मूठ पर और यह खड्ग आज अपने-आप कोश से खिसक कर धरा पर गिर रहा है! यही या ऐसा ही कुछ—सभी असुरों को अमङ्गल चिह्न प्राप्त हुए। दाऊ—वह दुष्टदलन जो आ गया भूमि पर।

दाऊ आया—जैसे पूरा व्रज आज नन्दभवन में ही एकत्र हो जायगा। गोष्ठ से गायें, पशु तक भाग आये हैं और वे भी नन्दद्वार से बाहर एकत्र होकर बार-बार हुंकार कर रहे हैं। सब जय-नाद कर रहे हैं तो वे क्यों पीछे रहें, उन्हीं का तो यह पालक आया है।

दाऊ—प्रतप्त जाम्बूनद भी ऐसी द्युति कहाँ से पाये! प्रसूतिका-गृह में जैसे कोई अपूर्व सुधाकर माता रोहिणी की गोद में आ बैठा है। गोद में ही तो आ बैठा वह। माता को तनिक-सी निद्रा—एक आनन्द भरी तन्द्रा-सी ज्ञात हुई और सहसा उनका हृदय गद्गद हो गया। उनकी गोद में यह अलौकिक प्रकाश की मञ्जुमूर्ति, यह नन्हा-सा सुकुमार माता की पूरे चौदह महीने की प्रतीक्षा के पश्चात् आया और आते ही वह जैसे गम्भीर हो गया है। जैसे एकाकी आना उसे रुचा नहीं, वह गम्भीरता से किसी की प्रतीक्षा करने लगा है अभी से। उस कक्ष के स्निग्ध मञ्जु प्रकाश ने

ही धात्री को आकृष्ट किया, अन्यथा माता तो आनन्दमग्न—पता नहीं कब तक अपने इस लाल को नीरव एकटक देखती रहतीं। तभी-तभी स्मरण आया माता को—'पतिदेव समीप होते !' आनन्द विषाद में डूब गया उनका।

दाऊ—अभी उसके लिये नान्दीमुख श्राद्ध होगा। बाबा प्रस्तुति में लगे हैं और महर्षि शाण्डिल्य तो विप्रों के साथ आ भी गये। दाऊ—वह भला क्या रोना जाने। वह तो पता नहीं कब, कैसे माता की गोद में पहुँच गया। वह तो मैया को देख रहा है--एकटक मैया को देख रहा है जैसे कुछ नेत्रों में पूछता हो, और मैया--व्रजेश्वरी ने उठा लिया उसे गोद में।

दाऊ आया--कंस के उस क्रूर कारागार में भी संदेश तो किसी न किसी प्रकार व्रजेश्वर ने पहुँचाया ही और यह संदेश--किंतु आनन्द अन्तर से नेत्रों तक ही आबद्ध हो गया। एक प्रति-संदेश आया गोकुल वहाँ से--'जन्म-संस्कार के अतिरिक्त शेष संस्कार स्थगित रहें--भाग्य सुयोग दे तो पीछे होते रहेंगे !' मन मारकर श्रीनन्दराय को वह स्वीकार करना है।

× × ×

दाऊ आया--वह गोकुल में क्या आज आया है ? वह तो नित्य ही वहीं का है; पर जब से उसके प्रकट होने के लक्षण व्यक्त हुए--व्रज तो उसी दिन से नित्य नूतन शुभ-संवादों से परिपूर्ण होने लगा है और अब तो वह आ गया है न स्वयं माता की गोद में। अभी परसों भाद्रशुक्ल षष्ठी को ही वह आया है और आज यह संवाद आया व्रजपति के समीप बरसाने से--'श्रीवृषभानुजी की भाग्यमयी पत्नी की गोद अपने पिता के घर ही कन्या से परिपूत हुई है। बरसाना व्रजेश्वर के स्वागत की आतुर प्रतीक्षा में पलकें बिछाये है !'

दाऊ आया है न--उसके जन्म-महोत्सव की क्या परिसमाप्ति होनी है। श्रीव्रजराज आतुरतापूर्वक बरसाने चल पड़े हैं और अब तो चला यह क्रम। अब तो उन्हें किसी-न-किसी प्रधान गोष्ठपति के पुत्रोत्सव का सम्भार नित्य ही स्वीकार करना है। उनके गृह में दाऊ जो आ गया है और सब कहते हैं--अब नन्दरानी की अङ्क भरकर रहेगी। बाबा से पूरा बरसाना अभी से तो यही पूछने को उत्सुक है, इस कुमारिका का टीका वे कब ले रहे हैं--जैसे अब तो उनकी स्वीकृति की ही देर है।

# श्रीकृष्णचन्द्र

*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*
*अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥*—गीता

भगवान् अनन्त के पश्चात् तो उन अनन्तशायी को ही आना चाहिये न! वसुदेवजी ध्यान कर रहे थे। कंस के कारागार के वे बन्दी थे और थे भी बन्दीगृह में ही, लेकिन वे अन्ततः महाराज उग्रसेन के जामाता थे। कंस ने उन्हें तथा देवकी को शृङ्खलाएँ (बेड़ियाँ) पहिना दी थीं; किंतु उनकी सुविधा का प्रबन्ध भी बन्दीगृह में था। अवश्य ही वह प्रबन्ध बन्दीगृह का था, पर वसुदेवजी अपनी पत्नी के साथ अपने उस बन्दीकक्ष में एकाकी ही रहते थे। कंस के द्वारपाल भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते थे। उनकी सेवा आदि की समुचित व्यवस्था थी।

हाँ--वसुदेवजी ध्यान कर रहे थे अपने आराध्य भगवान् अनन्तशायी नारायण का। आज भगवान् नारायण जैसे प्रत्यक्ष हो गये हैं। उन शङ्ख-चक्रधारी प्रभु के करों में यह एक काला केश--केश तो उन करों से छूटा और यह आया--आया और जैसे वसुदेवजी के मुख में प्रविष्ट हो गया हो। हैं--चौंके वे ध्यानस्थ! हृदय में एक साथ मानों सहस्र-सहस्र आदित्य उदित हो गये हों। वह महाज्योति और उसके मध्य पीताम्बर-परिवेष्टित सायुध चतुर्भुज सजल-जलद-नील भगवान् नारायण--वसुदेवजी स्थिर हो गये, मन डूब गया। उन्हें पता नहीं कि उनकी पत्नी कितनी भक्ति से उन्हें प्रणाम कर रही हैं। उनके पतिदेव में यह जो सहसा महाप्रकाश प्रकट हो गया--देवकी को आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने तो सदा से अपने पति को परमात्मरूप ही माना है। आज कृपा करके अपना वह रूप प्रकट किया उन्होंने।

'वसुदेवजी!' कंस सेवकों से समाचार पाकर कारागार में आया; किंतु वसुदेवजी के सम्मुख तो सम्बोधन भी अधूरा रह गया। उसके महाशूर रक्षकों ने समाचार दिया था कि 'वसुदेवजी की ओर तो वे अब देखने का ही साहस नहीं कर पाते। पता नहीं क्या हो गया है, उनके सम्मुख आते ही हृदय बैठने लगता है। अब यदि वे कारागार से बलपूर्वक निकलना चाहें तो उन्हें रोका नहीं जा सकता।' कंस क्या कहे, क्या करे—उसकी बुद्धि जैसे है ही नहीं। उसे लगा, वह यहाँ ठहर नहीं सकता। उसने अपने सम्बोधन का उत्तर पाने की भी प्रतीक्षा नहीं की; जैसे आया था, लौट गया। इतना तेज—जैसे दूसरे सूर्य ही भूमि पर आ गये हों! कैसे कोई ठहरे उनके सम्मुख।

'कल व्यवस्था करूँगा, तब तक सावधान रहो! द्वार सब बंद कर दो भली प्रकार।' कंस ने सेवकों को आदेश दिया। उसे सोचने को अवकाश चाहिये। वसुदेवजी तो सबके लिये दुर्धर्ष हो गये हैं। अब उन्हें कैसे नियन्त्रित रक्खा जा सकता है।

वसुदेवजी—वे तो जैसे किसी दूसरे लोक में पहुँच गये हैं। यह लोक, यह बन्दीगृह, यह कंस और उसके सेवक—जैसे वे कुछ नहीं देखते। वह सान्द्रघनद्युति पीताम्बरधर चतुर्भुजमूर्ति, वह महाज्योतिर्मय साकार आनन्दघन—वह उनके हृदय में स्थिर हो गया है। वे उसी आनन्द में निमग्न हैं। क्या करते हैं, क्या करना है, जैसे कुछ पता नहीं उन्हें।

श्रीदेवकीजी ने पति को देखा—वे श्रीशूरसेन-तनय—उनके सम्पूर्ण शरीर के रोम खड़े हो गये हैं, उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु झर रहे हैं, वे जैसे सारे कार्य परप्रेरित कर रहे हों और उनके अंगों से जो यह परमतेज बन्दीगृह को प्रकाशित करता निकल रहा है—अत्यन्त संयत चित्त से,

श्रद्धापूर्वक देवकीजी ने पति के करों को अपने कर में लिया और..... और वे स्वयं उसी आनन्द में निमग्न हो गईं। पारस को स्पर्श करके सुना है लोहा स्वर्ण हो जाता है; किंतु उस नील पारस का स्पर्श पारस ही कर देता है। हृदय-कमल की कर्णिका पर वह नीलोज्ज्वल विद्युद्वसन शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी चतुर्भुज किशोरमूर्ति मन्द-मन्द हँसती सी खड़ी है। जैसे एक आनन्द की धारा पति-देह से अपने देह में मन की गति से आयी और वह हृदय में घनीभूत होकर मूर्त हो गयी। देवकीजी स्थिर हो गयीं।

वसुदेवजी जैसे समाधि से उत्थित हुए हों। उन्हें अबतक सचमुच यह सब दृश्य दीख-कर भी नहीं दीखा था। अब वह महानन्दमूर्ति उस रूप में हृदय में नहीं। वह तो शम्पा की भाँति चमकी और वह गयी—वहीं तो गयी और नेत्र पत्नी के मुख पर स्थिर हो गये। यह स्निग्ध प्रकाश—अन्तर के उस प्रकाश की एक झलक जिसे मिलती है, वह तो युगों तक उसे भूल ही नहीं पाता। वही तो अब इस मुख से निकलने लगा है।

'सर्वेश ने मुझे पिता का गौरव दिया और अब यह माता बन गयी है!' वसुदेवजी को कुछ समझना-समझाना नहीं था। जो उनके अन्तर में स्थिर--मूर्त रहा है, उसकी आलोक-रश्मि की छाया पाकर भी कुछ अज्ञात या अज्ञेय नहीं रहता।

'यह शोभा, यह स्निग्ध आलोक!' वसुदेवजी देखते रहे। 'वे जगदाधार जगन्निवास इस मन्दिर में आ विराजे हैं। जगत् पवित्र हो जाता इस लोकोत्तर छटा से।' एक बार दृष्टि इधर-उधर गयी। यह प्रसाधन, यह बन्दीगृह—भला यहाँ क्या शोभा—यहाँ क्या विकास उस सौन्दर्यराशि का। जैसे अग्नि की शिखा रोक दी गयी हो भस्म के आच्छादन में।

× × ×

कंस को रात्रि में निद्रा नहीं आयी--वसुदेव का क्या हो?' वह कोई मार्ग नहीं पाता। प्रातः काल उसे कारागार आये बिना चैन कहाँ। वह किसी से कैसे कहे कि वसुदेवजी को वह अब दबाने में अपने को असमर्थ पाता है। कारागार पर सभी असुर नायक नियुक्त हैं; पर वे क्या पर्याप्त हैं? यदि वसुदेवजी इस समय शस्त्र लेकर विरोध करें—शस्त्र तो वे सहज ही किसी के हाथ से छीनने में समर्थ लगते हैं।

'अच्छा!' कंस ने कारागार में आकर जो देखा, उससे उसका आश्चर्य दूर ही हुआ। वसुदेवजी में वह तेज नहीं जो कल था; पर तेज कहीं गया नहीं। यह तो अब भी है। यह क्या?—देवकी के शरीर से वही तेज निकलकर सम्पूर्ण बन्दीगृह को प्रकाशित कर रहा है। 'यह दीना, दुःखिनी देवकी और इसके मुखपर कैसा पवित्र उज्ज्वल स्मित है! मुझे देखकर भी इसे न तो भय लगता और न यह चौंकी। ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ। यह तो मुझे देखते ही भय से काँपने लगती थी, पीली पड़ जाती थी और इसके कण्ठ से शब्द नहीं निकल पाता था। इतना प्रकाश मनुष्य में तो होता नहीं। इस देवकी में तो ऐसा भाव कभी नहीं आया। यह कभी ऐसी नहीं रही।' कंस देखता रहा—देखता रहा दो क्षण और तब भय से स्वतः उसके पद पीछे हट गये। वह काँप गया।

'हरि—मेरा वह प्राणघातक शत्रु निश्चय इसकी हृदय-गुहा में आ गया!' कंस ने इधर-उधर देखा, कोई नहीं आया उसके साथ। कुछ भी हो, यह बन्दीगृह उसकी बहिन का अन्तःपुर है। उसी ने तो आदेश दे रक्खा है कि कोई उसके साथ भी भीतर न आये। शत्रु आ गया--सामने आ गया! इस देवकी की हृदयगुहा में ही तो है! कंस—मनस्वी कंस क्या भाग जाय? हृदयगुहा में--तब वहीं उसे मार दिया जाय? उसका हाथ खड्ग की मूठ पर गया। कह नहीं सकते भय से आत्म-रक्षा के लिये या आघात की भावना लेकर।

'कहीं मैं प्रहार करूँ और वह व्यर्थ हो जाय!' उसे स्मरण आया कि प्रह्लाद पर हिरण्य-कशिपु के समस्त प्रहार व्यर्थ हो गये थे। हाथ जहाँ-का-तहाँ रह गया। मस्तक झुक गया। वह सोचने लगा--'इसमें तो सन्देह नहीं कि मेरा प्राणहर्ता शत्रु ही इसके हृदय में है; पर इस समय

करना क्या चाहिये ? मेरा पराक्रम यदि व्यर्थ हो जाय--मेरी शक्ति की धाक ही नष्ट हो जायगी। असुर सहायकों का क्या ठिकाना और यदुवंशी तो अवसर की प्रतीक्षा में ही हैं। धाक गयी और.... नहीं, ऐसा उपाय होना चाहिये कि पराक्रम व्यर्थ न जाय।' उपाय कहाँ मिल रहा है मन को।

'यह स्त्री है, मेरी छोटी बहिन है और उसपर भी गर्भवती है ! यदि मैं इसे मार दूँ, मेरा यश नष्ट हो जायगा ! मेरी बड़ी निन्दा होगी।' मन पराजय मानना जानता ही नहीं और वह भी आसुर मन। कंस के मन ने अपनी दुर्बलता का रूप परिवर्तित किया—मार तो देगा; भला, उसका पराक्रम कैसे व्यर्थ होगा, पर—भीतर की आशङ्का ही यह 'पर' बन गयी है।

'लोग निन्दा ही तो करेंगे, कर लेंगे और जिसमें शक्ति है, उसकी निन्दा करने का साहस कौन करेगा; पर.....' अन्तर में जो भय है, वह आघात करने के स्थान पर पहुँचाकर हटा देता है। 'ऐसा कर्म तो घोर पाप है। इससे तो ऐश्वर्य—लक्ष्मी भी तत्काल नष्ट हो जाती है। जिस ऐश्वर्य के लिये सब उद्योग है, यदि वही न रहे तो.....।' विचार बड़ी तीव्रता से चल रहे हैं। जैसे मस्तक में अंधड़ चल रहा हो।

'लक्ष्मी कैसे चली जायगी !' ठीक तो है, जो देव-विजयी है, जो हरि को नष्ट करने जा रहा है, उसके एश्वर्य को लोप करने का साहस कौन-सी देवशक्ति करेगी। 'यदि तत्काल यह हरि प्रकट हो जाय और मार डाले ? आयु भी समाप्त हो जायगी आज ही !' सचमुच यह तो बड़ी भयङ्कर बात है। मायावी हरि का क्या ठिकाना। वह प्रह्लाद के लिये पत्थर के खम्भे को फाड़कर निकल पड़ा था और यहाँ तो हृदयगुहा में है ही। इस प्रकार सहसा मृत्यु को आमन्त्रण देना तो बुद्धिमानी नहीं है।

'अच्छा, इस बिचारी को जीने दो अभी। अत्यन्त नृशंस बर्ताव अच्छा नहीं; क्योंकि मरने पर ऐसे नृशंस को लोग गाली देते हैं और निश्चय ही ऐसा शरीराभिमानी घोर नरक में जाता है।' जैसे शिशुओं की हत्या तो नृशंसता नहीं थी और लोग उससे मरने पर प्रशंसा करेंगे। अपनी दुर्बलता, अपने भय को अहंकारी मानव इसी प्रकार उन्नत रूप देकर अपने को ही धोखा दिया करता है।

कंस ने किसी से कुछ कहा नहीं। वसुदेवजी एक बार उसे खड्ग पर हाथ ले जाते देख चौंके थे। वह महापिशाच—उसके लिये कुछ अकार्य नहीं और वह आघात करता तो रोकने में समर्थ भी कौन था। लेकिन अपने-आप ही वह तर्क करता रहा। निखिललीलामयी योगमाया उसकी बुद्धि का भी तो सञ्चालन करती हैं। मस्तक झुकाये हुए ही वह लौटा कुछ सोचता-सा और द्वार से बाहर हो गया। किसके सिर भूत चढ़ा है जो इससे बोलने जाय।

× × ×

माता देवकी तो विश्ववन्द्य हो गयी हैं। उन निखिलदेवमय की समस्त देवता नित्य ही स्तुति करते हैं। वे देखती हैं और जानती भी हैं—'ये चार मुख के अरुणवर्ण लोकस्रष्टा, ये त्रिनयन नीलकण्ठ अहिभूषण शशाङ्कशेखर, ये वज्रधर देवराज, ये दण्डपाणि महिषवाहन।' वे भले सबको पहिचानती न हों, इन प्रधान देवताओं को तो जानती ही हैं। ये सब प्रकाशरूप, रत्नमाला, दिव्य-देहधारी लक्ष-लक्ष वाहनों, विमानों से आते हैं—नित्य गगन में दूर विमान छोड़कर वे आकर उनको बद्धाञ्जलि मस्तक झुकाते हैं। पता नहीं क्या-क्या स्तुति-सी करते हैं और प्रदक्षिणा करके तब बड़ी नम्रता से जाते हैं।

वसुदेवजी देखते हैं कि सहसा दिव्यगन्ध बार-बार प्रकट होती है। बार-बार कक्ष दिव्य सुमनों से पूर्ण हो जाता है। उनको कोई आश्चर्य नहीं। 'नारायण उनके यहाँ आ रहे हैं !' उन्हें विश्वास है और पत्नी के कुतूहल को उन्होंने शान्त कर दिया है। अब कंस सदा की भाँति नहीं आता। द्वार-रक्षा का प्रबन्ध कठोर हो गया है। द्वार सदा बंद ही रहता है। अब कोई उनसे मिलने भी नहीं आ पाता; किंतु मन में अज्ञात रूप से एक अद्भुत आश्वासन—आनन्द का भाव आ गया है। पत्नी तो सदा किसी दूसरे लोक में रहने लगी हैं। वे तो जैसे अब जानती ही नहीं कि वे कहाँ हैं।

एक अतर्क्य आनन्द का भाव—कभी-कभी कंस का स्मरण आता है और तब दोनों चौंक पड़ते हैं; किंतु जैसे दूसरे ही क्षण सब भूल जाता है। कोई है, कोई अज्ञात रूप से साथ लगा रहता है सदा और उसकी शक्ति रक्षा करने को नित्य उद्यत है—हृदय को पता नहीं क्यों, यह निरन्तर अनुभव होता है और उस शक्ति को वे जानें या न जानें, उस अज्ञेय अज्ञात के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहा है।

ये लोकपितामह—ये तो झूठ नहीं बोलते। ये तो प्रायः नित्य जाते-जाते कह जाते हैं, आश्वासन दे जाते हैं—'यह हम सबों का परम सौभाग्य है कि साक्षात परम-पुरुष भगवान आप की कुक्षि में पधारे हैं। वे हमारे कल्याण के लिये ही आये हैं। यह कंस—यह भोजवंश का अधिपति तो अब मरने ही वाला है, आप इससे भय न करें। अब तो आपके ये तनय यदुवंश की रक्षा करेंगे!' ये भाग्यविधाता—ये स्वयं ऐसा कहते हैं तो बात ठीक ही होनी चाहिये!

× × ×

भाद्रपद की वह अन्धकारमयी रजनी—जैसे असुरों के अत्याचार के तमस् में सत्व तिरोहित हो गया और जगत् की वह वस्तुस्थिति मूर्त हो गयी। ठीक आधीरात—अत्याचार की शक्ति अपनी पूरी प्रबलता में। प्रकाश की एक किरण नहीं—आशा की एक रेखा नहीं। समस्त जगत् गाढ़ निद्रा में निमग्न—जैसे सम्पूर्ण विवेकशक्ति मोहाच्छन्न हो गई हो। जब भी कोई हृदय इस प्रकार सर्वथा आशाहीन—निरुपाय मोहम्लान होता है और उसका अन्तःकरण अपनी अन्तश्चेतना के साथ बन्दी हो उठता है—प्रकाश के अप्रतिहत प्रादुर्भाव का वही क्षण है—वह प्रकाश जो फिर आच्छन्न नहीं होता। मानस में जो सत्य है—जगती के जीवन में भी वही सत्य है। समस्त देवशक्तियाँ जब निरुपाय हो जाती हैं, जब समस्त सात्विकभाव तामस से आच्छन्न हो जाते हैं—वही अवतार का स्वर्णक्षण बनता है विश्वमानस में।

भाद्रपद कृष्णपक्ष, अर्धरात्रि, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र, सिंहस्थ सूर्य और—और मेरे वस की बात नहीं, 'शान्तर्क्षग्रहतारकम्' तथा 'सर्वे नक्षत्रतारद्या चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्'। जो नित्य सबसे प्रदक्षिणा प्राप्त करता है, उसकी न सही, ग्रहादि ने उसके जन्मकाल को ही दक्षिण कर लिया। भाद्रपद की रात्रि; पर आकाश स्वच्छ, निर्मल, एक-एक तारक पूर्ण प्रकाशित, दिशाएँ स्वच्छ और वायु में झंझावेग के स्थान पर मन्द मत्त गति, वर्षा की बढ़ी नदियों का जल सहसा सुनिर्मल हो गया और रात्रि में भी कमल खिल उठे, भ्रमर गुंजार करने लगे। वन में नीड़ में सोये पक्षी जगे और आनन्द से चहकने लगे, जैसे प्रकृति के अज्ञात करों में जो आनन्दवारिधि का उन्मद सत्व आया है, उसने तामस को पी लिया। निद्रा, आलस्य, प्रमाद, श्रान्ति—पता नहीं कहाँ गया सब। जल में सरोज, उत्पल, कुमुद—सब साथ खिले और भ्रमरों ने गुंजारसे उनकी सुरभि को संगीत दिया तो वन में पादप, वीरुध्, लता, तृण—सब एक साथ किसलय, दल, पुष्प, फलों से झूम उठे। मधु धाराएँ चलने लगीं उनसे और पक्षियों के गान ने उनके मूक उल्लास को वाणी दे दी। वर्षों से भस्मपूरित थे आहवनीय कुण्ड, कंस के त्रास के कारण भगवान् हव्यवाहन समिधाओं की भी आहुति न पाकर अन्तर्हित हो गये थे। एकाएक द्विजातियों के नेत्र आनन्दाश्रु से पूरित हो गये जब उन्होंने देखा कि उनके अग्निकुण्डों से लाल-लाल लपटें उठ रही हैं, अग्निदेव स्वयं प्रकट हो गये हैं और दिशाओं में यह जो सुरभि पूर्ण हो गई है—अभी तो कहीं आहुति पड़ी ही नहीं, पर आज की यह सुगन्ध क्या आहुति की है? गोष्ठ में गायों ने हुंकार की और उनके स्तनों से धाराएँ चलने लगीं।

वह आ रहा है—वह विश्व के अन्धकार का शाश्वत प्रतिकार आ रहा है, वह आ रहा है कंस के बन्दीगृह में; पर क्या उसके आगमन का स्वागत-समारोह बन्दी हो सकता है। जगत के वे नित्य-पूज्य बन्दी दम्पति—कंस की क्रूरता उनके उत्साह के आरम्भ को ही रोक सकती है; किंतु यदि दिन होता—जगत् के नेत्र देख लेते कि जैसे सम्पूर्ण मधुवन ही स्वस्तिक, सर्वतोभद्रादि मङ्गल मण्डलों से स्वतः सुसज्ज हो गया है। तृणदल, पुष्प, मणियों के मञ्जु योग से आविर्भूत ये दिव्यमण्डल, गिरिशृङ्ग तो जैसे दीपाधार हो गये हैं। आलोक की पंक्तियाँ, मण्डल, रेखाएँ नहीं हैं उनपर—

उनपर तो ज्योतिर्मयी मणियों का इतना प्रचुर प्राकट्य हुआ है कि वे प्रज्वलित प्रकाशस्तम्भ हो रहे हैं और इतना आमोद, इतना आनन्द क्या कोई उत्सव दे सकता है—यह जो हृदय को, मन को, प्राण को अपने में निमग्न करता कोई अपूर्व आनन्दवारिधि अन्तर से अकस्मात् उमड़ पड़ा है प्रत्येक असुरद्रोही—साधु अन्तःकरण में। असुर—अभी उनकी चर्चा व्यर्थ है। जैसे जगत् का सम्पूर्ण तमस् वहीं घनीभूत हो गया है। अन्तरिक्ष में कोई अज्ञात लीलामयी कुछ कर रही है—असुर-हृदय अमङ्गल की अनुभूति के भी योग्य अभी नहीं। अभी तो वहाँ जडता—अज्ञान, घोर निद्रा का साम्राज्य है। जो अपार आनन्द विश्व में उमड़ पड़ा है—आसुर तमसाच्छन्न अन्तःकरण उसे निद्रा के आनन्द के रूप में ही पा सकता है। वे सो रहे हैं—घोर निद्रा में सो रहे हैं और सो तो गया है नित्य उद्विग्न, नित्य भयातुर कंस। इस उन्मद आनन्द ने उसे भी प्रसुप्त कर दिया है।

पृथ्वी का यह सौभाग्य; किंतु जो धरा का भारहर्ता है, वही तो अमरों का त्राता भी है। धरा का मङ्गल ही तो अमरावती का मोद है। मर्त्य की शान्त श्रद्धा ही तो देवताओं की पुष्टि होती है। पृथ्वी के इस आमोद में गगन क्या पृथक् रह सकता है और फिर उस सर्वेश के स्वागत का सौभाग्य सत्व के अधिष्ठाता कैसे छोड़ दें, जब वह उसी सत्व की प्रतिष्ठा के लिये आ रहा है। दूर-दूर सागरतट से मेघों ने मन्द-मन्द गर्जन प्रारम्भ किया, अमरों की दुन्दुभियों ने उसे द्विगुण किया। गन्धर्वों की वीणा झंकृत हुई और अप्सराओं का नृत्य एवं किन्नरियों का कलकण्ठ आज सफल न हो तो होगा कब। नन्दन-कानन के दिव्यसुमन धरा के स्पर्श से धन्य होने के लिये कारागार की उस पावन भूमि पर अपना आस्तरण बढ़ाने लगे। देवताओं ने ही पुष्पवृष्टि की हो सो नहीं, तप एवं सत्य लोकों के सिद्धों, ऋषियों, तापसों ने भी अपनी सुमनाञ्जलि समर्पित की उस वन्दनीय बन्दीगृह के धन्य कक्ष में।

धरा पर—कानन में, ग्रामों में, नगरों में, पर्वतों पर, जल पर—सागर में, सरिताओं में, सरों में, वापियों में, नभ पर—गगन में, वायु में, स्वर्ग में—सब कहीं उमंग, उल्लास, आमोद-विलास जैसे उमड़ पड़ा है, वह आ रहा है—वह आनन्दसिन्धु आ रहा है। वह अनन्तशायी अपनी परमोज्ज्वल विभूति का वैभव लिये इस अन्धकारमयी अर्धनिशा में ही आ रहा है तो यह सत्व का उद्दाम उद्रेक कैसे सीमित रहे। वह कृष्णचन्द्र—वह लीलामय है ही समस्त विषमताओं का अद्भुत एकीभाव। वह आ रहा है और यह अन्धकार में उल्लास, रात्रि में तमस् का अभाव और इस अपार असीम सत्वोद्रेक में भी असुरों की घोर निद्राजडता—वह नित्य अद्भुत, नित्य विचित्र जो आ रहा है।

× × ×

अर्धरात्रि—ठीक अर्धरात्रि और वह प्राची-क्षितिज पर प्रकाश का ज्योतिर्बिम्ब आया। वह भागा अन्धकार, वे दिशाएँ शीतल स्निग्ध प्रकाश में आलोकित हुईं और वह आया जगती के अन्धकार को भिन्न करता मानव की युग-युग की आशा का चिन्मय आलोक, वह धन्य हुई जगन्मानस की नित्यप्राची जगज्जननी माता देवकी, वह क्रूरता के कारागार में मुक्ति का अमर आलोक आया—आया वह, गगन पर सुधांशु के प्राकट्य के क्षण में; किंतु उसकी मन्द गति से नहीं, एक साथ वह आलोकमय आविर्भूत हो गया। वह अष्टमी के चन्द्र-सा नहीं, वह नित्यपूर्ण, नित्य निष्कलङ्क श्रीकृष्णचन्द्र।

श्रीकृष्णचन्द्र—कमलदल-विशाल अरुणाभ लोचन, विशाल चतुर्भुज किशोर श्रीविग्रह, शङ्ख-गदा-चक्र-कमलधारी अरुण कर, वक्षपर श्रीवत्स, गले में कौस्तुभ, पद्मपराग-पीताभ तेजोमय पीताम्बर और स्निग्ध नीलकान्त मेघसुन्दर अंगकान्ति। वैदूर्य मणियों का किरीट, कपोलों पर सहस्र-सहस्र सूर्यकान्त से झलमलाते कुण्डल, भालपर कुटिल अलकें, मणिमय जगमग करते कङ्कण, काञ्ची, केयूरादि आभरण। माता देवकी को क्या अनुभूति हुई—कैसे कहा जाय। किसी युग-युग के सन्तापतप्त परम दुःखी को सहसा उस अपार आनन्द-सिन्धु का साक्षात् हो—कैसे कल्पना में आवेगी उसकी दशा। माता का शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण—सब स्थिर हो गये—वह तो जैसे अन्तर्बाह्य डूब ही गयी।

श्री वसुदेवजी ने देखा उस अपार आलोक को—एक बार देखा और—मन में जागृति आयी 'ये श्रीहरि, ये मेरे पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं! पुत्र ही तो—मेरी पत्नी के सम्मुख ही तो खड़े हैं ये! यह श्रीकृष्णावतार!' पता नहीं हृदय में क्या-क्या आया एक क्षण में। 'क्या करूँ, क्या करूँ, जैसे कुछ नहीं सूझता उन्हें। 'ये श्रीहरि—मेरे पुत्र हरि! दस सहस्र गायें ब्राह्मणों के लिये.....।' उसी उल्लास में दस सहस्र गायें ब्राह्मणों को दान करने का संकल्प कर लिया उन्होंने। वे बन्दी हैं, गायें कंस ने छीन ली हैं, इस समय पुत्र-जन्मोत्सव भी करने की स्थिति में वे नहीं; किंतु मन क्या इस समय यह सब सोच सकता है।

'ये परमपुरुष—परमपुरुष ही तो हैं ये! ये चतुर्बाहु, ये दिव्यायुध, ये श्रीवत्स और कौस्तुभ तथा यह अपूर्व प्रकाश, जिससे यह प्रसूतिकक्ष आलोकमय हो उठा है। ये श्रीनारायण पधारे हैं मेरे यहाँ।' श्री वसुदेवजी और सावधान हुए। उनके हाथों की अञ्जलि स्वतः बँध गयी, मस्तक झुक गया, वे गद्‌गद कण्ठ से स्तुति करने लगे।

'इस-प्रसूति कक्ष में इतना अपार आलोक और अब यह स्तवन!'—द्वाररक्षक सावधान रहते हैं, कंस इधर बराबर बार-बार पूछता है सेवकों से, उसे समाचार मिला और वह दौड़ा। लेकिन वसुदेवजी को अब यह भय नहीं। 'यह कौमोदकी गदा, यह सहस्रार सुदर्शन—ये जो नीलोज्ज्वल तेजोमय चतुर्भुज परमपुरुष सम्मुख हैं; तुच्छ कीटप्राय कंस—इनके सम्मुख भला, भय किसका!' वसुदेवजी निर्भय स्तुति कर रहे हैं—

'मैंने जान लिया कि आप प्रकृति से परे अवस्थित रहनेवाले साक्षात् परमपुरुष हैं और समस्त बुद्धियों के द्वारा केवल आनन्द-स्वरूप में अनुभूत होते हैं; किंतु इस निर्विशेष रूप में ही आप हैं, यह कहते भी बनता नहीं; क्योंकि अपनी प्रकृति—योगमाया से ही इस समस्त त्रिगुणात्मक जगत् का सर्जन करके उसमें प्रविष्ट न होने पर भी आप प्रविष्ट-से प्रतीत होते हैं!' स्तुति चलती रही, श्री वसुदेवजी की अमल स्नेहार्द्र वाणी को वह सान्द्रनीलाभ शान्त सुनता रहा। शान्त—गम्भीर, जैसे उसका इस स्तवन से कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे वसुदेवजी किसी दूसरे के सम्बन्ध में यह सब कह रहे हों। उसके नित्य-प्रसन्न नेत्रों में करुणा, ममता, पता नहीं क्या-क्या और कदाचित् जिज्ञासा भी और अधरों पर मन्दतर स्मित—पर वसुदेवजी कहाँ देखते हैं यह सब। वे तो मस्तक झुकाये, शृङ्खलाबद्ध करों की अञ्जलि बाँधे, घुटनों के बल बैठे, नेत्रों से अजस्र प्रेमाश्रु की वर्षा करते कहते जाते हैं। निर्गुण-निर्विशेष, सगुण-सविशेष, विराट् अन्तर्यामी और यह सम्पूर्ण दृश्य रूप, सबसे पृथक् और सर्वरूप तथा इन सब रूपों का एकत्व—उस परात्पर तत्व से ये सृष्टि-स्थिति-प्रलय और उनके अधिष्ठाता त्रिमूर्तियों की अभिव्यक्ति—पता नहीं क्या-क्या कहते रहे वे। वे कहते रहे और वह निखिल वाणी का एकमात्र स्तवनीय सुनता रहा—वाणी की यही तो सार्थकता है कि उसे वह सुन ले—सुन भर ले—बस!

वही—वही तो सृष्टि के लिये अरुणवर्ण, स्थिति के लिये 'शुक्ल' और प्रलय के लिये नीललोहित रूप धारण करता है—यह वही तो इस कारागार में प्रकट हुआ है। वसुदेवजी ने भरितकण्ठ, पुलकित-तन कहा—'विभो! अखिलेश! आप इस लोक की रक्षा के लिये ही मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं। ये असुर जो आज राजा कहलाते हैं, कोटि-कोटि सेनाओं के साथ इनका जो व्यूह है, इन्हें मारकर आप उसे ध्वस्त कर देंगे!'

लेकिन यह असुर ध्वंस तो होगा, तब होगा जैसा नहीं है—उसके लिये अभी से सावधान हो जाना चाहिये। 'यह कंस—बड़ा असभ्य है यह! आप पधारे हैं, यह बात उसके ये द्वाररक्षक चर अवश्य जाकर कह देंगे और वह मेरे यहाँ आपका जन्म सुनते ही हथियार उठाकर दौड़ता हुआ अभी आयेगा। सुरेश्वर! उसने इसी प्रकार तुम्हारे बड़े भाइयों को मार दिया है उससे धर्मयुद्ध की आशा भी नहीं और आता ही होगा वह।'

'कंस आता होगा!' जैसे माता देवकी की चेतना झकझोर दी गयी हो! 'कंस!' श्री वसुदेवजी के शब्द कानों में गये, पलकें हिलीं और जैसे वे जाग्रत् हुई हों। लेकिन यह ज्योतिर्मय चतुर्भुज मूर्ति—

यह कोई सामान्य बालक तो नहीं है। कुछ भी हो--माता तो माता ही रहेगी। यह बालक--नहीं, कंस बड़ा क्रूर है, घोर असुर है और यह शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी--पर बालक है न यह! माता को कंस से बड़ा भय लग रहा है; किंतु पता नहीं क्यों उनके मुखपर पवित्र स्मित है। इस आनन्दघन का सांनिध्य उनके भय को जैसे अभिभूत करके व्यक्त हो गया हो। श्री वसुदेवजी हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहे हैं, माता ने भी पति का अनुकरण किया।

'जिसे अव्यक्तरूप, परमादि, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामय, निरीह, निर्विशेष कहा जाता है, वह अध्यात्मप्रदीप विष्णु आप ही हैं।'

'जब द्विपरार्ध के अन्त में सम्पूर्ण लोक नष्ट हो जाते हैं, जब महाभूत अपने कारणों में लीन हो जाते हैं, जब व्यक्त अव्यक्त में लय हो जाता है और काल की भी समाप्ति हो जाती है, तब आप ही शेष रह जाते हैं--इसी से आप शेषशायी हैं।'

'यह काल, जो सम्पूर्ण विश्व को प्रेरित कर रहा है, तुम्हारी चेष्टा कहा गया है। निमेष से लेकर वर्ष एवं द्विपरार्ध आदि महत्ता तक वह तुम अव्यक्त-बन्धु की चेष्टा ही है, अतः आप कल्याण-मय की मैं शरण हूँ।'

माता के पास समय नहीं है स्तवन का और न उन्हें स्तुति-विस्तार करना है। उन्हें तो कंस का भय है—वह कालरूप कंस और वे यही कह रही हैं कि तुम काल के भी प्रेरक हो, द्विपरार्ध का महाप्रलय भी तुम्हारी चेष्टा है, तुम तो तब भी शेष रहते हो। सो मैं तुम्हारी शरण हूँ--और उपाय भी क्या है इस कंस के कालरूप से बचने का।

'मनुष्य मृत्युरूपी सर्प के भय से भागते हुए किसी लोक में जाकर भी शान्ति नहीं पाता, कहीं वह निर्भय नहीं हो पाता; किंतु जब अकस्मात् वह तुम्हारे चरण-कमलों को प्राप्त कर लेता है तब स्वस्थ होकर शयन करता है। मृत्यु उससे दूर चली जाती है।'

माता का तात्पर्य बहुत स्पष्ट है। जब सभी तुम्हारे श्रीचरणों को प्राप्त करके मृत्यु से अभय हो जाते हैं. तब तुम्हारे यहाँ आने पर भी मृत्यु का भय लगा रहे—यह ठीक नहीं; किंतु भय अपने लिये नहीं, तुम्हारे ही लिये है।' माता इसे स्पष्ट कर देती हैं--

'तुम अपने जनों के सदा से रक्षक हो, तुम सदा उनके त्रास को दूर करते हो; अतः इस उग्रसेन के लड़के से हमारी रक्षा करो! एक बात और--तुम्हारा यह रूप--यह परात्पर पुरुष रूप तो ध्यान में ही आने योग्य है! इसे इन स्थूल दृश्यों को देखनेवाले नेत्रों के सम्मुख मत करो!'

बड़ी अद्भुत बात है—कंस के भय से छुटकारा भी चाहिये और यह सशस्त्र चतुर्भुज रूप भी नहीं रहना चाहिये! माता ने अपना भाव स्पष्ट कर दिया कि समस्या का समाधान किस प्रकार वे चाहती हैं--'मधुसूदन, यह मेरा भाई कंस बड़ा पापी है! कुछ ऐसा करो कि उसे यह पता ही न लगे कि तुम्हारा जन्म मेरे यहाँ हुआ है! मैं तुम्हारे लिये बहुत उद्विग्न हो रही हूँ, मेरी बुद्धि अधीर हो रही है!'

भला, कंस से युद्ध--माता ने स्पष्ट कह दिया कि उन्हें बड़ा भय है, कुछ भी हो--उनका मातृत्व कहता है कि ये बालक ही तो हैं--क्या हुआ जो चक्र और गदा लिये हैं! कंस--भला, असुर कंस से कहीं संग्राम की बात सोची जा सकती है। उन्होंने बहुत विनीत स्वर में कातर अनुरोध किया—'विश्वात्मन्, शङ्ख-गदा-चक्र-पद्मधारी अपूर्व तेजोमय अपने इस अलौकिक चतुर्भुज-रूप का झटपट उपसंहार कर लो!'

क्या ठिकाना—बालक बड़े हठी होते हैं, यह प्रार्थना पर्याप्त न हो! अपने को कंस से डर कर छिपाना ये न स्वीकार करें! कंस तो आता ही होगा! अधिक बातचीत के लिये अवकाश नहीं। माता ने झटपट बात पूरी की—'महाप्रलय के अन्त में समस्त विश्व को अपने शरीर में ही शरीराकाश की भाँति ही जो सहज धारण कर लेते हैं, वे ही परमपुरुष आप मेरे गर्भ में थे—यह मनुष्यों के लिये कैसी विडम्बना होगी, लोग क्या कहेंगे! अतः झटपट इस रूप को छिपा लो!'

माता ने आदेश दे दिया, अब उसका पालन तो होना ही है; अतः उस नीलोज्ज्वल परम-पुरुष ने मस्तक झुकाया। एक बात रही जाती थी—उसे पूरा हो जाना चाहिये। वह परात्पर पुरुष आज ही माता के यहाँ नहीं आया, वह तो उन्हीं का पुत्र है। गत दो जन्मों से उनका पुत्र होता आया है। उसने परिचय दिया, वह मेघगम्भीर वाणी गूँजी—"मातः, प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तर में आप ही भूदेवी थीं और ये पिता पृश्नि थे। भगवान् ब्रह्मा ने जब आप लोगों को प्रजा-सृष्टि करने का आदेश दिया, तब वर्षा, आंधड़, शीत, उष्णता सहते हुए केवल सूखे पत्ते और वायु के आहार पर आप लोगों ने तपस्या प्रारम्भ की। इन्द्रियों को संयमित करके, प्राणायाम के द्वारा मनोमल को ध्वस्त करके शान्त चित्त से मेरी आराधना करते हुए आप लोगों ने द्वादश सहस्र दिव्यवर्ष व्यतीत कर दिये। आप लोग मुझसे—केवल मुझसे ही अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहते थे। आपकी श्रद्धा, तप एवं अजस्र भक्ति से भावित होकर मैं प्रकट हुआ और मैंने आप लोगों से वरदान माँगने को कहा। आप लोग मुझसे मेरे धाम—मेरा नित्य सांनिध्य माँग सकते थे; किंतु आपको गृहस्थ-जीवन के सुख का पता नहीं था। भगवान् ब्रह्मा का आदेश रक्षित होना चाहिये था और मैं पृथ्वी पर आने ही वाला था—मुझे ही ऐसे माता-पिता कहाँ मिलते, अतः मेरी इच्छा से योगमाया ने प्रेरणा की और आप लोगों ने मेरे समान पुत्र माँगा। मेरे समान पुत्र—भला रूप, गुण आदि में मैं अपने समान दूसरा कहाँ पाऊँ। मैं ही आपका पुत्र बना। सभी मुझे पृश्निगर्भ कहते थे।"

माता देवकी आश्चर्य से सुनती रहीं। ये चतुर्भुज, ये हरि उनके आज ही बालक नहीं हुए। ये उन्हीं के—जन्म-जन्म से उन्हीं के बालक हैं। माता का स्नेहार्द्र कण्ठ शब्द नहीं पा सका और वे आदिपुरुष कहते ही जा रहे हैं—'जननी, आप ही अदिति हैं और ये पिता ही महर्षि कश्यप हैं। आपने जब पृश्नि और भू से यह कश्यप-अदिति का रूप लिया तो मैं आपके यहाँ उपेन्द्र रूप से प्रकट हुआ। आकृति से वामन होने के कारण मुझे लोग वामन कहते थे। सब देवताओं के साथ ये प्रजापति कश्यप यहाँ इस रूप से अंश रूप में पृथ्वी पर आये हैं और आप तो देवमाता का ही एक रूप हैं। मैंने पहिले वरदान देते समय ही तीन बार आप लोगों से 'एवमस्तु' कहा था और उसे सत्य करने के लिये यह तीसरी बार आपके यहाँ प्रकट हुआ हूँ। माता ! मैं आपकी गोद में शिशु बनकर जो सुख पा सकता हूँ, वह मुझे इस चतुर्भुज रूप में नहीं प्राप्त हो सकता। मैं शिशु ही बनता पहिले ही; परन्तु साधारण शिशुरूप में आप मुझे पहिचान न पातीं कि यह वही मेरा पुत्र उपेन्द्र है। इसी से मैंने अपना यह रूप दिखलाया। अब यदि आप लोगों को कंस से भय है तो पिता मुझे गोकुल पहुँचा दें !'

माता-पिता देखते रहे और देखते ही रह गये। वह चतुर्भुज, सर्वाभरणभूषित, सायुध दिव्यमूर्ति एक पल में माता की गोद में एक नवजात नीलोज्ज्वल शिशु हो गयी—सर्वथा सामान्य शिशु। माता ने ललककर उठाया और हृदय से लगा लिया।

'कंस आता होगा !' माता का वात्सल्य—आज उस जगन्माता को इतना भी अवकाश नहीं कि वह अपने इस लोकलोचनाभिराम लाल को भर नेत्र देख ही ले। यह नवजात—अभी स्तनों के दूध से वह तृप्त भी कहाँ हुआ होगा, किंतु उसकी रक्षा करनी है। कंस—हत्यारा कंस बड़ा क्रूर है ! वह आता ही होगा। वसुदेवजी ने हाथ फैलाया और एक सामान्य सूप में वस्त्र के ऊपर रखकर माता ने अपना वह हृदयधन बढ़ा दिया।

सत्य—जो सत्यस्वरूप है, सत्य का अधिष्ठाता है, सत्य के द्वारा जिसकी प्राप्ति की इच्छा की जाती है, उसके आदेश का ही अनुगमन तो सत्य है। मानव का क्षुद्र सत्य उस सत्यनारायण की इच्छा, आदेश की पूर्ति में ही तो सार्थक होता है; किंतु वसुदेवजी के हृदय में यह मीमांसा न तब उठी और न आगे कभी। यह तो हमारे-आपके तर्क की तुष्टि है। वहाँ तो वह योगमाया जो नन्दव्रज में बालिका बनी थीं, अपने अलक्ष्य करों से सचराचर का संचालन कर रही थीं। वसुदेवजी के हृदय से कंस को दिये वचन का संस्कार तक उन्होंने सदा के लिये अन्तर्हित कर दिया था।

और यह तो एक हृदय को प्रभावित करने की बात थी--वह तो प्रभावित कर रही थीं जड को। वसुदेवजी के हाथ और पदों की शृङ्खलाएँ स्वतः इस प्रकार खुल गयीं, जैसे किसी ने उन्हें खोल दिया हो और जब वे उस अपने हृदयधन को मस्तक पर उठा कर चले, द्वारों के लौहदण्ड, शृङ्खलाबन्ध, ताले, सब अपने-आप खुल गये और द्वार यन्त्र-चालित के समान अनावृत हो गये। वसुदेवजी जिस प्रकृति के परम प्रेरक को लिये जा रहे थे, प्रकृति उसे ससम्मान मार्ग न दे तो करे क्या ?

वसुदेवजी ने नहीं देखा कि उनकी चिरदुःखिनी अर्धाङ्गिनी कितनी उत्कण्ठा, आकुलता से उन्मादिनी की भाँति उन्हें देख रही है और उनके दृष्टि-पथ से दूर होते ही मूर्छित हो गयी है। उन्होंने नहीं देखा कि द्वार क्यों, कैसे खुल गये हैं। उन्हें देखने का अवकाश ही नहीं कि उस मोहरात्रि में वे कारागार-रक्षक खड़े-खड़े भित्ति से लगकर, बैठे, आधे झुके या भूमि पर औंधे पड़ कैसे मोह-निद्रा में खुर्राटे ले रहे हैं और उनके शस्त्र, उष्णीष आदि कैसे अस्तव्यस्त इधर-उधर गिर गये हैं। उन्हें तो एक ही ध्यान है--'कंस आता होगा ! गोकुल जाना है--शीघ्र ! शीघ्र गोकुल !'

अभी कुछ ही देर पूर्व का सुनिर्मल नभ उन सुदूर समुद्रतीर के गर्जन करते मेघों से आच्छादित हो गया है। उमड़ते-घुमड़ते काले मेघ। दिशाएँ अन्धकार में डूब गयी हैं और घन-घोर वर्षा हो रही है। बार-बार घोर गर्जना होती है और क्षण-क्षण पर विद्युत् चमकती है। इस सूची-भेद्य अन्धकार में जैसे महेन्द्र अपने इस परित्राता को ले जाने वाले को प्रकाश करके मार्ग दिखा रहे हैं और वर्षा--वर्षा का तो एक बिन्दु जल नहीं पड़ता वसुदेवजी पर। वे यदि तनिक घूमकर देख लेते--निश्चय स्तब्ध रह जाते। यह हिमधवल महाभोग, यह मणिमण्डित सहस्र-फण-राजि, ये भगवान् शेष अपने फणों का छत्र उनके मस्तक पर किये उन्हीं की गति से सावधानी पूर्वक उनके पीछे-पीछे आ रहे हैं ! लेकिन वसुदेवजी को पीछे देखने का अवकाश कहाँ। वे सम्मुख होती वर्षा भी कहाँ देख पाते हैं। उन्हें तो दीखता है—सामने मुख करने पर भी दीखता है, जैसे कंस आ रहा है—आने ही वाला है और वह गोकुल—यह कारागार के सम्मुख ही उस पार गोकुल। किसी प्रकार वहाँ पहुँच सकें तो उनका यह लाल निरापद हो जाय। उनके प्राण तो चरणों में आ गये हैं। वे शीघ्र-शीघ्रतर बढ़े जा रहे हैं।

ये यमुना—भाद्रपद का महीना, बाढ़पर उमड़ती-घुमड़ती, गर्जन-तर्जन करती कलिन्द-नन्दिनी। शतशः आवर्त, बड़े-बड़े फेन, इस समय तो उनमें कोई पर्वत भी प्रवाहित हो जायगा। लेकिन वसुदेवजी कहाँ देखते हैं यह सब। वे यह भी कहाँ देखते हैं कि स्थल से अब उन्हें जल में चलना है। मार्गपर वर्षा के जल में जैसे छप-छप करते वे आये हैं—वैसे ही बढ़े जा रहे हैं। उन्होंने तो सरिता में प्रवेश का कोई भाव ही नहीं प्रकट किया। उन्हें जैसे स्मरण ही नहीं कि कारागार से गोकुल के मध्य में कालिन्दी भी पड़ती हैं। वे तो बढ़े जा रहे हैं—बढ़े ही जा रहे हैं। जल घुटनों तक, कटि तक, वक्ष तक.....इतना प्रबल प्रवाह, इतना तीव्र वेग; किंतु यह क्या—तट से यह तनिक दूर जाते न जाते जल एक क्षण में ऊपर आया और घट गया। कालिन्दी की कामना पूर्ण हो गयी। उसके आराध्य ने स्वयं पीछे से अपने चरणों का स्पर्श दे दिया उसे और वसुदेवजी के लिये मार्ग ? भला, यह भी कोई प्रश्न है। वे उसे लिये जा रहे हैं, जो वैनतेय की पीठपर बैठा जब आता है तो सरित्पति भी सादर मार्ग देते हैं और गरुड़ के पक्षों को क्षीराब्धि के सीकर तक स्पर्श नहीं करते। कालिन्दी बढ़ें या घटें--वसुदेवजी के वस्त्र तक उन्होंने नहीं भिगाये हैं। वे तो उनके पादतल धो रही हैं और यही क्या कम सौभाग्य है उनके लिये।

× × ×

जैसे युग-युग की अनिद्रा का अभाव विश्व के प्राणी आज ही पूर्ण करने लगे हैं। गोकुल में तो कभी नीरवता नहीं होती। वहाँ तो प्रहरी नित्य जागरूक रहते हैं। वहाँ किसी-न-किसी गृह में सदा ही पूरी रात्रिभर मङ्गल-महोत्सव चलता रहता है। लेकिन आज जैसे गोकुल भी नित्य के जागरण को पूरा कर लेगा। कहीं शब्द का नाम नहीं। सब कहीं निस्तब्ध नीरवता और क्या पता—

यह अंधड़, वर्षा, गर्जन--इसमें कहीं कुछ शब्द हो भी तो पता क्या लगे। वसुदेवजी का ध्यान भी इधर कहाँ है। वे तो चले जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं नन्दभवन की ओर।

'व्रजराज, यह तुम्हारा ही पुत्र है! तुम इसे रख लो! रक्षा कर लो इसकी!' वाणी नहीं, हृदय कब से पुकार रहा है। वे मिलते ही व्रजपति के पैरों पर रख देंगे इसे और.....उनके वे परम सुहृद् नन्दराय--वे कितने प्रसन्न होंगे। पता नहीं क्या-क्या हिण्डन चल रहा है। नन्दभवन का द्वार तो खुला ही है--जैसे कोई भीतर से प्रेरणा दे रहा है, मार्ग दिखा रहा है--'चलो! चले चलो! सीधे इधर!' और वे चले जा रहे हैं, चले जा रहे हैं भवन में--अन्तःपुर में और फिर इस प्रकोष्ठ में! यह नन्दरानी का प्रसूति-गृह--पर वसुदेवजी किसी अज्ञात प्रेरणा से चले आये—चलते ही आये हैं भीतर तक।

'यह बालिका!' प्रकोष्ठ का परमोज्ज्वल मणि-प्रकाश भी किसी दिव्य प्रकाश से मन्दप्राय हो रहा है। श्री वसुदेवजी की दृष्टि पड़ी उस नवजात बालिका पर। वह प्रकाशमयी, वह तो श्री वसुदेवजी की ओर ही देख रही है। दृष्टि उसपर गयी और वहीं रह गयी। उन्होंने नहीं देखा प्रकोष्ठ को, नहीं देखा प्रसुप्त सेविकाओं को और नहीं देखा निद्रामग्न नन्दरानी को। उन्होंने यह भी नहीं देखा कि वह बालिका एकाकिनी नहीं है। जैसे उनके नेत्र, उनकी चेतना उस बालिका ने अपने में केन्द्रित कर ली। मस्तक से सूप उतारा उन्होंने और उसमें से अपने उस नवनीलनीरद को उठाया। उनके नेत्र बालिका से हटे नहीं, अन्यथा वे देख लेते--वे निश्चय आश्चर्यचकित हो जाते कि उनका वह लाल वैसे ही माता यशोदा की गोदी में विराजे नन्दनन्दन से सहसा एक हो गया है। उन्होंने तो बालिका को उठा लिया। क्यों उठा लिया, क्या कर रहे हैं वे, जैसे स्वयं उन्हें पता नहीं। उसी सूप में बालिका को रख लिया और बलात् कोई जैसे भीतर कह रहा हो--'बस, अब चलो! चलो जल्दी!' और सूप मस्तक पर पहुँच गया। वे लौट पड़े।

'कंस को पता न लगे! वह जान न जाय! अन्वेषण न करे!' वसुदेवजी की गति पहिले से कुछ अधिक ही तीव्र है। भगवान् शेष इस योगमाया के ऊपर अपने फणछत्र लगाने का यह सु-अवसर भला, क्यों छोड़ने लगे और कालिन्दी ने तो मार्ग देना सीख ही लिया है। वसुदेवजी कारागार में लौटे जैसे यन्त्र-चालित की भाँति द्वार खुले थे, वैसे ही स्वतः बंद हो गये क्रमशः। अपने-आप ताले, शृङ्खलाएँ, लौहदण्ड यथा-स्थान हो गये।

वसुदेवजी ने चुपचाप सूप देवकी की ओर बढ़ा दिया और उनके हाथ-पैर शृङ्खलाओं में आबद्ध हो गये। माता देवकी ने कन्या को उठाया, उनकी कन्या—उनकी ही कन्या तो है यह। यही तो उनकी गोद में आयी है। जैसे उन्हें स्मरण ही नहीं कि कन्या उनकी नहीं। वही मातृत्व—वही वात्सल्य। यह जो उनकी गोद में आयी है, उसका अज्ञात इङ्गित क्या-क्या करता है—कौन समझ पाता है। माता ने कन्या को उठाया और बाहर द्वार-रक्षक जगे। उन्होंने चौंककर अपने वस्त्रादि ठीक किये। शस्त्र उठाये। जैसे यह नवजात कन्या पहिचानती हो कि वह अपनी माता की गोद में नहीं है। वह तो रोने लगी! माता ने व्यग्र होकर उसका मुख स्तनों से लगाया। पर वह तो रो रही है, रोती जा रही है उच्चस्वर से और माता--वह कैसे चुप करा पाये—उसके प्राण छटपटा रहे हैं।

# कंस की कूटनीति

*"आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।*
*हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥"*

—भागवत १०। ४। ४६

कंस उस दिन कारागार से लौट आया था। देवकी के हृदय में निश्चय नारायण आ गये—यह निश्चय तो उसे वहीं हो गया। कारागार के रक्षक बढ़ा दिये गये। सभी विश्वस्त असुर-नायक वहीं नियुक्त हुए। उनकी इस प्रकार नियुक्ति हुई कि एक क्षण के लिये भी कारागार सामान्य सैनिकों के ही संरक्षण में न रहे।

कंस मूर्ख नहीं, वह जानता है कि देवकी के गर्भ से सामान्य बालक नहीं आ रहा है कि दस महीने पर ही आयेगा। 'विष्णु—मायावी नारायण! पता नहीं कब वह प्रकट हो जाय! अदिति के गर्भ से प्रकट होते ही वह वामनरूप में बलि की यज्ञशाला में पहुँच गया था।' कंस को लगता है, वह इसी क्षण प्रकट हुआ, आ रहा है—आता होगा! वह बार-बार चर भेजता है नित्य कारागार का समाचार लाने। बैठे-बैठे, सोये-सोये, खाते-पीते, उसे सदा लगता है कि वह आया उसका काल—वह आया हरि! कोई पदध्वनि, तनिक-सा खटका हुआ और वह चौंक पड़ता है। उसके हाथ खड्ग की मूठपर पहुँचते ही रहते हैं। उसका शरीर बार-बार भय से काँपता है, रोमाञ्चित होता है। उसके पार्श्वचर लोग समझ नहीं पाते कि मथुरा के प्रतापी महाराज को यह कौन-सी व्याधि हो गयी है।

'नारायण—मायावी विष्णु! वह प्रह्लाद के लिये हिरण्यकशिपु को मारने खंभे से ही निकल पड़ा था!' कंस जो कुछ जानता है वह उसी के लिये भयप्रद हो गया है। उसका ज्ञान ही उसका संकट हो गया है। 'क्या ठिकाना उस मायावी का। वह देवकी का पुत्र तो हो ही गया। अब कहीं से भी निकल पड़े तो?' वह प्रत्येक भित्ति, स्तम्भ को घूरता रह जाता है। भोजन के पात्र से भोजन उठाते, शयन के लिये शय्या पर पैर रखते, अपने ही खड्ग या मुकुट को छूते समय वह ठिठक जाता है। अनेक बार वह किसी भी वस्तु को विचित्र भङ्गी से घूरता रहता है। 'कहीं इसी में मेरा शत्रु न छिपा हो! विष्णु इसी से न निकल पड़े।

'किस रूप में आयेगा वह नारायण? कौन कह सकता है। वह कभी वाराह, कभी नृसिंह' कभी और कुछ बनता रहता है! क्या नहीं बन सकता वह। किसका रूप नहीं धारण कर सकता!, बड़ी भयंकर बात है। कंस किस पर विश्वास करे? ये सैनिक, ये सेवक, ये मन्त्रिगण, यह गज, ये अश्व, कौन जाने किस रूप में वह छली मारने खड़ा है। कंस को अपनी स्त्री तो क्या, अपनी छाया तक से भय लगता है।

'यह विष्णु आ रहा है! यह मुझे मारने आ रहा है!' कोई व्यक्ति, कोई पदार्थ दृष्टि में आते ही लगता है कि वह विष्णु ही है। यह आकृति—भला उस मायावी की आकृति का क्या विश्वास। कंस के लिये सभी विष्णु हो गये हैं। सब जगत् ही विष्णु हो गया है। वह सोते-सोते चीख पड़ता है। बैठे-बैठे उठ खड़ा होता है। किसी भी सेवक, मन्त्री आदि से बात करते-करते सहसा रुककर उसे घूरने लगता है और खड्ग खींचने लगता है। सब विष्णु—सब उसके

संहारक ! कौन कहे कि उसका भय सत्य नहीं है। वह भय से ही सही सत्य को--निर्भ्रान्त सत्य को ही तो देखता है। वह हरि ही तो यह सर्वस्वरूप है।

× × ×

'महाराज ! महाराज !' वे असुर सैनिक अस्तव्यस्त दौड़ते आये हैं। उनके कण्ठ से पता नहीं दौड़ने के वेग से या भय के कारण पूरा वाक्य नहीं निकलता। इतना भय--पर उनके महाराज बड़े उग्र स्वभाव के हैं। आजकल बड़े चिड़चिड़े हो गये हैं। लोग तो कहते हैं कि पागल हो गये हैं। कारागार में पुत्र होते ही अविलम्ब समाचार दिया जाय, यह उनका कठोर आदेश और आदेश भी ऐसा जिसे महीनों से महाराज के चर दिन में कई-कई बार चेतावनी के रूप में बराबर सुनाते रहे हैं। पता नहीं महाराज क्या करेंगे। बेचारों को निद्रा आ गयी थी, उनके अनुमान से यही दो एक क्षण को पलक झपक गये और तभी कारागार के भीतर से नवजात शिशु की रोदनध्वनि कान में पड़ी। वे अपने शस्त्र उठाकर अस्तव्यस्त दौड़े आये हैं, पर कहीं इस दो-एक क्षण के विलम्ब का महाराज को अनुमान हो जाय.....किसी प्रकार उन्होंने कहा—'वसुदेवजी के बन्दी-कक्ष से नवजात शिशु के रोने का शब्द सुना है हमने !'

'वसुदेव को पुत्र हुआ ! नारायण आया !' कंस ने पूरी बात सुनी या नहीं, कौन जाने। वह अस्तव्यस्त दौड़ा, उसके हाथ ने अपने-आप खड्ग को कोष से खींच लिया। कोई साथ आये, कोई वाहन लिया जाय--इतना सोचने को अवकाश कहाँ है। उसके वस्त्र अस्तव्यस्त हो गये, वह दौड़ा—दौड़ा कारागार की ओर और दौड़े उसके साथ उसके सेवक एवं वे समाचार देने आये हुए कारागार-रक्षक।

इधर दो तीन महीने से कंस को निद्रा कहाँ आती थी। वह रात्रि में बार-बार पूछता था चौंककर कि कारागार से कोई समाचार आया तो नहीं। कई दिनों से तो वह बराबर रात्रिभर जागृत रहकर समाचार की प्रतीक्षा करता रहा है। कारागार के रक्षकों में किसी के आते ही उसे प्रहरी सीधे उसके समीप पहुँचने दें, यह उसने आदेश दे रक्खा था। इस समाचार की उसे आशा थी और वह इसके लिये पूर्णतः प्रस्तुत था; इतने पर भी समाचार ने उसे उन्मत्तप्राय कर दिया और वह पैदल ही अस्तव्यस्त भागा कारागार की ओर। 'विष्णु आया ! कहीं वह बड़ा न हो जाय। वामन से विराट् होते कितने क्षण लगे थे उसे ? कहीं....' कंस के भय और शङ्का का पार नहीं। वह दौड़ा जा रहा है ! पूरी शक्ति से दौड़ रहा है ! उसके लिये जीवन का प्रश्न है।

× × ×

'यह बच्ची, यह सौंदर्यमयी; पर यह तो चुप ही नहीं होती। अरे ! रक्षक सुन लेंगे। कंस—क्रूर कंस दौड़ा आयेगा !' माता देवकी ने हृदय से दबा लिया है बालिका को। वे उसे कैसे चुप करायें—उनके प्राण छटपटा रहे हैं। बड़ी कठिनता से खूब रो-धोकर तो वह चुप हुई और तब माता के स्तनों का निश्चिन्त होकर पान करने लगी। यह अमृत—यह भला फिर कहाँ प्राप्त होना है।

'अवश्य रक्षकों ने सुन लिया होगा ! वह नृशंस आता होगा !' माता को कोई स्थान नहीं दीखता जहाँ वे इस कुसुमकलिका को छिपा दें। हृदय से दबाकर, अञ्चल से ढककर क्या उसे बचाया जा सकता है, पर और किया भी क्या जाय।

'वह द्वारपर शृङ्खला झंकृत हुई। वह लौहदण्ड खटका। वह हुआ द्वार खोलने का शब्द।' माता ने दोनों भुजाओं से दबाकर, घुटनों और कंधों को मिलाकर उस बालिका को अपने अङ्गों के आवरण में छिपा लेना चाहा और उनके नेत्र द्वार की ओर एकाग्र हो गये, जैसे कोई गौ बधिक को कातर नेत्रों से देख रही हो।

'वह दौड़ा आ रहा है कंस ! वह लाल-लाल नेत्र किये, नंगी तलवार उठाये दौड़ा आ रहा है !' वह सीधा दौड़ता आया। उसे दूर से देखते ही रक्षकों ने द्वार खोल दिये और चुपचाप शान्त दोनों ओर अभिवादन करते खड़े हो गये। कंस ने किसी ओर देखा तक नहीं। देखने की अवस्था

में वह था ही नहीं। साथ आते सेवक उसके साथ दौड़ नहीं सकते थे और सबको इस द्वारपर ही रुक भी जाना था। कंस तो सीधे कारागार में चला गया वैसे ही दौड़ता।

'कहाँ है तुम्हारा पुत्र ?' मुख्य द्वार पर से ही उसकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ी। इस बार वसुदेवजी अपने बालक को उपस्थित करेंगे, इतनी प्रतीक्षा वह कैसे करता और इसके लिये अवकाश भी कहाँ था। इस बार तो द्वार सदा अवरुद्ध रहता था और रक्षकों को कठोर आदेश था कि कोई कारागार से बाहर न जाने पाये।

'भैया !' कंस के शब्द गूँजे। वह दीखा और उस कक्ष में पहुँचा—इसमें कितनी देर लगनी थी। वह सीधे श्रीदेवकीजी के सम्मुख पहुँच गया। माता देवकी ने वैसे ही उसके पैरों के पास भूमि पर मस्तक रख दिया। वे कदाचित् कंस के पैरों पर ही मस्तक रखने झुकी थीं, पर वह चौंककर पीछे हट गया उसी क्षण। जैसे उसे देवकीजी के स्पर्श में भी भय लगा हो। 'भैया, पुत्र कहाँ है ! यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है ! मैं तुम्हारे पुत्र से इसका विवाह कर दूँगी ! तुमने मेरे अनेक पुत्र मारे हैं, यह मेरी अन्तिम संतति है ! मुझे एक यह कन्या दे दो ! इस बच्ची को छोड़ दो !' माता का परम कातरस्वर क्या वह क्रूर सुनेगा ?

'यह कन्या है !' कंस चौंका। जैसे उसे विश्वास ही न हुआ हो।

'हाँ भैया, यह कन्या है और वह भी तुम्हारी पुत्रवधू ! मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मुझ अभागिनी के लिये इसे छोड़ दो ! इसे मत मारो !' परम सरला माता देवकी ने बालिका को आगे कर दिया। उन्हें जैसे आशा हो गयी कि कंस कन्या समझकर अवश्य छोड़ देगा इसे।

'कन्या सही !' उस नृशंस ने दूसरे ही क्षण पैर पकड़कर उस बच्ची को माता के हाथों से झटककर छीन लिया और शीघ्रता से मुड़ पड़ा। 'मायावी विष्णु !' उसे लगा कि उसका छली शत्रु इस कन्यारूप के द्वारा उसे धोखा देना चाहता है। ठीक भी तो है, असुरों को तो अपने मोहिनी रूप से ही भ्रान्त किया था उसने।

बालिका छीन ली गयी ! माता देवकी के मुख से चीत्कार भी आधी ही फूटी और वे संज्ञाहीन हो गयीं। वसुदेवजी की तो चर्चा ही व्यर्थ है। उन्होंने कन्या को लाकर देवकी के सम्मुख रक्खा और मस्तक झुकाकर बैठ गये—जैसे एक मूर्ति हो। 'वे क्यों लाये इस कन्या को ? गये तो वे केवल पुत्र को नन्दभवन में रखने को। नन्दरानी के प्रसूति-कक्ष के द्वारपर चरण पड़ते ही इस कन्या पर दृष्टि पड़ी। यह उन्हीं की ओर देख रही थी। यह सौन्दर्यमयी, उन्होंने तो एक बार अङ्क में लेने के लिये ही उठाया था इसे। पर—पर अब क्या हो ?' कोई समाधान नहीं। उनके नेत्रों में अश्रु तक सूख गये। माता देवकी उस मोहमयी बालिका की चिन्ता में पति की ओर देख ही न सकीं, अन्यथा अवश्य भयभीत हो जातीं। इतना कम्पनहीन—विवर्ण देह, जैसे अन्तर की व्यथा ने देह की चेतना को आत्मसात् कर लिया हो। वसुदेवजी ने तो फिर मस्तक उठाया ही नहीं। उन्हें कदाचित् पता तक न लगा कि कंस आया और.....वे बैठे—बैठे ही रह गये ज्यों-के-त्यों।

× × ×

कंस ने बालिका को छीना और झटके से लौट पड़ा। उस क्रूर ने रोती, गिड़गिड़ाती, परमदीना अपनी छोटी बहिन की चीत्कार की भी भर्त्सना की और कक्ष से बाहर उस शिशु-हत्या से कुत्सित शिलापर पटकने के लिये पैर पकड़ कर मस्तक से ऊपर घुमाया उस कन्या को। कंस की कठोर मुट्ठी ढीली रही होगी, यह तो सोचा ही नहीं जा सकता; पर कन्या का चरण उसके हाथ से सरक गया। चौंका कंस और उसकी दृष्टि ऊपर उठ गयी।

यह क्या—जैसे कोटि-कोटि सूर्य उदित हो गये हों। आकाश में यह तेजोमयी—ज्वालामयी अष्टभुजा नारीमूर्ति ! सर्वाभरणभूषिता, दिव्यमाल्य-अङ्गरागादि-सुसज्जिता, यह धनुष, शूल, बाण, ढाल, करवाल, शङ्ख, चक्र और गदा धारिणी ! यह सिंह-वाहिनी महाशक्ति। और ये सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर, नाग, देवता—ये तो कंस के नाम से भयभीत होकर अमरावती से भाग खड़े होते हैं—आज ये उसी के सम्मुख इस महाशक्ति का स्तवन कर रहे हैं, पूजन कर रहे

हैं, उसे अपने उपहार निवेदित कर रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं, किंनर गा रहे हैं, गन्धर्व वाद्य लिये हैं, सिद्ध स्तवन कर रहे हैं और नाग पूजन में लगे हैं। जैसे आज उस अभयदा के सांनिध्य में उनके लिये कंस की सत्ता ही नहीं। कंस कौन-सा कीट है—यह क्यों देखें वे। कंस भीत, स्तम्भित, ऊपर दृष्टि उठाये देखता रह गया। 'देवकी का अष्टमगर्भ—कहीं ये ही महाशक्ति तो उसे नहीं मारेंगी ?'

'मूर्ख !' ओह, कोई इस प्रकार भी डाँट सकता है ! कंस का तो हृदय बैठा जाता है। उसके नेत्र फटे-फटे से हो रहे हैं। वह केवल ऊपर घूर रहा है भय से। वे महाशक्ति डाँट रही हैं उसे—'मूर्ख, मेरे मारने के प्रयत्न से तुझे क्या लाभ हुआ ? व्यर्थ कृपण, अल्पप्राण प्राणियों की हत्या करके अपने पाप को मत बढ़ा ! तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तो कहीं आ ही गया है !' कहाँ आ गया है वह कंस का काल ? योगमाया क्या निर्देश करें। 'कहीं' यही तो उसका इस समय पूरा पता है। वह तो इस भूमण्डल पर आकर भी नहीं-सा आया है। गोकुल में—गोकुल में वह जो गोलोक से परात्पर आनन्दघन आया है, उसका निर्देश दूसरा भले कोई करे, योगमाया कैसे कर दें। वह व्रज छोड़कर एक पद भी न जानेवाला—भला, वह नित्य गोपाल, वह कंस का पूर्वशत्रु क्यों होने लगा और कंस का पूर्वशत्रु—वह अनन्तशायी, वह इस समय तो गोपाल से एक हो रहा है। उसकी उपलब्धि कैसे करे कोई इस स्थूल जगत् में। वह आ गया है—कहीं आ गया है, इतना ही तो कहा जा सकता है।

कंस निश्चय पागल हो जाता—कुछ क्षण भी वह समर्थ नहीं था उस महातेज को सहन करने में। कुशल हुई, महाशक्ति इतना कह के ही अदृश्य हो गयीं। कहाँ गयीं वे ? वे ही तो अनेक नामों से समस्त शक्ति-पीठों में विराजमान हैं। वैसे वे गोपाल की छोटी बहिन अष्टभुजा सिंह-वाहिनी अपने मुख्य रूप से विन्ध्य-कानन में आराधकों को अभय देने श्रीविग्रहरूप में विराजमान तो हैं ही।

× × ×

'मेरा शत्रु—वह हरि कहीं और प्रकट हुआ !' महाशक्ति के अदृश्य होते ही कंस सावधान हुआ। 'यह कारागार—यह मैं और यह वसुदेव-देवकी का कक्ष—मैंने व्यर्थ ही देवकी की संतानों का वध किया।' कह नहीं सकते कि उसके मन को पश्चात्ताप ने प्रभावित किया या भय ने। भय का कारण तो प्रत्यक्ष है। ये महाशक्ति देवकी की कन्या हैं और कहीं माता-पिता के कष्ट से वे रुष्ट हों तो ? कंस उनसे शत्रुता करने का साहस इस समय तो नहीं ही कर सकता और अभी तो उसका काल—नारायण कहीं आ गया है। उसी से परित्राण पाना है। 'देवताओं ने उससे वञ्चना की !' बहिन के प्रति सौहार्द भी जाग उठा है उसके मन में।

कारण चाहे जो हो—वह शीघ्रता से कक्ष में आया और सेवक को पुकारने की भी अपेक्षा नहीं की। उसने अपने बलिष्ठ हाथों से वसुदेव एवं देवकीजी को बाँधनेवाली शृङ्खला एवं बेड़ियाँ झटककर तोड़ दीं और वसुदेवजी के सम्मुख हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

'बहिन, जीजाजी, मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने आपके कई पुत्र पिशाच की भाँति मार दिये।' कंस के स्वर में कातरता आयी। उसके लौटने पर वसुदेवजी ने जिज्ञासा से देखा उसकी ओर। उसे शृङ्खला तोड़ते देखकर माता देवकी की चेतना पहिले ही लौट आयी थी। वह भय के आधिक्य से चेतन हुई या महाशक्ति के व्यापक आलोक ने उन्हें चेतना दी, कौन कह सकता है; किंतु कंस के विनय ने उन्हें आश्चर्य में डाल दिया।

'मैंने दया, करुणा, सौहार्द—सब छोड़ दिया और हत्यारा बन गया। पता नहीं मेरी क्या गति होगी। जीवित होते हुए भी मृत-सा ही हूँ मैं। केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, ये देवता भी झूठ बोलते हैं। देववाणी पर विश्वास करके मुझ महापापी ने शिशुओं की हत्या की।' कंस का स्वर पूरा पश्चात्तापपूर्ण हो गया है, इसमें तो संदेह के लिये स्थान नहीं; पर है यह पश्चात्ताप क्षणिक ही।

'आप लोग ज्ञानी हैं, आप जानते हैं कि सब अपने किये का ही फल भोगते हैं; अतः मेरे द्वारा मारे जाने पर भी आपके पुत्रों ने अपने कर्म का ही फल पाया। उनके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। सभी जीव दैव के वश में हैं। दैव के द्वारा विवश होकर वे सदा अपने सुहृदों के समीप नहीं रह पाते। जैसे पृथ्वी से धूलि के कण आदि कभी उड़ते और कभी भूमिपर आ जाते हैं, ऐसे ही जीवों का आवागमन है। जब तक संसार में भेददृष्टि है, तब तक शरीर का संयोग-वियोग होता रहता है और आवागमन छूटता नहीं। कल्याणी बहिन, तुम अपने पुत्रों के लिये शोक मत करो। सभी तो अपने प्रारब्ध का ही फल भोगते हैं। मैंने उन्हें मारा, यह ठीक होने पर भी मनुष्य तो केवल निमित्त है। जब तक यह मारा गया और इसने मारा—ऐसी भावना इस स्वद्रष्टा आत्मा में है, तब तक इस देहाभिमान के कारण जीव बन्धन में पड़ा है।' अपने शरीर की आसक्ति, अपनी मृत्यु की चिन्ता कितनी है तुम्हें, यह कौन पूछे कंस से; पर यह तो सदा का नियम है कि शरीरासक्त लोग परोपदेश में प्रवीण होते हैं।

'मैं दुरात्मा हूँ; पर आप दोनों साधु हैं; दीनों पर दया करनेवाले हैं, मेरी नीचता को क्षमा कर दें!' सचमुच कंस ने वसुदेवजी के पैरों पर मस्तक रख दिया और बैठे-बैठे ही उसने देवकी के चरणों के समीप सिर रक्खा। वह रोने लगा है। उसके नेत्रों से बिन्दु टपकने लगे हैं। उसका पश्चात्ताप सच्चा है, इसमें संदेह का तो अब कोई कारण नहीं।

माता देवकी—वे दयामयी, उन्होंने भाई के नेत्रों में अश्रु देखे और उनका सब रोष दूर हो गया। उन्होंने उठकर अञ्चल से नेत्र पोंछ दिये कंस के—'भैया, रोओ मत! तुम्हारा क्या दोष है। मैं हूँ ही हतभागिनी!'

वसुदेवजी ने देखा कि पत्नी का कण्ठ भर आया है। कोई माता कैसे अपने पुत्रों को भूल जाय। उन्होंने हँसते हुए कंस को उठाया हाथ पकड़ कर। सान्त्वना दी उसे—'महाभाग, तुम जो कहते हो वही ठीक है; प्राणियों की 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' ऐसी बुद्धि अज्ञान से ही है। शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मद के वशीभूत होकर ही प्राणी एक दूसरे को मारते हैं और भेददृष्टियुक्त होने से वे वास्तविक भाव को देख नहीं पाते। तुम शोक मत करो! अब तो जो हो गया, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है।'

कंस ने सेवकों को आज्ञा दी। कारागार का द्वार उन्मुक्त हुआ। रथ के द्वारा वसुदेव एवं देवकीजी के अपने भवन जाने की व्यवस्था हुई और उनकी अनुमति लेकर कंस राजसदन लौटा।

× × ×

'मेरा शत्रु—मुझे मारनेवाला—वह मायावी विष्णु कहीं प्रकट हो गया!' कंस को विश्राम कहाँ। उसे एक ही चिन्ता है। कारागार से लौट आया वह और प्रातःकाल होने का अल्पसमय ही उसे युग की भाँति प्रतीत होने लगा। सूर्योदय नहीं हुआ और सभी मन्त्रीगण बुलाये गये। कंस के मन्त्री—राजा के समान ही तो मन्त्री होंगे। वे पूरी रात्रि जागरण करके मध्याह्न तक सोनेवाले निशाचर—करें क्या, नरेश का आदेश था—सोते से जगाये गये और किसी प्रकार अस्तव्यस्त पहुँचे राजसदन। कंस की मन्त्रणा-सभा बैठी। कंस ने महाशक्ति से जो सुना था, सुना दिया।

'महाराज, यह बात सत्य है—आपने स्वयं सुनी है तो सत्य है ही; पर इसमें सोचना क्या है। दस दिन के और दस दिन से इधर के जितने शिशु नगरों, ग्रामों और व्रजों में हुए हैं, उन सबको हम मार देंगे!' महाराक्षसी पूतना ही पहिले बोली। शिशु-हत्या उसका स्वभाव है, उसकी प्रिय क्रीड़ा है यह और यह विष्णु जब अभी प्रकट हुआ है तो शिशु ही तो होगा।

'महाराज चिन्ता न करें; भला, ये समरभीरु देवता चाहें भी तो क्या उद्योग कर लेंगे! ये तो आपके धनुष की टंकार से ही सर्वदा बेचैन रहते हैं। आपने जब शस्त्र उठाया, आपके बाणों के आघात से ही ये भाग खड़े हुए और बहुत-से तो शस्त्र फेंककर, कच्छ एवं शिखाग्रन्थि उन्मुक्त करके, हाथ जोड़कर दीन बनकर, 'हम भयभीत हैं!' इस प्रकार आप की शरण में आ गये। महाराज, यह तो आपका शौर्य है कि आपने भयविह्वल, शस्त्रास्त्ररहित, रथहीन, भागते, तथा धनुष टूटे

देवताओं को छोड़ दिया, उन्हें मारा नहीं। आप अभी शस्त्रास्त्र भूल नहीं गये हैं। शान्ति के समय शूर बनने वाले, युद्धभूमि से बाहर डींग हाँकने वाले देवताओं की गणना ही क्या है और क्या गणना है उस एकान्तवासी हरि या जङ्गली शंकर की। अल्पप्राण इन्द्र या तपस्वी ब्रह्मा ही आपका क्या कर सकता है!' चाटुकार महासेनापति ने पूरा व्याख्यान ही दे दिया। पूतना के प्रस्ताव को संकेत से स्वीकृति देकर भी महाराज प्रसन्न नहीं हुए, इसी से सेनापति को प्रोत्साहन मिला।

'महासेनापति की बात ठीक है; पर ये देवता हम असुरों के सौतेले भाई हैं, इनकी उपेक्षा करना भी ठीक नहीं। अतः महाराज इनकी जड़ के ही नाश में हम लोगों को नियुक्त करें। शरीर में कोई सामान्य रोग हो जाय और उसकी उपेक्षा कर दी जाय तो वह बद्धमूल हो जाता है और उसकी चिकित्सा असाध्य हो जाती है। उपेक्षा करने पर इन्द्रियाँ वश से बाहर हो जाती हैं। ऐसे ही उपेक्षित शत्रु बलवान् हो जाने पर अजेय हो जाते हैं। महाराज आदेश दें और हम लोग शत्रुओं की जड़ खोदने में लगें।' महासेनापति के पश्चात् महामन्त्री को बोलना ही था।

कंस ने केवल नेत्र उठाकर देख लिया महामन्त्री को, जैसे वह पूरी योजना सुन लेना चाहता हो। मन्त्री ने अपना अभिप्राय स्पष्ट किया—'सभी देवताओं की जड़ विष्णु है। विष्णु न हो तो देवता स्वयं मर जायँ। यह विष्णु ही धर्म का रक्षक है और धर्मरूप है। धर्म के कारण ही देवता जीवित हैं। वेद, ब्राह्मण, गौ, तपस्या और दक्षिणा पूर्वक होनेवाले यज्ञ—हमारे ये दक्षिणा-हीन अभिचारयज्ञ उनसे भिन्न हैं—बस, ये ही धर्म की जड़ हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, शम, दम, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ ही विष्णु के शरीर हैं। वैसे तो वह हरि मायावी है और सबके हृदय में रहता है; पर है वही सब देवताओं का अध्यक्ष। ब्रह्मा तक सभी देवताओं की वही जड़ है। यदि हम उसके इस बाह्य शरीर को नष्ट कर दें तो अवश्य वह नष्ट हो जायगा। अतः महाराज, आप आदेश दें कि हम ब्राह्मणों को—विशेषतः ब्रह्मवादी, वेदपाठी ब्राह्मणों को, यज्ञ करनेवालों को, तपस्वियों को और दूध देनेवाली गायों को जहाँ पायें, वहीं मार दें! ऋषियों को मार दिया जाय, यही विष्णु के मारने का उपाय है।'

'ऋषियों को मार दिया जाय!' कंस को यह तर्क बहुत संगत प्रतीत हुआ। उसने जान-बूझकर गौओं को मारने की बात उपेक्षित कर दी। सभी नरेशों के गोष्ठ हैं, गोष्ठ के नाश से सभी शत्रु हो जायँगे। एक साथ सबको शत्रु बना लेना कुछ बुद्धिमानी नहीं। गौ अवध्या है। असुर होने पर भी कंस गोवध की बात स्वीकार नहीं कर सका। उसने इसके लिये आदेश नहीं दिया। उसे ब्रह्महिंसा ही कल्याणकारिणी जान पड़ी।

जब योजना बन गयी और स्वीकृत हो गयी, तब उसे कार्यान्वित होना ही चाहिये। सम्भव है, पूतना का ही अनुमान ठीक हो। कंस ने पूतना को शिशु-हत्या के लिये नियुक्त किया। 'पहिले ऋषियों का ही वध ठीक है।' उसने असुरों के यूथ निश्चित कर दिये। उनके प्रधानों को कहाँ, किस ओर जाना होगा—यह भी उसी समय बता दिया गया। वे हिंसाप्रिय असुर—उन्हें तो अभीष्ट विनोद मिला।

असुर हिंसा के लिये नियुक्त हो गये। तपोवन ध्वस्त होने लगे। यज्ञशालाएँ ही अग्नि की आहुति होने लगीं। लोकपूजित विप्रवर्ग अपनी प्राण-रक्षा के लिये देशत्याग करने को विवश हुआ। मायावी असुर—वे दूसरे राज्यों में भी विविध रूपों से उपद्रव करने लगे। तपस्वियों के परम पावन आश्रम रुधिर, हिंसा से अपवित्र हुए और यह प्रारम्भ हुआ जीवन के लिये! मृत्युपाश में पड़ा प्राणी इसी प्रकार अपने विनाश को सदा से कल्याणकारी मानता आ रहा है। संयम, तप, त्याग का नाशक और विलास अनाचार अत्याचार का पोषक मानव कंस से कम अविवेकी कहाँ है।

# जय कन्हैयालाल की !

*"न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ।*
*भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥"*

—भागवत १० । २ । ३९

श्रीव्रजराज उस दिन ध्यान कर रहे थे अपने आराध्य श्रीनारायण का । उनके आराध्य—वे हृदय-कमलकी कर्णिका पर नित्य प्रतिष्ठित आनन्दघन, चिन्मय, ज्योतिर्मय; पर आज हो क्या रहा है ? आज यह जो अद्भुत ज्योति प्रकट हुई है, आज जो यह सान्द्रनील मयूरमुकुट-मण्डित द्विभुज मूर्ति आयी है सहसा—यह तो जैसे स्वतः आ गयी है। व्रजेश का रोम-रोम खिल उठा और उनसे प्रस्वेद की धारा चलने लगी। नेत्रों का अविरल अश्रु-प्रवाह और यह काँपने लगा शरीर झंझा के प्रबल वेग में पड़े पीपल के पत्ते-सा। क्या हो रहा है, कहाँ हैं, कुछ स्मरण नहीं। मन में, हृदय में, प्राण में सब वह एक ही आनन्दाम्बुधि उच्छलित हो रहा है। कौन कहे कितना समय हो गया उन्हें इसी प्रकार।

आज—आज पहिली बार व्रजेन्द्र गौओं को प्रातःकाल यवसादि से सत्कृत नहीं कर सके। आज ही देर तक प्रतीक्षा के पश्चात् गोपों ने उनकी अनुपस्थिति में ही गोदोहन समाप्त किया। गायों ने बार-बार हुंकार की है; लेकिन आज तो यह गो-हुंकृति व्रजराज की अनुपस्थिति का उलाहना नहीं जान पड़ती, कितना उल्लास है इनमें। आज तो गोपों को वस्तुतः गोदोहन करना ही नहीं पड़ा है। गायों के स्तनों से अजस्र झरती दुग्धधारा को वे आज पात्रों में सम्हालने में ही व्यस्त रहे हैं और भला, ऐसी स्थिति में कोई कैसे सफल हो सकता है। उन्हें क्या पता था कि आज बछड़ियाँ भी दुग्धवर्षा करने लगेंगी और प्रत्येक गौ के लिये नित्य के पात्र चतुर्थांश दूध सम्हालने में भी अपर्याप्त हो जायँगे। गोष्ठों में—पूरे व्रजमण्डल के गोष्ठों में आज दूध की कीच हो गयी है। गायों में जो उल्लास है, गोप कैसे उसका कारण समझें; पर कुछ है—कुछ अवश्य है; उनके अपने ही हृदय आज आनन्दसिन्धु में जैसे हिलोरों पर उछल रहे हैं। वे भीतर की उमङ्गों को सम्हाल नहीं पाते हैं।

'ब्राह्ममुहूर्त का प्रारम्भ ही है अभी—अभी तो आहवनीय-कुण्ड में समिधा भी नहीं पड़ी।' महर्षि शाण्डिल्य ही नहीं, सभी द्विज चौंके जब उन्होंने ऊर्ध्वमुख लाल-लाल लपटों से धूम्रहीन कान्तिमय भगवान् हव्यवाह को कुण्डों में प्रत्यक्ष मूर्तिमान्-सा देखा। महर्षि शाण्डिल्य के नेत्र एक क्षण को बंद हुए और शिष्यों ने देखा, उनके गुरुदेव भावविभोर होकर सस्वर साम के मन्त्रों से अकस्मात् किसी पुरुषोत्तमतत्व का स्तवन करने लगे हैं। उन्हें अपने आचार्य का साथ देना ही चाहिये। कैसा है आज का यह स्तवन—शब्द जैसे स्वतः सुधा-सिञ्चित निकल रहे हैं। परा वाणी जैसे प्रत्येक कण्ठ से आतुर निकल पड़ी है और शरीर रोमाञ्चित हो उठा है। नेत्र अपने-आप वृष्टि करने लगे हैं।

'व्रजराज—तेजोमय श्रीव्रजराज !' गोपों ने, सेवकों ने देखा, एक दूसरे को दौड़कर समाचार दिया और सबकी भीड़ एकत्र होने लगी है नन्दभवन के द्वार पर। 'हम सब तो पहले से जानते हैं कि व्रजेश कोई देवता हैं ! आज कृपा करके उन्होंने हमें अपने दिव्यरूप का दर्शन दिया। भला, मनुष्य में उनके-से सद्गुण कहीं हो सकते हैं ?' जितने मुख, उतनी बातें। लेकिन व्रजराज इस लोक में हैं कहाँ ? वे तो अपने अन्तर के किसी अवर्ण्य आनन्दलोक में तदाकार हो रहे हैं।

'क्या हुआ है ?' सेविका ने समाचार दिया और श्रीव्रजेश्वरी के हाथ का कार्य जहाँ का तहाँ रह गया। 'उनके आराध्य को क्या हो गया है ? नहीं, उन्हें कोई देवता, सिद्ध नहीं चाहिये। उनके

व्रजेश तो बड़े सीधे हैं, आज यह सेविका क्या कह रही है ? उनके शरीर से सूर्य के समान—सूर्य से भी अधिक प्रकाश निकल रहा है ! उनकी ओर देखते ही बनता है; बड़ा सुन्दर, शीतल है वह प्रकाश। लेकिन यह दासी यों ही बातें बनाने में चतुर है। पता नहीं क्या हुआ ! भगवान् व्रजपति का मङ्गल करें !' पता नहीं क्या-क्या आया उनके मन में। वे दौड़ीं द्वार की ओर। कौन-कौन वहाँ हैं, क्या करना है, वहाँ जाना चाहिये भी या नहीं, जैसे कुछ स्मरण नहीं उन्हें। 'इतनी देर हो गयी, भगवान् भास्कर उदित ही होने वाले हैं और व्रजेश भवन में नहीं पधारे ! नित्य तो इससे पूर्व ही उनके पदों की वन्दना का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। अवश्य कुछ हुआ—कुछ हुआ है !' वे सीधे दौड़ती गयीं। गोपों ने एक ओर हटकर मार्ग दे दिया। बहुतों ने कुछ कहना चाहा, बहुतों ने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया, कुछ ने पुकारा—सुने कौन ?

'महर ! व्रजेश ! क्या हो गया है इन्हें ?' नन्दरानी को जैसे पतिदेह के उस आनन्दोज्ज्वल शत-सहस्र-चन्द्राभ प्रकाश से कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे वह भी कोई आशङ्का की ही बात हो और आशङ्का की बात है ही। इतना स्वेद, इतना अश्रु, यह दूर से दीखने वाला रोमोत्थान, यह अङ्ग-यष्टि की विचित्र भङ्गी—भला, यह कोई सामान्य स्थिति है ? 'मेरे देव !' आतुरतापूर्वक व्रजेश्वरी ने पति के पदों का स्पर्श किया। वे सम्भवतः श्रीनन्दराय को उठाने का प्रयत्न करने जा रही थीं। क्या हुआ ? पता नहीं क्या, पर पति का स्पर्श करते ही श्रीव्रजरानी जैसे थकित-सी हो गयी हों। वही, लगभग वही दशा उनकी हो गयी।

'श्रीहरि !' धीरे-धीरे व्रजराज के नेत्र खुले, जैसे उसके लिये भी उन्हें श्रम करना पड़ा हो। 'क्या है यह सब ?' जैसे वे इतने लोगों को देखकर चौंक पड़े हों। धीरे से उठ खड़े हुए। उनके उत्थान ने ही जैसे श्रीयशोदाजी को सावधान किया हो ! वे भी उठीं और सेविका उन्हें लेकर भवन में चली गयी।

श्रीनारायण की अपार अनुकम्पा है ! वे दयामय कभी-कभी अयोग्य अनधिकारी पर भी द्रवित हो जाते हैं ! आप सब ने उन्हीं की दिव्यलीला से कुछ देखा है। आप सबपर उनको अनुग्रह करना है। मैं तो उसमें यन्त्र की भाँति निमित्त बन गया !' बड़ी नम्रता, सरलता से व्रजेन्द्र ने गोपों का समाधान कर दिया। सरलचित्त गोपों को उनकी बात जँच गयी। श्रीनन्दराय श्रीहरि के परम भक्त हैं; अतः उनके शरीर से भगवदीय तेज आविर्भूत हुआ, इसमें तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं है।

गोपों का समाधान तो हो गया; किंतु अपना कैसे समाधान हो। अब चित्त तो ध्यान में लगता ही नहीं। अब हृदय-कमल में श्रीनारायण का साक्षात्कार करने जैसी एकाग्रता ही नहीं प्राप्त होती। वह कुमार—वह द्विभुज मयूरमुकुटी अतसीकुसुमावभास बालक, जैसे निरन्तर वही नेत्रों के सम्मुख हँसता रहता है। नेत्र बंद करके भी उसे भूला कैसे जा सकता है।

गोप नन्दद्वार से लौटे—आज गोकुल कुछ विचित्र हो गया है। प्रत्येक को लगता है जैसे भूमि, गृह, तरु, तृण, पशु-पक्षी सब वह नहीं हैं। कुछ अद्भुत हो गये हैं सब और वह स्वयं भी कुछ बदल गया है। जैसे सब किसी अपूर्व माधुरी में स्नात हो गये हैं। लेकिन व्रजेश—उन्हें तो अब यह सब दीखता ही नहीं। वह बालक—वह रूपराशि, परम सुकुमार हँसता-सा जैसे उनके समीप आकर भी भाग जाता है। जैसे वह उनकी गोद में आकर बैठने ही वाला है। बड़ी विचित्र दशा है।

× × ×

'एक बालक है—शिशु, बड़ा चञ्चल, बड़ा ही सुकुमार शिशु। जैसे सुधांशु उसकी कान्ति की छाया से निकला हो। नवजलधर अङ्ग, नवनीत-सुकुमार, पल्लव-अरुण कर-चरण, पतले-किंशुक दल-से अधर, विशाल कमलदल-सदृश लोचन, घुँघराली अलकें और पीतपट की कछनी। हँसता, दन्त-ज्योत्स्ना से हृदय को सुधास्नात करता, कूदता, उछलता, अलकें लहराता जैसे वह आता है और गोद में बैठ जाता है !' श्रीनन्दरानी द्वार पर से भवन में आयीं तो—पर कैसे आयीं, वे स्वयं नहीं जानतीं। यह शिशु—यह उनका शिशु—उन्हें लगता है यह उन्हीं का शिशु है। वे उसे हृदय से लगाने को हाथ उठाती हैं और चौंक पड़ती हैं।

'एक शिशु—यह बालक है या बालिका ?' सहसा चेतना जाग्रत् हो गयी उनकी। 'कहाँ, कोई भी बालक या बालिका तो नहीं है !' उन्हें लगा था कि वह शिशु—वह बालक, नहीं, नहीं, बालिका—बालक, बालिका बालक जैसे पीछे बालिका हो गया हो या फिर बालिका ने बालक को अपने पीछे छिपा लिया हो; पर वैसी ही सुन्दर, वैसी ही श्याम, वैसी ही चपल, वही कमलदल-विशाल-लोचना वह बालिका। इस बालिका के आते ही अपने-आप उनकी चेतना जाग्रत् हो गयी।

'वह शिशु !' आज माता का मातृत्व जाग्रत् हो गया है। मन कहता है—'वह शिशु गोद में आता !' हृदय कहता है—'वह तो अपना ही है !' लेकिन—लेकिन कुछ नहीं। हृदय नहीं मानता कि वह अपना नहीं, वह नहीं आयेगा।

व्रजेन्द्र कहते हैं कि उन्हें स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वही चञ्चल इन्दीवरदलश्याम उनके हृदय से व्रजेश्वरी की गोद में जा बैठा है। वे अब भी उसे व्रजरानी के अङ्क में देखते हैं। 'कहाँ ?' व्रजेश्वरी भी तो बार-बार उसे देखती हैं, वह आयेगा उनके अङ्क में ? लेकिन वह बालिका ? जब-जब वे उस परम सुन्दर को देखकर शरीर से ऊपर हो जाती हैं आनन्द-विभोर होकर, यह बालिका आती है। यह जैसे उन्हें जाग्रत्—सावधान करने ही आती है और यह तो आयी और बस—यह टिकती कहाँ है। इसे टिकना भी तो नहीं; पर आती है यह सदा उसके साथ, उससे तनिक ही पीछे, जैसे उसकी अनुजा हो। अनुजा—होने की धन्य साध ही तो पूरी करनी है उसे इस बार।

× × ×

'व्रजरानी की गोद भरने वाली है !' गोकुल के लिये, गोपों के लिये, व्रज के लिये इससे अधिक शुभ—मङ्गल संवाद और क्या हो सकता है। आनन्द, उत्सव, उल्लास, बधाई, नन्हें गोकुल में यह महामोद कैसे समा जाय।

'यह रोहिणीजी का प्रभाव है !' जो आता है, उसी के मुखपर यही बात। गोपियाँ आती हैं और अञ्चल फैलाकर उनके चरणों का स्पर्श करती हैं। उन्होंने तो उस महिमामयी के आते ही कहा था कि अब अवश्य नन्दरानी की गोद धन्य होगी और जब वह स्वर्ण-गौर दाऊ—हाँ दाऊ ही तो, उसका तो अब तक नामकरण ही नहीं हुआ, पर सब उसे दाऊ कहने लगे हैं—वह दाऊ जिस दिन आया, यह तो सबके हृदय ने संदेहहीन रूप से स्वीकार कर लिया कि अब वह अपना छोटा भाई भी बुलायेगा ही।

माता रोहिणी—बड़ा संकोच होता है उन्हें और वे अपने पूज्य पतिदेव से दूर हैं ! अपने परम सुन्दर का मुख देखकर भी उनकी व्यथा गयी कहाँ। ये गोपियाँ—किसे मना करें वे। आज-कल बड़ी विचित्र दशा हो गयी है उनकी। पतिदेव—पतिदेव को वे भला क्या भूल सकती हैं। उनकी व्यथा कैसे कोई समझेगा; किंतु ये यशोदा, पता नहीं क्यों आजकल यशोदाजी पर दृष्टि जाते ही उनका अन्तःकोष प्रसुप्त-सा हो जाता है। एक अज्ञात उल्लास उमड़ पड़ता है हृदय में और उनका यह दाऊ—वह तो उनकी गोद में रहना ही नहीं चाहता और व्रजरानी ही कहाँ छोड़ना चाहती हैं उसे। वे तो उसे गोद में लेकर ही कुछ सावधान रह पाती हैं। पता नहीं कैसी दशा हो गयी है उनकी। उन्मना-सी ही वे प्रायः रहती हैं।

यह अद्भुत दिव्य सुरभि, यह नित्य बार-बार अन्तरिक्ष से कुसुम-वृष्टि, यह अद्भुत ज्योतिर्मय पुरुषों का चाहे जब गगन में प्रकट हो जाना, यह स्तवन, वाद्य, संगीत की बार-बार अज्ञात ध्वनि—किंतु इससे नन्दभवन में कोई अब अपरिचित कहाँ है। दाऊ जब माता के गर्भ में था, तब से इस सबका अभ्यास है सबको। क्या हुआ जो अब इनकी आवृत्ति अधिक होने लगी है। इसमें किसी को कुछ अद्भुत नहीं लगता।

श्रीव्रजरानी इस प्रकार उन्मना रहने लगी हैं, यही चिन्तनीय है। वैसे उनके शरीर का दिव्य तेज बढ़ता ही जा रहा है। उनका शरीर ही आलोकमय हो गया है। उनकी शक्ति और स्फूर्ति भी बढ़ी ही है। उनकी अङ्गयष्टि में तनिक भी क्षीणता एवं दुर्बलता के लक्षण नहीं। उनके देह से अपूर्व सुरभि निकलने लगी है; किंतु वे यह जो प्रायः अद्भुत रूप से हँसने लगती हैं, थकित-सी रह

जाती हैं। एक ही समाधान है सबके लिये कि कदाचित् अधिक अवस्था में संतान-प्राप्ति का यह प्रभाव है।

उस दिन महर्षि शाण्डिल्य आये थे। गर्भ के संस्कार तो होने ही चाहिये। वे वृद्ध, सर्वज्ञ महर्षि—पता नहीं क्या हुआ, वे तो नन्दरानी को देखते ही स्तम्भित-से रह गये। उनके नेत्रों से अश्रुधारा चलने लगी। हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया उन्होंने। भला, यह भी कोई बात है ? व्रज-पति आकुल होकर उनके पैरों पर गिर पड़े। महर्षि ने कठिनता से अपने को सम्हाला। नेत्र पोंछे। उन्होंने कितने भावक्षुब्ध कण्ठ से कहा था—'व्रजेन्द्र, आप धन्य हैं! आपके यहाँ जो आ रहे हैं, उनके लिये—उनके निमित्त प्रणाम करने का भी सौभाग्य प्राणी अनेक जन्मों के पुण्यों का उदय होने पर ही पाता है।' महर्षि पता नहीं अपनी परावाणी में क्या-क्या कह गये। बाबा ने, गोपियों ने, गोपों ने यही समझा कि महर्षि उत्तम बालक की बात कह रहे हैं।

× × ×

'इस बार महाशक्ति योगमाया भी धरा पर व्यक्त हो रही हैं!' सृष्टिकर्ता के लिये नन्दव्रज नित्य प्रणम्य हो गया है।

'आदिशक्ति के पावन-चरणों में हम नित्य अभिवादन का ऐसा सुअवसर कदाचित् ही पा सकें।' महेन्द्र शची के साथ गोकुल में—नन्दभवन की धन्य 'धरा' पर अपने पारिजात सुमनों की अञ्जलि नित्य सार्थक करते हैं।

'ये भगवान् शिव और ये भगवती पार्वती भी क्यों नित्य व्रज में ही दिखायी पड़ती हैं! ये सनकादि कुमार—ये क्या अब महाशक्ति की आराधना करने लगे हैं ? ये तो नित्य उन पुराण-पुरुष के चिन्तन में ही तन्मय रहते हैं और ये देवर्षि, इन्हें तो नित्य मथुरा जाना चाहिये, अनन्त-शायी तो वसुदेवजी के यहाँ प्रकट होनेवाले हैं और ये गोकुल की प्रदक्षिणा करके ही संतोष कर लेते हैं।' कौन बताये देवताओं को कि गोकुल में—नन्दभवन में इस बार जो आ रहा है, वह स्रष्टा के लिये भी अज्ञेय ही है। वह तो जिन्हें स्वयं दर्शन देना चाहे, वे ही उसे देख पाते हैं। भला, ये उनके नित्य सेवक, ये परमभागवत उसके आगमन से अनभिज्ञ रह कैसे सकते हैं; किंतु देवताओं को, स्रष्टा तक को तो वह बालिका—वह महाशक्ति योगमाया ही दीखती हैं। वह कहाँ देखने देती हैं अपने अग्रज को। उन्होंने सबकी दृष्टि आच्छादित जो कर रक्खी है।

श्रीयशोदाजी—वे इन सुरों को, इन ऋषियों को देखती हैं, पर देखकर भी नहीं देखतीं। कहाँ अवकाश है उनके मन को। यह परमसुन्दर, परमसुकुमार, परमचपल श्यामशिशु—यह जो उनके आगे दौड़ता, उझकता, किलकता-सा रहता है और यह बालिका—यह बालिका जो सहसा आती है और फिर झट छिप जाती है। व्रजेन्द्रगृहिणी को तो श्री रोहिणीजी बार-बार सम्हालती हैं। स्नानादि का भी उनके आजकल वे ही ध्यान रखती हैं।

× × ×

'बधाई श्रीनन्दराय जू!' आजकल बधाइयों की क्या कोई गणना है। व्रज के पृथक्-पृथक् गोष्ठों से, ग्रामों से, गृहों से और कौन जाने कि ये बधाइयाँ सब व्रज के लोग ही देने आते हैं। पता नहीं कहाँ-कहाँ के विप्र, कौन-कौन ऋषि, मुनि, विद्याजीवी, नट, नर्तक आजकल गोकुल आते हैं। किसी को आशीर्वाद देना है, किसी को अभिवादन करना है और किसी को बधाई देनी है। श्रीव्रजेन्द्र को संतति होनेवाली है, उनका गुण, उनका सुयश—भला, यदि दूर-दूर के ऋषि-मुनि भी उन्हें आशीर्वाद देने पहुँचने लगे हैं तो आश्चर्य की क्या बात है और कोई भी विद्योपजीवी इतना पुरस्कार किसी सम्राट् से भी पाने की आशा कर सकता है ?

गोकुल तो अभी से अतिथियों की पावन पद-रज से परिपूत होने लगा। महर्षि शाण्डिल्य के ही अतिथि बढ़ रहे हैं सबसे अधिक। ये देहधारी तप, त्याग एवं ज्ञानस्वरूप, विश्ववन्द्य ऋषिगण—किंतु उनसे तो अनुरोध भी नहीं करना पड़ता। वे तो महर्षि से मिलते ही स्वयं कहते

हैं—'हमें भी अपने तपोवन के एक तृण की भाँति एक ओर पड़े रहने की अनुमति दें आप !' व्रज-राज, गोकुल, गोप सब कृत-कृत्य हैं। सब मानते हैं कि यह उनके आचार्य का ही प्रभाव है। महर्षि शाण्डिल्य—वे अपने भाव-गद्गद स्वागत में कुछ कह जाते हैं—भला, उनकी बात, इन महर्षियों की बात तो महर्षि ही समझ सकते हैं।

व्रजेन्द्र के लिये तो सभी नारायण के स्वरूप हैं। वे कहाँ किसी नट-नर्तक और दूसरे आगत में भेद देख पाते हैं। उनके यहाँ कौन-कौन आ रहे हैं—कौन जाने, कौन पहचाने। व्रजेश तो प्रत्येक के लिये अपना सर्वस्व देने को ही उद्यत रहनेवाले महा उदार हैं और उनके ये अद्भुत अभ्यागत—ये उनको आशीर्वाद या बधाई देने में ही पता नहीं क्यों अपना सौभाग्य मानते हैं सब के सब।

'हम जाते कहाँ हैं। आप के लाल का दर्शन करके ही हम बधाई का पुरस्कार लेंगे और खूब लेंगे !' भला, गोकुल में क्या आवास का अभाव है। बाबा को तो लगता है, ये सब सम्मान्य जन यहीं के निवासी बन जायँ ! जो आता है, वह आजकल जाने के लिये आता कहाँ है और गोपों में तो जैसे 'पर' का भाव ही नहीं रहा है। ये सब उनके अपने ही लोग तो हैं।

× × ×

'मेरे उपवन के तरुओं का मधु रक्खा जा सके, मैं इसके लिये पात्र की व्यवस्था करने में असमर्थ हूँ।'

'मेरे गोष्ठ से पूर्व की गोचर भूमि माणिक्य, वैदूर्य एवं पद्मराग की राशियों से गौओं के चरने के योग्य नहीं रही। व्रजेश उन्हें उठवाकर पृथक् करा दें तो समीप में मृदुल तृण मिलें गायों को।'

'मेरी सब गायें एक साथ दूध देने लगी हैं। वे दुहने की अपेक्षा किये बिना ही स्तनों से दुग्धधारा क्षरित करती हैं। मैं गोदुग्ध को कहाँ तक पात्रों में रखने की व्यवस्था करूँ ?'

'ये श्यामकर्ण अश्व—पता नहीं कौन कहाँ से इतने अश्व यहाँ मेरे गोष्ठ में जोड़ गया। आप इन्हें सम्हालें !'

व्रजराज क्या-क्या सम्हालें, किस-किस की व्यवस्था करें। वनों में पुष्प, फल, मधु समाता नहीं और गिरिभूमि की तो चर्चा ही क्या, वनभूमि भी मणि प्रकट करने लगी है। गोष्ठों से गोदुग्ध की धारा बहती है। तेली, वस्त्र देनेवाले, ताम्बूल देनेवाले आदि प्रजाजन का अभियोग है कि गोपों ने उनसे सेवा लेनी ही बंद कर दी और गोप कहते हैं कि ये लोग छिपा-छिपाकर अनावश्यक सामग्री हमारे घरों में भरते ही जा रहे हैं। अभियोग कौन सुने और किसका सुने ? अभियोग हो भी तो सुना जाय। यहाँ तो सबका अभियोग है कि दूसरे सेवा नहीं लेते। सब देना-ही-देना चाहते हैं और लेना चाहे कौन ? क्या ले कोई किसी से। लगता है कि महालक्ष्मी ने अलक्ष्य रूप से सभी पदार्थों को स्पर्श कर दिया है। वे स्वयं गोकुल में आ बैठी हैं कहीं छिपकर और सारे पदार्थों—कोषों को अक्षय करती जा रही हैं।

× × ×

'श्रीनन्दरानी की गोद भरने वाली है; व्रजेन्द्र के संतति होने वाली है !' व्रज में प्रत्येक हृदय बड़ी उत्सुकता से उस धन्य घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा है। प्रत्येक की आराधना आजकल एकान्त तन्मय हो उठी है और प्रत्येक का एक ही प्रार्थनीय है—'व्रज को युवराज प्राप्त हो !'

व्रज की श्री, शोभा, शक्ति—वह तो कभी भी मायिक थी ही नहीं। वहाँ तो नित्य नव उल्लास रहा है; किंतु आजकल तो बात ही दूसरी है। प्रतिदिन, प्रतिप्रहर, प्रतिमुहूर्त स्वयं गोपों को लगता है कि उनका व्रज नवीन हो गया है। कोई अलक्ष्य कर जैसे गोकुल को सजाते, सँवारते संतुष्ट ही नहीं होता; यह शोभा, यह ऐश्वर्य—कोई क्या कल्पना करे। जिसके आगमन की सूचना में ही यह वैभव है—इन्दिरा का सम्पूर्ण ऐश्वर्य जिसके अग्रिम पाँवड़ों में ही समाप्त हो रहा है, अभी

तो वह आयेगा ! श्रीनन्दराय का वह कुमार—कैसा होगा वह ? गोपों के हृदय भी कल्पना नहीं कर पाते। पलकें प्रतीक्षा कर रही हैं, प्राणों में पिपासा तीव्र से तीव्रतम होती जा रही है और गृहों में आनन्द, उमंग बढ़ती जा रही है।

'यह इन्द्रनील मणि—व्रजेन्द्रनन्दन के लिये इससे मैं क्रीडाशुक बनवाऊँगी !'

'ये महामाणिक्य—ये यशोदा के लाल को न्योछावर होंगे !'

'यह पद्मगन्धा कपिला—व्रजेन्द्र कैसे अस्वीकार करेंगे मेरा यह स्नेहोपहार, मेरा युवराज इसका दूध पियेगा !'

मैं इस मयूर को तब तक नाचना सिखा दूँ संकेत के अनुसार—व्रज का वह भावी नरेश इसके साथ ठुमका करेगा !'

पता नहीं क्या-क्या संचय होने लगा है गोपों के गृहों में अभी से। युवक, तरुण, वृद्ध गोप, सभी गोपियाँ—सब अपनी-अपनी रुचि रखते हैं और श्रीनन्दराय के जो यह लाल आनेवाला है—लाल ही तो आनेवाला है, व्रज में तो किसी को इसमें संदेह है नहीं--वह नन्दलाल—वह किसका नहीं है। सब उसे उपहार देंगे। अच्छे-से-अच्छा उपहार जो उन्हें उसके उपयुक्त लगता है, संचित होता जा रहा है। उपहार भी कुछ एक ही तो नहीं देना है—'यह उसके जन्मपर न्योछावर होगा, यह नान्दीमुख श्राद्ध पर, यह उनके पलने में रहेगा और इससे वह खेलेगा !' प्रत्येक यही समझता है कि नन्दतनय की सब प्रसाधन-सामग्री उसी को एकत्र करनी है।

'यह साड़ी श्रीनन्दरानी को खूब खिलेगी ! यह उत्तरीय रोहिणीजी को देकर रहना है। यह उष्णीष श्रीव्रजेश के मस्तक के ही योग्य है और दाऊ की भँगुलिया—भला, इसके निर्माण को दूसरों पर कैसे छोड़ा जाय। इसमें तो सारे कोष के सर्वोत्तम रत्न लगाने ही हैं।' अन्ततः उस नन्द-पुत्र के जन्मोपलक्ष में सभी को तो उपहार देने हैं। सब अभी से वे उपहार एकत्र करने लगे हैं। किसी को अपनी आवश्यकता सूझती ही नहीं, एक ही धुन है सबको—वह क्या देगा नन्दराय को और क्या उस नवजात युवराज के लिये। सब अधिक-से-अधिक, सर्वश्रेष्ठ उपहार एकत्र कर लेना चाहते हैं और उनका संग्रह तथा छँटाई समाप्त होने को ही नहीं आती। उन्हें अपने संग्रह अपर्याप्त ही लग रहे हैं।

गोप ही उपहार देंगे ऐसा कहाँ है—गायक अपने वाद्य, स्वर, गान ही निश्चित करने में लगे रहते हैं आजकल और नट अपनी कला के अभ्यास में लगे हैं। मालियों ने अपने उद्यानों में अद्भुत पुष्पों को रोपित किया है और ताम्बूलकार पता नहीं दिनभर क्या-क्या शोध किया करते हैं। सब व्यस्त हैं, सब प्रयत्नशील हैं। सबके पदार्थ, सबकी कला, सबके उपहारों को सार्थक जो होना है।

विप्रवृन्द की आराधना बढ़ती ही जा रही है। महर्षि शाण्डिल्य अपने यज्ञकुण्ड से बहुत ही थोड़ी देर के लिये उठते हैं। भगवान् अग्निदेव आहुतियों से अविराम तृप्त किये जा रहे हैं। 'श्रीनन्दनन्दन का मङ्गल हो !' सबके अनुष्ठान अविचल भाव से चल रहे हैं।

× × ×

आज भाद्रकृष्ण अष्टमी है। महर्षि शाण्डिल्य ने संकेत किया है कि शीघ्र ही व्रजेन्द्र का भवन पुत्र के पदार्पण से मङ्गलमय होनेवाला है। लगभग एक वर्ष—एक वर्ष से जिसकी प्रतीक्षा चल रही है, वह आनेवाला है।

व्रजेन्द्र के भवन में ओषधियाँ तो कब से आ गयी हैं। अनेक सेवक बहुत पूर्व से स्वयं नित्य नवीन ओषधियाँ लाते हैं और पहिले दिन की हटा दिया करते हैं। श्रीनन्दरानी का कक्ष तो कब से विधिपूर्वक रक्षित एवं सज्जित रहता है। मङ्गलप्रदीप तो नित्य ही अखण्ड प्रदीप्त होता है, किंतु अब वहाँ शस्त्र भी सुपूजित होने लगे हैं। परिचारिकाएँ सदा सेवा में प्रस्तुत रहती हैं। यह ठीक है कि व्रजेन्द्रगृहिणी में शैथिल्य के कोई लक्षण नहीं; किंतु वे श्री रोहिणीजी का आदेश कैसे टाल सकती हैं। आजकल तो श्री रोहिणीजी अनुरोध नहीं करतीं, वे तो इस प्रकार आदेश

देती हैं जैसे बड़ी बहिन अपनी सगी छोटी बहिन को देती हो। उनका आदेश नहीं है कि श्री यशोदाजी स्वयं कुछ भी करें, थोड़ा भी इधर-उधर आयें-जायँ। परिचारिकाओं पर विश्वास ही नहीं होता उन्हें। वे स्वयं प्रातः व्रजरानी के समीप ही रहती हैं। आजकल इस परिचर्या में वे अपने पति-वियोग को भूल-सी गयी हैं।

आज अष्टमी है। आज महर्षि शाण्डिल्य स्वयं प्रातः नन्दभवन पधारे और कुछ संकेत कर गये। वे कहाँ कभी स्पष्ट कहते हैं। नन्दभवन आज नवीन रूप में सजाया गया है। प्राङ्गण के आहवनीय-कुण्ड में आज विशेष आहुतियाँ पड़ी हैं और पूरा गोकुल जैसे एक छोटा कक्ष हो—साज-सज्जा से उसका प्रत्येक अंश पूर्ण हो गया है।

× × ×

'गगन निर्मल है, तारकमण्डल पूर्ण प्रकाशित है और अभी अर्धरात्रि भी नहीं हुई; पर आज आलस्य क्यों आ रहा है!' श्रीव्रजराज ने अनुभव किया कि सभी दिनभर साज-सज्जा में व्यस्त रहे हैं। स्वयं उन्हें भी निद्रा ज्ञात हो रही है। आज उनकी रात्रि की पुराण-गोष्ठी शीघ्र विसर्जित हो गयी। सभी को निद्रा की अलस स्थिति का अनुभव हो रहा था।

'अब तो बहुत कुछ हो चुका है, तनिक देर विश्राम कर लेना है।' गोपियों ने निश्चय तो रात्रि-जागरण का किया था। आज उन्हें नन्दनन्दन के लिये पता नहीं क्या-क्या बना लेना है। आज ही बना लेना है। महर्षि ने कहा है कुछ—वह यशोदासुत आने ही वाला है; पर वे दिनभर व्यस्त रही हैं। अब पलकें स्वतः बंद होती जा रही हैं। उन्हें शयन कहाँ करना है। कुछ क्षण विश्राम भर करेंगी वे। अब यदि कुछ क्षणों के लिये बंद किये गये पलक कुछ घटिकायें ले लें तो कोई क्या करे।

प्रहरी—बड़े सावधान, नित्य जागरूक प्रहरी। तनिक भित्ति से पीठ टिकाकर शरीर सीधा किया उन्होंने और मस्तक झुककर एक ओर लगाया। श्रान्ति प्रतीत होती है, एक बार नेत्र बंद हुए और फिर पता नहीं। वे तो बेचारे प्रहरी मानव ही थे, आलस्य तो आया रात्रि के नित्य सजग श्वानों को और वे इधर-उधर बैठ गये मुख को शरीर पर मोड़कर। पता नहीं कौन यह अद्भुत आलस्य संचारित कर रहा है!

परिचारिकाएँ—वे बिचारी क्या करें। वे भला, कहीं प्रमाद कर सकती हैं। उन्हें स्वयं पता नहीं कि क्या हो रहा है। किसी ने बैठे-बैठे तनिक भित्ति से सिर सटाया था और किसी ने खड़े-खड़े थककर स्तम्भ का सहारा लिया था। किसी ने शरीर को स्फूर्ति देने के लिये अँगड़ाई लेनी चाही थी लेटकर और कोई तो ज्यों-की-त्यों बैठी है। पलकें स्वयं बंद हुईं और फिर क्या किसी के बस की बात है।

श्रीनन्दरानी—अपनी सुकोमल शय्या पर उन्हें भी आलस्य आने लगा है। 'सेविकाएँ सो गयीं, ये सब बहुत व्यस्त रहती हैं। कुछ देर सो लें तो अच्छा है।' उन्होंने स्वयं भी नेत्र बंद कर लिये। कौन—कौन है अङ्क में? कोई शिशु—कोई शिशु ही तो आ गया है उनकी गोद में। एक अर्धनिद्रित-सी दशा का बोध, इच्छा होने पर भी पलकें नहीं खुलीं। उन्हें यही पता नहीं लगा कि उनकी गोद में एक शिशु है या दो हैं। वे निद्रित हो गयीं या उस आनन्दघन के अभिभाव ने उनके अन्तर को सत्व के चरमोत्कर्ष से निःस्पन्द, बाह्यचेतनाशून्य, अन्तर्लीन कर दिया—कौन कह सकता है।

× × ×

'जय कन्हैयालाल की!' भला, इन सब वृद्धों में परम वृद्ध किंतु पञ्चवर्षीय सनकादि कुमारों को कोई क्या कहे। ये परमशान्त, नित्य आत्मनिमग्न, गम्भीरता के सचल विग्रहरूप—इन्हें क्या हो गया है आज? 'जय कन्हैयालाल की!' ये तो सचमुच आज पञ्चवर्षीय बालक हो गये हैं। पितामह को झकझोर दिया इन्होंने, वृद्ध ऋषिवृन्द को जैसे प्रोत्साहित कर आते हों और सिद्ध-सुरवर्ग तो इनके संकेत पर ही श्रद्धावनत है।

'जय कन्हैयालाल की !' श्रीकृष्णचन्द्र तो आ रहे हैं मथुरा के कारागार में, पर किसी के विमान से भी दिव्य सुमनों की श्रद्धाञ्जलियाँ ये कुमार गोकुल के नन्दभवन में क्यों समर्पित करते थकते नहीं। ये तो जैसे चाहते हैं, सब अपने समस्त सुमन नन्दभवन पर ही न्योछावर कर दें। जब ये समीप आते हैं, अञ्जलि कहाँ दे रहे हैं—ये तो विमानों से सुमनों को दोनों हाथों से उडेल रहे हैं और इनके संकेत की कौन अवहेलना करे—इनके पहुँचते ही इनका समादर तो करना ही है। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, सब हँसकर इनके संकेत का अनुगमन करते हैं। नन्दभवन—शान्त नीरव नन्दभवन इन पुष्पों से पूरित होता जा रहा है।

'जय कन्हैयालाल की !' नन्दभवन में तो योगमाया आ रही हैं, ये परमानन्दरूप कुमार—ये तो किसी भी अवतार के समय इतने आनन्द-विह्वल नहीं होते। आज तो ये इतने निमग्न हैं कि नाम किसी का ले रहे हैं और सुमनाञ्जलि कहीं उत्सर्ग कर रहे हैं। देवता समझावें इन्हें।

'जय कन्हैयालाल की !' पितामह--लोकस्रष्टा अपने इन आत्माराम आप्तकाम वीतराग पुत्रों के साथ कहने को तो कहते जा रहे हैं; न कहें तो ये क्या मानेंगे आज। आज तो इन चारों के चरण स्थिर ही नहीं होते। एक से दूसरे विमान तक वे मन की गति से उछल-कूद किये हैं और जैसे मथुरा की ओर उन्हें देखना ही नहीं है। जैसे उनकी चेष्टा, प्रत्येक भङ्गी कहती हो—'अरे क्या देखते हो, बड़े प्रमादी, बड़े सुस्त हो तुम लोग! जीवन में कहीं ऐसा क्षण भी मिला करता है। कूदो ! उछलो ! पुकारो 'जय कन्हैयालाल की !' और उत्सर्ग करो अपने सुमन ! वहाँ--वहाँ नन्द-भवन में ! मथुरा की ओर क्या देखते हो !' सचमुच ये तो मथुरा की ओर देखते ही नहीं। नन्दभवन में आनेवाली योगमाया से तो इन्हें कभी इतना अनुराग नहीं था और अनन्तशायी, वही कहाँ इनके लिये इतने दूर हैं। कोई नहीं समझ पाता इनके उल्लास को।

'जय कन्हैयालाल की !' ये भगवान् शशाङ्कशेखर, ये तो हैं ही भोले बाबा। आज अपने अग्रज कुमारों के साथ ये भी आनन्दमत्त हो रहे हैं; पर यह मण्डली कब अपने-आप में रहती है। मथुरा—कंस का कारागार, वे देवकी-वसुदेव के सम्मुख विराजमान चतुर्भुज सर्वेश्वर प्रभु--उन प्रभु का अब यह मङ्गलमय, सौन्दर्यमय मानवशिशु रूप--कदाचित् इसी रूप के सौन्दर्य में मुग्ध ये कुमार एवं ये गङ्गाधर कन्हैयालाल की जय-जय करते नृत्य-सा कर रहे हैं! पर ये तो उस शिशु की ओर देखते तक नहीं। मथुरा से जैसे इन्हें कुछ सम्बन्ध ही नहीं--क्या है नन्दभवन में ? नन्द-भवन पर ही तो इस नृत्य, उल्लास, उन्मद गति में भी इनकी अपलक दृष्टियाँ स्थिर हैं।

'ये योगमाया--ये सर्वेश्वरी और कितना मोहक, कितना आकर्षक, कितना मधुरिमामय है इनका यह नवजात बालिकारूप !' देवताओं ने नन्दभवन की ओर देखा उस कारागार को कृतार्थ करनेवाले चिन्मयपुरुष के शिशु रूप को देखने के अनन्तर और नन्दगृहिणी के अङ्क में जो यह भुवनमोहिनी बालिका आ गयी है--भुवनमोहिनी जो है वह, 'अनिमेष' नाम सार्थक हो गया सुरों का। जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भी उस मञ्जु मुख से अपने नेत्र हटा न सके। सबके नेत्र जैसे उस मोहमयी कन्या ने अपने में ही बलात् केन्द्रित कर दिये हों। उसके समीप, उससे सटा ही कोई है, कोई वह शिशु जिसकी छटा का प्रतिबिम्ब ही उसकी यह अपार शोभा बन गया है, वह जिसकी अनुजा है; पर देवताओं के नेत्र उसके मुख से हटें तब तो और कुछ देखें। क्या हुआ जो स्रष्टा सर्वज्ञ हैं, आज उनकी सर्वज्ञता इस कन्या के त्रैलोक्य-मोहन मुग्ध नेत्रों में ही सीमित हो गयी है। देवताओं ने नन्दभवन की ओर देखा--उनके नेत्र सीधे उस कन्या के मुखपर पड़े और वहीं स्थिर हो गये।

'अच्छा, वसुदेवजी इस कन्या को उठा रहे हैं ! अपना पुत्र--उस अनन्तशायी को नन्द-रानी की गोद में रक्खे जा रहे हैं !' देवताओं के साथ स्रष्टा ने भी देखा अब कि वसुदेवजी नन्दभवन आ गये हैं। उन्होंने बालिका को गोद में उठा लिया है अपने पुत्र को उसके स्थान पर रखकर। 'मैंने प्रजापति द्रोण एवं भूदेवी को वरदान दिया था कि जब परमपुरुष अवतार लेंगे तो वे अपनी बालक्रीडा से तुम लोगों को प्रसन्न करेंगे और तुम्हारी उसमें वात्सल्य भक्ति होगी। ये व्रजराज

नन्द द्रोण ही तो हैं और ये भूदेवी ही यशोदा हैं। प्रभु ने अपनी अपार करुणा से मेरा वचन सत्य किया!' कौन बताये पितामह को कि आप पहिले इन योगमाया की वन्दना कीजिये, जिन्हें वसुदेवजी लिये जा रहे हैं। ये मुस्करा रही हैं और आप इनके स्मित का अर्थ जानते हैं। ये श्रीनन्दराय और ये यशोदाजी--ये क्या आप की सृष्टि के हैं? ये कौन हैं—लेकिन आपके द्रोण एवं भूदेवी इनसे एक हो गये हैं, जैसे नन्दनन्दन में वसुदेव-कुमार; पर आप तो प्रत्यक्ष कहाँ देख रहे हैं। आपकी दृष्टि तो उन एक हुए रूपों को ही देखती है।

'जय कन्हैयालाल की!' इस बार स्रष्टा के स्वरों में भी उल्लास आया और उनकी चारों अञ्जलियाँ सुमनों से पूरित हुईं। सुरों ने पितामह का अनुसरण किया। गगन का यह महोत्सव चलता रहा, चल रहा है 'जय कन्हैयालाल की!' धरा नीरव--निःशब्द--प्रसुप्त और गगन--गुञ्जित, मोदमय--वहाँ एक ही ध्वनि--एक ही उल्लास--जय कन्हैयालाल की! जय कन्हैयालाल की!।

# वंदे नंदनंदनं देवं !

*जागृहि जागृहि चेतश्चिराय चरितार्थता भवतः ।*
*अनुभूयतामिदमिदं पुरः स्थितं पूर्णनिर्वाणम् ॥*

—श्रीलीलाशुक

'बधाई, नन्दरानी जू ! बधाई ! बधाई !' आज श्रीव्रजेश्वरी का सूतिकागृह क्या सेविकाओं पर छोड़ा जा सकता था। माता रोहिणी तथा सभी जेठानियाँ एवं देवरानियाँ तो आज इसी कक्ष में हैं। सब से छोटी देवरानी ही पहिले जागृत हुईं और 'यह क्या, कक्ष में इतना सुस्निग्ध आलोक ! मणि-प्रदीपों में कहीं यह आलोक हो सकता है !' झटके से वे उठीं और दृष्टि गयी व्रज-रानी के ऊपर। यह उनकी गोद में जो सहस्र-सहस्र सुधांशु की घन ज्योत्स्ना सुनील शिशु बन गयी है ! दृष्टि वहीं स्थिर हो गयी; किन्तु मुख से बधाई निकली और करों ने पहिले से प्रस्तुत मङ्गल-जनक कांस्य-पात्र बजाने प्रारम्भ कर दिये। उन्हें स्वयं पता नहीं कि वे कर क्या रही हैं।

गगन की पुष्पवृष्टि द्विगुण, चतुर्गुण, शतगुण होती जा रही है और आकाश का जयनाद, भेरीघोष; किंतु गोकुल के वाद्यों से जो एक साथ यह स्वर उठा है—आज भला, गगन धरा से कैसे किस बात में होड़ करे। आज धरा पर यह जो शिशु आया है, गगन उसकी इस जन्मभूमि की वन्दना ही तो कर सकता है।

'श्री व्रजराज की जय !' श्री व्रजराजकुमार की जय !' प्रसूतिकक्ष से कांस्यपात्र की ध्वनि उठी--जैसे गोकुल के प्रसुप्त प्राणों को विद्युत्स्पर्शी जीवन-आनन्द-गति प्राप्त हुई हो। एक साथ-एक साथ ही सब वाद्य गूँजे और सब के कण्ठों से जयध्वनि गूँजी। प्रतीक्षातुर प्राण क्या ऐसे संवाद को किसी से पाने की प्रतीक्षा करते हैं।

'बधाई ! बधाई !' एक साथ प्रसूतिकक्ष में सभी सेविकाएँ, सभी माताएँ उठीं और सब के नेत्र उस सजलजलदनील ज्योतिर्मय के मुखपर स्थिर हो गये। मैया--आज व्रजेश्वरी मैया हो गयी। उसका लाल--ओह, कितना सुकुमार है ! उसे तो छूने में भी प्राण काँपते हैं। वह तो प्राणों के स्पर्श से भी····माता ने देखा और देखती रह गयी। वह हँस रहा है-वह तो हँस रहा है अपने विशाल लोचनों से मैया की ही ओर देखता। वह हँस रहा है--वह आनन्दघन--वह तो प्राणों को हास्य ही देने आया है, फिर रोये क्यों ? पर यह मैया कब तक उसे देखती रहेगी ? यह उठाती क्यों नहीं, वह इसी की स्नेहमयी गोद के लिये लालायित तो आया और यह उठाती ही नहीं। कोई कब तक प्रतीक्षा करे--यह लो, वह रोया-रोया--रोने लगा वह। जैसे सबके आनन्दमग्न स्तब्ध प्राणोंको गति, चेतना देने के लिये ही वह रोया हो।

अरे ! यह दाऊ कहाँ से आ गया ? यह तो अभी घुटनों के बल ही चल पाता है। माता रोहिणी इसे सुला आयी थीं। अब यह स्वयं अपने रत्न-पलने से उतर जाता है। माता को न देखकर उतर आया होगा। रोना तो यह जानता ही नहीं; पर यह अच्छा रहा ! जन्म से लगभग वर्ष भर होने को आया ! यह सदा गुम-सुम रहने वाला--मैया हार गयी गुदगुदाकर, माता रोहिणी नेत्र भर कर बार-बार कहती रहीं-'मुझ पतिसेवा से पराङ्मुखा भाग्यहीना का यह पुत्र भला, क्या हँसे !' बाबा, गोपियाँ, सभी थक गये; पर यह न हँसा, न हँसा। इसके कोमल अरुण अधरों पर स्मित कभी न आया। यह सदा ऊपर नेत्र किये कुछ सोचता-सा रहने वाला, खिलौनों से उदासीन, दूसरे छोटे बालकों में भी चुपचाप बैठे रहने वाला, आज यह इतना हँस क्यों रहा है ? अपने नवजात छोटे

भाई को रोते देख यह तो और भी हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगा है। क्या हो गया है इसे ? इसके हास्य ने तो मैया के, माता रोहिणी के, सभी के आनन्द को अपार बढ़ा दिया है। यह तो अपने छोटे भाई की ओर देख-देख कर हँसता ही जा रहा है। यह हास्य, यह उन्मुक्त बाल-हास्य, जैसे वर्ष भर की सम्पूर्ण निरुद्ध हँसी आज ही पूरी कर लेगा।

माता रोहिणी—उनका दाऊ, आज यह हँसते हँसते लोट-पोट हो रहा है! ठीक ही तो है—आज तो स्वयं उनका हृदय आनन्द-मग्न हो गया है। इस नवजात नन्दनन्दन के श्रीमुख पर दृष्टि गयी, माता को लगा कि यह इन्दीवरसुन्दर उन्हीं की ओर देखकर हँस रहा है। हृदय—वहाँ तो उसी समय आनन्दसिन्धु हिलोरें लेने लगा। वहाँ कोई दुःख, कोई चिन्ता कभी थी भी—अब उसका चिह्न भी कहाँ है। माता रोहिणी पति से दूर हैं—पुत्र का प्रफुल्ल कमलमुख देखकर भी वे उस पतिवियोग की विषम वेदना को एक पल के लिये भी भूल नहीं सकीं हैं; किंतु आज—भला, इस नन्दनन्दन के मुख पर दृष्टि पड़ने के पश्चात् भी किसी के मनमें कोई दुःख शेष रह सकता है। यह आनन्दघन—इसे देखकर तो फिर यही-यही रहता है। माता रोहिणी तो इसे देख रही हैं, इसी को देख रही हैं और अब उनके हृदय को सदा इसीको देखना है। अब तो वहाँ इसके प्रति उमड़ते हुए वात्सल्य का अखण्ड साम्राज्य है। यह—यह चपल अभी से अपने पतले नन्हें अधरों में मन्द कम्पन करता उन्हीं की ओर देखता, उन्हीं से तो जैसे कहता है कि 'यह मैया तो मुझे उठाती नहीं; पर बड़ी माँ, तू क्यों इस प्रकार देखती है ? तू तो उठा ले ! तू ही अपनी गोदमें चढ़ने का सौभाग्य दे मुझे ! भला, बड़ी माँ—माता रोहिणी कब तक टाल दें यह मूक अनुरोध—और अब तो वह रोने लगा है। माता ने ललक कर उठा लिया।

मैया—मैया तो देख रही है, वह तो एकटक देख रही है अपने इस लाल को। आनन्द के असीम उद्रेक ने उसके शरीर को निश्चल बना दिया है। उसका लाल—उसका लाल यह और अब तो माता रोहिणी ने गोद में उठाकर लाल को उसके अङ्क में रख दिया। यह स्पर्श—यह अमृतस्यन्दी स्पर्श—यह क्या वाणी में आ सकता है।

× × ×

'बधाई ! व्रजराज, बधाई ! श्री यशोदाजी की गोद में लाल आया !' सेविका दौड़ती आयी है। उसका कण्ठ गद्गद हो रहा है। वह व्रजराज को सन्देश देकर पुरस्कार प्राप्त करेगी ? पुरस्कार तो उसे इस संवाद ने ही दे दिया। वह तो दौड़ते दौड़ते अपने कण्ठ का हार उतारते आयी है और यह लो हार फेंक दिया उसने उस वन्दी पर। 'नन्दलाल की न्योछावर !' वन्दी—यह श्रीव्रजराज का मुख्य उद्गायक—पर रङ्क की भाँति ललक कर लिया उसने हार। यह न्योछावर पाने को तो कोषाधिप तथा सुरेश भी ललक उठेंगे ! दासी का कण्ठ—उसके लिये तो व्रजेश्वर ने अपना रत्न-हार उतार कर बढ़ा दिया, पर दासी ने उसे ले ही भर लिया है। वह अपने आप में कहाँ है जो यह देखे कि उसे क्या मिला। उसने तो यह हार भी दूसरे को दे दिया। वह तो दौड़ी जा रही है, दौड़ी जा रही है उपनन्दजी के गृह की ओर और अपने आभूषण उतारती लुटाती जा रही है। 'श्री व्रजरानी ने कुमार पाया है ! बधाई ! बधाई !' दासी कहाँ देख रही है कि वह किससे कह रही है। सबसे—सारे व्रज के लोगों से जैसे उसे ही कहना है और न्योछावर—क्या पाये और क्या लुटाये वह इस नन्दलाल पर, जैसे समझ ही नहीं पाती।

'नन्दरायजी को पुत्र हुआ, बधाई !' 'श्री यशोदाजी ने लाल पाया ! बधाई !' 'बधाई ! बधाई ! व्रज का युवराज आया, बधाई !' दासियाँ, सेवक, गोप, गोपियाँ, बालक—सब तो दौड़ रहे हैं। सब तो दूसरों को यह परमानन्ददायी समाचार सुनाने को आकुल हो उठे हैं।

'बधाई ! बधाई !' बाबा से, उपनन्दजी से, संनन्दजी से, दूसरे बड़े वृद्ध एवं मान्य गोपों से, वृद्धाओं से कितने लोगों ने दौड़कर यह समाचार सुनाया—कौन गणना करे। किसने कितने बार सुनाया, यही किसे स्मरण है और किसने पहिले सुनाया—इसका क्या महत्व है अब। यह हृदय को

विभोर कर देने वाला परम शुभ—मङ्गल संवाद—सभी सुनाने वाले जैसे पहिले ही सुना रहे हों। उन्हें भी तो यही लगता है कि हमीं पहिले सुना रहे हैं। क्या दिया जाय—इसका पुरस्कार क्या दिया जा सकता है। मणि, रत्न, आभरण, गौ, गज, अश्व, कौन क्या दे रहा है, कैसे गणना हो। जहाँ सेवक तक सर्वस्व लुटाये दे रहे हैं, वहाँ गोपों की, श्रीनन्दराय के भाइयों की और श्रीनन्दराय की बात कैसे कही जाय।

'श्रीव्रजराजकुमार की जय!' वाद्यों के अधिष्ठाता जैसे स्वयं मूर्तिमान् हो गये हैं। वन्दियों के यशोगान में राग अपनी रागिनियों एवं संतानों के साथ प्रत्यक्ष हो गये हैं और भगवती हंसवाहिनी तो इनकी वाणी का स्पर्श पाकर आज अपने को कृतार्थ ही मान रही हैं। कलाकारों की समस्त कला आज साक्षात् होकर रहनी है। नट, नर्तक, कविगण—सबकी जन्म-जन्म की साधना को सार्थक होने का तो आज अवकाश मिला है।

× × ×

'श्रीयशोदाजी ने लाल पाया!' गोपों ने सुना और दौड़े। 'अभी महर्षि शाण्डिल्य नान्दीमुख श्राद्ध करायेंगे! उससे पूर्व ही एक झाँकी प्राप्त हो सकती है। देर हुई तो फिर छः दिन प्रतीक्षा करनी होगी! कौन यह अवसर छोड़ दे।

'श्रीव्रजराज को कुमार हुआ!' वृद्धों ने लकुट उठाये और चल पड़े। बालक तो कब के पहुँच गये दौड़ते हुये नन्दभवन और उन्होंने तो अपने अद्भुत उपहारों का ढेर भी वहाँ लगा दिया।

गोपियों ने शीघ्रता पूर्वक शृङ्गार किया। नूतन वस्त्र धारण किये। आभूषण सजाये और रत्नथालों में मङ्गल द्रव्य एवं उपहार उठाये। 'बड़ी देर हो गयी! इस मङ्गल अवसर पर बिना नूतन वस्त्र पहिने, बिना आभरण जाना उचित नहीं और कितनी देर लगी यह सब करने में।' वे अपने कोमल करों से थाल सम्हाले बड़ी शीघ्रता से चलीं। गति के कारण उनके केशों के पुष्पाभरण मार्ग में गिरते गये, भाल पर स्वेद कण आये और श्वास की गति बढ़ गयी; कहाँ ध्यान है इन बातों पर। नन्दभवन—नन्दभवन पहुँचना है। शीघ्रता से पहुँचना है। जातकर्म के मङ्गलगीत में सम्मिलित ही होना है और देखना है उस यशोदा-सुतको।

× × ×

'श्रीचरणों का आशीर्वाद सफल हुआ! श्रीव्रजेश्वर के गृह में पुत्र आया! प्रभु पधारें!' महर्षि शाण्डिल्य तो पहिले से प्रस्तुत हो गये थे। उनका यह अपार अतिथिवर्ग, ये मूर्तिमान् तपःस्वरूप जगत्-पूज्य ऋषिगण—सबके-सब तो एक साथ स्वयं उनके समीप कुछ ही पूर्व आये हैं। सबका तो एक ही स्वर है—'महर्षि, हमारे नेत्र आपके उस लीलामय यजमान के श्रीमुख के दर्शनों से पवित्र हों, अब तो आप ऐसी कृपा करें!' ये सुरासुरवन्द्य महर्षि बार-बार संकुचित होते हैं, जब ये उन्हें आदर देते हैं; पर उन्हें जब वह सर्वाराध्य आदर देने आ रहा है—महर्षि ने सबको उठ कर आसन देना चाहा और समाचार आया। समस्त ऋषिमण्डली, सम्पूर्ण विप्रवर्ग नन्दभवन की ओर महर्षि के नेतृत्व में आतुर पदों से चला। उनका भुवन-पावन शङ्खनाद और स्वस्तिवाचन—दिशायें सदा ही उससे निष्कलुष होती हैं; पर आज तो उनमें अद्भुत शक्ति, उल्लास एवं आनन्द का सामञ्जस्य है।

नन्द-भवन—जहाँ अनन्त असीम आज नन्हा शिशु बन गया है, वह नन्दभवन आज असीम हो गया तो आश्चर्य क्या। पूरा गोकुल आज एकत्र हो गया है नन्दभवन में। समस्त नारियाँ उस प्रसूति-कक्ष में आ गयी हैं—कैसे आ गयी हैं? यह कभी नहीं कहा जा सकेगा। पूरा गोपकुल प्राङ्गण में एकत्र है और एकत्र ही आ रहा है। वह सचल अग्निशिखाओं-सा तेजोमय विप्रवर्ग। बाबा ने द्वार से दूर तक बढ़कर प्रणिपात किया भूमि में लेटकर और एक साथ वे शतशः अभय कर आशीर्वाद देते फैल गये, जिनकी छाया लोकपालों के लिये भी चिरकाम्य रहा करती है। गोपों ने मार्ग दिया और मुनिमण्डली प्राङ्गण में आ गयी।

'कुमार चिरजीवी हो !' भगवती पूर्णमासी—ये जगदम्बिका-सी महिमामयी पधारीं और उनका मधुमङ्गल—यह तो साक्षात् मधु और मङ्गल दोनों हैं। भगवती के मना करने पर भी इसकी चञ्चलता कहाँ जाती है। 'मेरा सखा !' यह तो नाच रहा है। अपने सलोने सखा को गोदमें उठाया नहीं इसने संकोच मानकर—यही क्या कम है।

'लाल चिरञ्जीवी हो !' मैया ने अञ्चल फैलाकर विप्रपत्नियों एवं वृद्धा गोपियों का आशीर्वाद ग्रहण किया। सभी गोपियों की वाणी आज हृदय की गद्गद वाणी है और एक ही बात, एक ही शब्द—'चिरञ्जीवी हो !' कितना उल्लास है इस आशीर्वाद में और यह यशोदा का लाल—माता रोहिणी की गोद में यह घनसुन्दर शिशु—सबके नेत्रों ने जैसे कल्प-कल्पान्तर के पश्चात् आज ज्योति पायी है और उसमें भी एक ही दृश्य है।

बाबा कक्ष के द्वार पर आये—उपनन्दपत्नी ने धीरे से नवजात शिशु को बढ़ा दिया अपने ही करों पर लेकर। इतना अपार सौन्दर्य, इतना मधुरिम सौकुमार्य और यह मन्द हास्य ! किसी को उझकना नहीं पड़ा, किसी को झुकना या आगे बढ़ना नहीं पड़ा—जैसे वह शिशु प्रत्येक के सम्मुख ही है। सबके नेत्रों ने अपना परम धन देखा। ऋषिगण, मुनिमण्डली, विप्रवर्ग, गोपगण, सभी एक क्षण नीरव—निःशब्द, शान्त हो गये।

वह गूँजी गौओं की हुंकार, वह उठा वृषभों का गर्जन, वह सिंहों की गर्जना, मृगों की पुकार, मयूरों का केकानाद और पक्षियों का कोलाहल—तब क्या नन्दभवन के द्वार पर एकत्र इस पशु-पक्षियों के ठट्ठ ने भी इस छवि का वहीं से साक्षात् प्राप्त कर लिया ? यह क्या उनका जय-घोष है ? है तो यह ऐसा ही उमंग एवं उल्लास भरा।

× × ×

बाबा ने अपने नवजात कुमार का चन्द्रमुख देखा ! अब क्या उन्हें पता है कि वे कहाँ हैं, क्या करना है। उपनन्दजी ने सम्हाला, अभी उनको कालिन्दी में स्नान करना है। स्नान तो हुआ, पर कैसे हुआ—कौन कह सकता है। बाबा को तो उपनन्दपत्नी के करों पर वह नवनीत-सुकुमार नील-ज्योति सम्मुख ही दीखता है।

पूर्वाभिमुख दीप-स्थापन, भगवान् गणपति का पूजन, मातृकाओं का पूजन कब कैसे हुआ, बाबा को कुछ पता नहीं। बाबा को पता नहीं कि महर्षि ने स्वर्णदान का संकल्प करवाया है और कलश-स्थापन तथा नवग्रहपूजन होगया है। उनका शरीर तो जैसे यन्त्र की भाँति चेष्टा करता रहा है।

'कुमार को इसे अनामिका से चटा देना है ! यह स्वर्णपात्र में मधुमिश्रित गोघृत और महर्षि कहते हैं कि इसे चटाना है। इस नील सुन्दर के पतले अधरों में यह मधु लगाना है। पता नहीं अनामिका में मधु-घृत लेकर बाबा क्या सोचने लगे हैं। क्या सोचने लगे हैं वे। वे तो इस प्रकार उँगली मुख से स्पर्श करा रहे हैं, जैसे बहुत सावधान रहना आवश्यक हो इसमें भी। यह मधु और घृत—यह नन्द-नन्दन, इसने तो मुख खोल दिया है। बड़ा मीठा लगा है, अभी चाटना भी नहीं आता इसे तो।

बाबा, अब अपने इस इन्दीवरदलश्याम के कान में मन्त्र पढ़ें और उसके शरीर पर हाथ फेरें—ये क्या मन्त्र पढ़ सकेंगे ? यह गद्गद कण्ठ, यह कम्पित कर और रोमाञ्चित सर्वाङ्ग—महर्षि शाण्डिल्य की विधि ही कहाँ क्रिया पर अब निर्भर करती है। पाँच महर्षियों ने प्राणोच्चारण किया, भूमिस्पर्श हुआ और मैया ने मन्त्र श्रवण कर लिया; महर्षि शाण्डिल्य की भाव-विभोर वाणी ने झटपट पूर्ण कर दिया सब और यह भूखा भी तो होगा। अब इसे जननी के अङ्क में जाना चाहिये !

प्रसूतिकक्ष में उपनन्दपत्नी ने व्रजरानी की शय्या के नीचे जलपूर्ण कुम्भ रख दिया है। भूसंस्कार पाँचों ही हो चुके और अग्निदेव तो अब यहाँ प्रातः सायं तन्दुलकण एवं सर्षप की आहुति प्राप्त करेंगे ही। उन्हीं पर तो इस प्रसूतिगृह की रक्षा का भार है। उनकी निर्धूम लाल-लाल लपटें—वे स्पष्ट कहते हैं कि इस सौभाग्य को पाकर वे प्रमत्त हो ही नहीं सकते।

'श्री व्रजराज-कुमार की जय !' गगन में जयनाद हुआ गुरु-गम्भीर ध्वनि से। देववाद्य और अधिक स्वरित हुए और पुष्पों की राशि नन्द-प्राङ्गण में आयी।

'श्री नन्दलाल की जय !' बाहर बाजों पर एक साथ ध्वनि उठी और मागध, सूत, वन्दी जनों के जयघोष में प्राङ्गण के गोपों का कण्ठ एक हो गया।

विप्रों ने शङ्ख लगाये अधरों से और महर्षि शाण्डिल्य के साथ समस्त ऋषिवर्ग सस्वर स्वस्तिपाठ करने लगा। आज जैसे सभी ऋषि किसी-न-किसी प्रकार इस नन्दनन्दन के पौरोहित्य में कोई अंश प्राप्त कर ही लेना चाहते हैं। विधिपूर्वक जातकर्म-संस्कार हो चुका। कुलदेवता, ग्राम-देवता, इष्टदेवता, लोकपालादि ने प्राप्त कर लिये अपने भाग और पितरों के निमित्त नान्दीमुख-श्राद्ध तो होना ही था।

'मैं अकिञ्चन हूँ ! श्रीचरणों में मैं क्या निवेदित करूँ। यहाँ जो कुछ है, गोकुल का सम्पूर्ण वैभव तो श्रीचरणों का ही प्रसाद है।' बाबा ने अन्त में महर्षि शाण्डिल्य के पावन पदों में मस्तक रक्खा। एक लक्ष सवत्सा, सुपुष्टा, कपिला, स्वर्णरत्न शृङ्ग एवं खुरों से मण्डित, रत्नाभरण-भूषिता, गायें, तिलकी सात पर्वताकार ढेरियाँ, जो पूरी कौशेय वस्त्रों से आच्छादित करके रत्नों से ढक दी गयी हैं--यह दक्षिणा है आचार्य के लिये और व्रजेश्वर को अत्यन्त संकोच हो रहा है कैसे वे इस क्षुद्र दक्षिणा का उल्लेख करें।

महर्षि शाण्डिल्य तो गोकुल के आचार्य हैं, वे तो सदा से व्रजराज की श्रद्धापूत दक्षिणा स्वीकार करते आये हैं; पर आज तो उस कणाद, शिलाद, परमतापस, नितान्त निःस्पृह ऋषियों ने जो परिग्रह का नाम सुनकर भी वहाँ से प्रस्थान कर दिया करते हैं, नन्दराय की सहस्रशः धेनु, स्वर्ण, तिल, रत्नादि की दक्षिणा अत्यन्त उल्लास एवं आग्रहपूर्वक स्वीकार की। आज की दक्षिणा—तप जिसकी भावना से परिपूत होता है, कौन उसकी वाञ्छा न करे।

× × ×

जातकर्म पूर्ण हुआ। महर्षि को विदा होना है, विदा होना ही चाहिये। मुनिमण्डली, द्विजवृन्द—कैसे नेत्र हटाये जायँ इस सौन्दर्य राशि से। आशीर्वाद—आज ही तो वाणी को सफल होना है। युग-युग की तपस्या आज इस शिशु को आशीर्वाद देकर ही तो सार्थक हुई।

महर्षि ने प्रस्थान किया—जैसे अन्तर के आह्लाद पर जो एक मर्यादा का सूक्ष्म प्रतिबन्ध था, वह भी दूर हो गया ! गोपियों के मङ्गलगान के साथ वन्दियों का यशोगान, गोपों की जय-ध्वनि और यह गायों की हुंकृति और अब तो गोपों ने परस्पर एक दूसरे को गले लगाना, उछलना, नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया है। व्रजेश्वर के साथ गोपमण्डल अन्तःपुर से बाहर आया और संनन्दजी ने हँसते हुए व्रजपति को केसर-मिले दधि से स्नान करा दिया। यह चला क्रम—दुग्ध, दधि, केसर, नवनीत, हरिद्रा-मिला सुगन्धित तैल, और समीप कुछ न मिले तो जल ही सही—यह उमंग, यह उल्लास, यह रङ्गोत्सव—भला, कहीं होलिका का वसन्तोत्सव इसका स्वप्न भी देख सकता है ?

ये—ये महर्षिगण भी क्या बालोचित विनोद करते हैं ? ये महागम्भीर शाण्डिल्य जी—आज ये भी दधि मण्डित कर रहे हैं दूसरों के मुख पर; और विप्रों ने उन्हें तो पूरा स्नान ही करा दिया है। अन्ततः नभ के ये जनः-तपः के परम तापस, ये सप्तर्षि, ये कुमार-चतुष्टय—जब नभ से ही केसर-वृष्टि हो रही है, पुष्पों के पावन पराग का रङ्गोत्सव चल रहा है, तो महर्षि शाण्डिल्य का मण्डल कैसे गम्भीर बना रहे और गम्भीर ही तो है वह। गोपों का यह उल्लास, उपनन्दजी, जैसे प्रतिष्ठित वृद्ध का यह आनन्दमग्न दधिप्रक्षेप—मुनिमण्डली अपने इन यजमानों के स्तर से ही तो गम्भीर रह सकती है। अन्तर में जो अपार उमंग है—कोई कैसे उसे रोक रहे।

गोप तो आत्मविभोर हैं और विभोर तो हैं ये गायें, वृषभ, बछड़े तथा वनपशु तक। आज कहाँ कोई अपने को पहिचानता है। गोष्ठों से और वन से भी पशु भाग आये हैं। गोप पर-

स्पर हरिद्रा-तैल, दधि, नवनीत, दुग्ध उछाल रहे हैं और उनके मध्य ये गायें स्तनों से दुग्धधार वर्षा करती उछल रही हैं, नाच-सी रही हैं। बछड़े कूद रहे हैं। सभी हुंकार कर रहे हैं गोपों के करों के तैल, दधि आदि शरीर पर पड़ते हैं—जैसे गायों को अपार आनन्ददायी उपहार मिल रहा हो। सब पशु बार-बार समीप के गोप की ओर मुख करके हुँकृति करते हैं, कूदते हैं और बछड़े तो अपने मस्तक से ठेलते तक हैं। उनका उलाहना, आग्रह, अनुरोध—'हमारे ऊपर, हमारे ऊपर डालो यह तैल या दधि!' सब हरिद्रा-मिश्रित तैल से रँग गये हैं, दधि या नवनीत से अद्भुत हो गये हैं। बेचारे पक्षी--वे मँडराते हैं, किसी की पीठ पर बैठते हैं। इन पशुओं की भाँति वे कहाँ सराबोर हो पाते हैं। उन्हें तो कुछ सीकरों, कुछ बिन्दुओं से ही सन्तोष करना है।

गोपों का रङ्गोत्सव, पशुओं का आनन्दनृत्य, मयूरों की ठुमक, कपियों की उछल-कूद—किंतु भीतर प्राङ्गण में इससे कम आमोद नहीं है। कल कण्ठों का उन्मुक्त हास्य, आभूषणों की झंकृति और वही हरिद्रा-मिश्रित सुगन्धित तैल, दधि, नवनीत का परस्पर निक्षेप चल रहा है वहाँ भी। गोपियों ने आज माता रोहिणी को अपने मध्य इतना उल्लसित पाया है। वे समस्त गोकुल की सम्मान्या—आज घेर कर उनपर तैल, दधि, नवनीत पड़ रहे हैं और वे भी सबको पुरस्कृत करती जा रही हैं अपने करों के तैल से।

× × ×

किस महायज्ञ का अवभृथ-स्नान इतना पुण्यप्रद, मोदमय होगा? व्रजराज ने श्रीयमुनाजी में गोपों के साथ स्नान किया। गौओं को स्नान कराया गया। सम्पूर्ण गोष्ठ की गायों, वृषभों को अलंकृत किया व्रजेश्वर के आदेश से सेवकों ने और उन्हें रत्नजटित कौशेय वस्त्रों से आच्छादित किया गया। गोपों को श्रीनन्दराय ने स्वयं सबके उपयुक्त वस्त्र एवं आभूषणों से सज्जित किया। सबको चन्दन, पुष्पमाल्य से सम्मानित किया गया।

गोपियों ने भी माता रोहिणी के साथ स्नान किया। आज—आज इतने दिनों पर व्रजेश्वर ने स्वयं चुन-चुनकर आभूषण एवं वस्त्र भेजे सविका के हाथ। सेविका ने बड़ी नम्रता से प्रार्थना सुनायी व्रजपति की--'मुझे कृतार्थ करने के लिये इन्हें धारण करने की कृपा हो!' श्रीनन्दरायजी कितने सरल, कितने संकोची हैं। उन्होंने कितनी उदारतापूर्वक आश्रय दिया और सदा विनय की, संकोच की मूर्ति बने ही गृह में आये जब आना हुआ। कभी कुछ कहने, कोई आग्रह करने का संकल्प भी न किया होगा उन्होंने। आज उनका यह आग्रह--पर माता रोहिणी के हृदय में जो उल्लास आज है—वे तो सर्वथा ही बदल गयी हैं। व्रजेश्वर के इस आग्रह की कहाँ अपेक्षा थी उन्हें। नन्दरानी की गोद में लाल आया--वे तो स्वयं ही वस्त्राभूषण धारण करने जा रही थीं। व्रजेश्वर के उपहार—उन्होंने दासी से उमंगपूर्वक ले लिये। आज तो नन्दभवन उनका ही है। वे ही तो अधीश्वरी हैं यहाँ की। सभी गोपियों को उन्होंने स्वयं आग्रहपूर्वक वस्त्र दिये। सबको अलंकृत किया।

सूत, मागध, वन्दी, नट, नर्तक, सेवक आदि सब आशीर्वाद दे रहे हैं। सब परम संतुष्ट, परम प्रसन्न हैं। व्रजराज परम उदार हैं—पर इतना अपार उपहार, इतनी तो उन्हें कल्पना भी नहीं हुई थी। व्रजपति तो आज किसे क्या दे दें, यह स्वयं ही निर्णय नहीं कर पाते। कोई भी उनसे क्या माँगेगा—उनके उपहार तो इतने अमित हैं कि माँगने के बदले सबको मना ही करना है। किसी की अस्वीकृति आज वे सुनते कहाँ हैं। 'इतना और! यह रत्न आप के ही उपयुक्त है! ये कुछ उत्तम कपिला गायें और कुछ कृष्ण! कुछ अश्व, गज!' कोई कहाँ तक इन असीम श्रेणियों को स्वीकार कर सकता है।

× × ×

सुगन्धसिंचित मार्ग, तोरणसज्जित द्वार, पुष्पप्रपूजित ध्वजाओं पर लहराती पताकाएँ, पूरा गोकुल-पथ आज मुक्ता की झालरों से झूमता-सा है और कौशेय वितानों ने उसे आच्छादित कर दिया है। गृह-गृह से यह मङ्गलवाद्य की ध्वनि, ये सुसज्जित भवन, ये बने हुए द्वार-द्वार

के मङ्गल-चिह्न और यह आमोद-उत्साह—कौन बताये कि किस गृह में पुत्रोत्सव है। वह नन्दकुमार सभी का तो है। गोपों ने गोकुल के पथ को, गोष्ठों को त्वरापूर्वक सजा दिया और गोपियों ने गृहों को, गृहद्वारों को।

उपहार—ये अपार उपहार, कौन गणना करे इनकी। गोपियाँ, गोप, बालक तक जो यह राशि-राशि वस्तुएँ ला रहे हैं। द्वार पर व्रजेन्द्र और भवन में माता रोहिणी, दोनों व्यस्त हैं। सबके उपहार आदरपूर्वक स्वीकृत होते जा रहे हैं। सबके अनुरोध रक्षित होने ही चाहिये।

गोप गृहों से छकड़े भरे चलते हैं, गोपियाँ सेविकाओं की पङ्क्ति लेकर निकलती हैं—न्योछावर, दान आज गोकुल में हो क्या गया है। सबको अपनी वस्तुएँ लेनेवाले कहाँ मिल रहे हैं।

यह वन-गज कोई फल ले आया है और इन कपियों ने तो फलों की राशि एकत्रित कर दी है। ये केसरी—भला, इनसे अधिक उत्तम मणि कोई पा कहाँ सकता है। ये वन्य पशु—आज कौन अपने उपहार आवेदित करने में पीछे रहे। ये मृग, ये शशक, ये वाराह—ये सब भी तृण, ओषधि, मूल, कुछ-न-कुछ लाये ही हैं और इन्हें तो सीधे श्रीनन्दराय के सम्मुख ही अपनी भेंट आवेदित करनी है।

लोग ठीक ही कहते होंगे कि मणिधर सर्प मणिहीन होकर जीवित नहीं रहता; किंतु यह गोकुल है। आज यहाँ वह जीवनधन आया है। गोपों ने उल्लसित भाव से स्वर्णपात्रों में दुग्धोपहार दिये—फणधर सर्पों ने सीधे व्रजेश्वर के सम्मुख अपने पूरे फण उठाये और झुका दिये। व्रजपति के चारु चरण उन अमित महिमामयी अहिमणियों की किरणों से अलंकृत हो गये। अभिवादन और भेंट देकर जैसे मण्डल प्रसादरूप से दुग्धपान करने लगा हो। नाचते मयूरों को अपनी फण-मण्डली से चौंकाता, परिहास-सा करता कितनी उमंग लिये गया उनका दल।

सब से बड़ा भाग है पक्षियों का, आज उनके पक्ष सफल हुए। कितने फल, कितने रत्न उन्होंने लाकर राशि कर दी, कैसे अनुमान हो और उनका यह उद्योग तो जैसे विरमित ही नहीं होगा। वे तो आज थकते ही नहीं हैं। अन्ततः पशुओं से अधिक सौभाग्य भी तो मिला है उन्हें। नन्दभवन के प्राङ्गण से वह अपरूप रूप आज उनके ही दृगों का तो भाग बना है।

× × ×

'वह गूँजा गुरु-गम्भीर शङ्खनाद—वह आयी वाद्यध्वनि—यह तो वृषभानुजी का शङ्खघोष है। यह तुरही, भेरी, दुन्दुभी बजाती बरसाने की गोपमण्डली आयी!' गोपों ने शङ्ख लगाये अधरों से। गोकुल के वाद्य आगे बढ़े और आगे बढ़े श्रीव्रजेश्वर, श्रीवृषभानुजी को गोकुल से आगे पहुँचकर ही तो लेना चाहिये।

'श्रीनन्दराय के तनय हुआ!' वृषभानुजी ने सुना और आनन्द के आधिक्य में वे तो जैसे थे, वैसे ही बैठे रह गये कुछ क्षण।

'नन्दरायजी के पुत्र हुआ!' कितने उल्लास से उन्होंने आवृत्ति की कुछ क्षणों के पश्चात् और दूत के लिये वहाँ फिर अदेय क्या रह गया था।

'श्रीनन्दराय के पुत्र हुआ!' शङ्ख बजे, वाद्य गुञ्जित हुए। एक महामहोत्सव तो बरसाने में तत्काल ही प्रारम्भ हो गया। गोपों ने परस्पर दधि, नवनीत फेंकना प्रारम्भ किया और गोपियों ने मङ्गल-गान। जैसे बरसाने के अधिपति ने ही कुमार पाया हो—बरसाने में तो इससे भी कहीं अधिक ही उल्लास है।

'नन्दरानी ने लाल पाया!' श्रीकीर्तिदा के परमानन्द का वर्णन करे कोई। उन्होंने अपनी कुमारी को गोद में उठाकर हृदय से लगा लिया।

'गोकुल जाना है!—' गोपों ने छकड़े जोते, सामग्रियाँ भरनी प्रारम्भ कीं।

'मेरी कन्या का टीका जायगा' माता कीर्तिदा के प्रस्ताव ने तो आनन्द को द्विगुणित कर दिया। बधाई ही अकेले कहाँ देनी है बरसाने को! श्रीवृषभानुजी तो उस नन्दलाल को आज ही अपना बना लेंगे! भला, वह कब इनका नहीं था।

विप्रवर्ग ने अपनी अग्नियाँ उठाईं और वे छकड़ों पर प्रथम विराजमान हुए। टीके के लिये उनकी अनुमति मिल ही गयी है। गोपों ने यथासम्भव शीघ्रता की। गोपियों ने लाजा, अक्षत, दधि, दूर्वा, हरिद्रा, पुष्प की वृष्टि के द्वारा अपनी मङ्गलकामना भेजी उनके साथ और वृषभानुजी का जब टीका जा रहा है तब ऐसी दशा में श्रीकीर्तिदा के प्राङ्गण में आज उनको एकत्र होकर महोत्सव करना ही है।

श्री वृषभानुजी ने कितनी शीघ्रता की, कितनी तीव्र गति से आये उनके शतशः छकड़े। मध्याह्न होते-होते तो गोकुल की सीमा से उनका शङ्खनाद गूँज गया और अब तो गोकुल से वाद्य-ध्वनि बढ़ती आ रही है।

'आप यह क्या करते हैं!' श्री नन्दरायजी ने अपने चरणों की ओर झुकते बरसानाधीश्वर को दोनों भुजाओं में भर लिया।

'मैं इनके स्पर्श का अधिकार माँगने आया हूँ आज युवराज की न्योछावर में!' श्री वृषभानुजी ने अपना अभिप्राय संकेत में भी स्पष्ट कर दिया और वह तो स्पष्ट न करने पर भी सदा से सुनिश्चित है।

'वह तो है ही आपका पुत्र!' व्रजेश्वर की सरलता अतुलनीय ही रहेगी सर्वदा।

'महर्षि शाण्डिल्य को आप आमन्त्रित करें! मैं कुमार को अपना बना लेना चाहता हूँ उन की साक्षीमें!' श्रीवृषभानुजी आनन्द-गद्गद् हैं आज। 'और आप अपनी उस लली को सम्हालिये!'

वाद्यों के स्वर में अनुराग के दिव्य राग आये। दोनों दलों के गोपों ने परस्पर अङ्कमाल दी और परस्पर उनका परिहास, दधि-प्रक्षेप चलने लगा। गोकुल के गृहों से हरिद्रा, केसर की वृष्टि ने स्नान करा दिया सबको। गोपियों के कलकण्ठ में जन्म के गीतों के साथ टीके के प्रणय के मञ्जुल गीत आये।

× × ×

प्रातः से दूरस्थ ग्रामों, गोष्ठों से गोपों के समुदाय आते ही जा रहे हैं। उनके दल तो रात्रि तक आते रहेंगे। व्रज ने युवराज पाया है, आज गोपों के आनन्द, उल्लास की सीमा नहीं है। आज गृहों में, ग्रामों में, गोष्ठों में और पथ में--सब कहीं उत्सव, वाद्य, नृत्य की धूम है। गोकुल में गोपों के ये नूतन दल—जैसे पल-पल वह आनन्दाब्धि नवीन होता जा रहा है! बढ़ता जा रहा है।

गोपों की उमंग, उनके उपहार और व्रजपति द्वारा उनका सत्कार, उनको वस्त्राभूषणों से सजाना—चल रहा है अविराम और चल रहा है अविराम गोपियों का मङ्गलगान। वाद्यों का विविध मञ्जुल राग।

धरा—व्रजधरा की आज शोभा कोई कहे कैसे। प्रत्येक पाषाण ज्योतिर्मय मणि बन गया है। प्रत्येक तृण अपने अन्तर के असीम अनुराग से पत्र-पत्र में पुष्पित हो उठा है और तरु, लता—ये तो रसधाराओं में गिरि-निर्झरों की समता करके रहेंगे।

आज तो कपियों की किलक में भी कोकिला की हृदयस्पर्शी कुहक आ बैठी है! केसरी का उन्नाद जब घनगम्भीर मञ्जुघोष हो गया हो—कानन के कलकंठों की ध्वनि का वर्णन किस प्रकार हो।

धरा आज धन्य हुई है और नेत्र को उसपर अपने को ही जैसे न्योछावर कर देना है। देववाद्य, सुमनवृष्टि, अप्सराओं के नृत्य, गन्धर्वोंके गान विरमित भले न हों, धरणी में--व्रजमें गोकुल में यह जो महोत्सव चल रहा है, उसके सम्मुख अमरावती की इस उमंग की ओर कौन ध्यान दे।

× × ×

वह नवजलधर-सुन्दर, इन्दीवरदल श्याम—वह रहा मैया की गोद में। वे लाल-लाल नवनीतसुकुमार चरण, छोटे पतले अधर, घुँघराली काली अलकें और बार-बार खुलते, बंद होते अरुणाभ चपल लोचन। वह मन्द-मन्द मुस्कराता—जहाँ-तहाँ स्थिर एकटक देखता, अपने नन्हें करों की अरुणाई को मुट्ठियों में दबाये कभी-कभी हाथों को तनिक-तनिक उठाता नन्द-

नन्दन। वह वक्षपर स्वर्णिम रोमराजि, वह उठता-बैठता त्रिवलीसुन्दर उदर और वह कुसुम-कोमल ज्योतिर्मय श्रीअङ्ग।

वह है अपने अनुज को घेरकर बैठा-सा दाऊ। वह अपने चपल करों से बार-बार उसे छूने का प्रयत्न करता है। भला, इन गोपियों की बात कैसे समझ ले वह। वह कुछ कह रहा है—पता नहीं क्या कह रहा है। छोटे भाई से ही तो कुछ कह रहा है। कहाँ वह किसी दूसरे की ओर देखता है। ये क्यों उसे अपने इस छोटे भाई को छूने नहीं देतीं·····।

यह मैया—यह तो अपने लाल को ही एकटक देख रही है। नेत्र कहाँ तृप्त होते हैं। सबकी सम्हाल करनी है, सबका सत्कार करना है, माता रोहिणी आज अत्यन्त व्यस्त हैं; किंतु तनिक-तनिक देर में क्या वे केवल व्यवस्था देखने ही यहाँ झाँक जाती हैं? उनके नेत्र भी तो इस छवि पर ललक उठते हैं और व्यवस्था--भला, यहाँ की व्यवस्था क्या दासियों पर छोड़ी जा सकती है? जैसे उनका हृदय तो यहीं है—'कहीं कोई त्रुटि न हो। कोई दासी अग्नि में सुगन्धित धूप देना कुछ क्षण भूल न जाय। मङ्गल-प्रदीप कहीं कम्पित न हो। कहीं वायु किसी यवनिका के हटने से न आने लगा हो।' उन्हें कुछ-न-कुछ ध्यान में आ ही जाता है और उसे देख लेने स्वयं ही आना है उनको।

अग्निदेव इससे उपयुक्त स्थान कहाँ पावेंगे। वे तो अपनी लाल लपटों से अविचल हो गये हैं। सुपूजित शस्त्रों की प्रभा में जैसे उनके देवता ही आ विराजे हों। निष्कम्प, उज्ज्वल दीप-ज्योति मणियों का प्रकाश भले प्राप्त न करे, आज उसे अपने महनीय महत्त्वका बोध है। आज भला, उसे वायु कम्पित कर सकता है।

वह इस प्रकोष्ठका, व्रजका, विश्वका, हृदयों का अधिष्ठाता। वह धन्य लोचनों का शाश्वत सौभाग्य। वह श्रीनन्दरानी का अङ्कभूषण। उसने अपने पलक बंद कर लिये हैं। अब सम्भवतः वह सोयेगा। सोयेगा वह मैया की अङ्क-शय्या में अब।

# पूतना-परित्राण

*'अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।*
*लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥'*

—भागवत ३ । २ । २३

'कंस बड़ा क्रूर है, किसी को भी कष्ट देने में उसे पता नहीं क्यों प्रसन्नता होती है। यदु-वंशियों से—विशेषतः वृष्णिवंश के लोगों से तो उसने इधर सिंहासन पर बैठने के पश्चात से ही शत्रुता कर रक्खी है। नित्य कोई-न-कोई बहाने उन्हें उत्पीड़ित करने के दृढ़ता ही रहता है। उसका असुरों से सङ्ग है, अतः उसकी प्रवृत्ति भी आसुरी हो गयी है। सुना है—उसी के आदेश से उसके असुर अनुचर स्थान-स्थान पर तपोवनों का विनाश कर रहे हैं। मथुरा में कोई भी श्रौत यज्ञ सम्भव नहीं रहा है। ऐसी दशा में उसे ऐसा कोई तनिक भी अवसर नहीं देना चाहिये कि गोकुल में वह कोई उत्पात करने का मार्ग निकाले। गोकुल का यह अहोभाग्य—त्रिभुवनवन्दित ऋषि-गण यहाँ अतिथि हुए। कंस के अनुचरों द्वारा उत्पीड़ित आश्रमों के मुनिगण भी बहुत आ गये यहाँ। कंस को यह सब भला, अविदित कैसे रहेगा। वह गोकुल से प्रसन्न तो है नहीं, पर उसे कोई बहाना नहीं मिलना चाहिये। वार्षिक कर देने का यह समय हो गया है। ठीक समय पर ही कर दे देना उचित है। और सभी लोगों को चलकर स्वयं कर देना चाहिये। सेवकों द्वारा कर भिजवाने में 'राजा का अपमान किया गया' यह बहाना बनाने को अवकाश तो रहेगा ही।' श्रीवृषभानुजी ने श्रीव्रजपति को गम्भीरतापूर्वक सम्मति दी।

नन्दनन्दन की यह षष्ठी की पावन रात्रि—अब तो महोत्सव से श्रान्त गोप अर्धरात्रि के पश्चात् तनिक एकत्र बैठ गये हैं। अभी ही श्रीवृषभानुजी को समय मिला है और वे क्या कभी अपनी दीर्घदर्शिता से चूकते हैं! गोप श्रान्त हैं और उल्लास में हैं; किंतु अभी ही मथुरा को प्रस्थान करने की प्रस्तुति में सब लोग लगें तो ब्राह्ममुहूर्त में छकड़े चल सकेंगे। कंस को अवसर नहीं ही मिलना चाहिये।

गोप इस मन्त्रणा को कहाँ सुन पाते हैं। उनके सम्मुख तो अब भी आज की वह छटा है, उनका मन तो अभी उससे निकल ही नहीं पाता। महर्षि शाण्डिल्य ने आज निर्जल उपवास किया था। सायंकाल ही वे नन्दभवन पधारे। राशि-राशि तन्दुल की वेदिकाओं पर उन्होंने कुमार कार्तिक एवं षष्ठीदेवी को प्रतिष्ठित कराया। भगवान् गणपति तो प्रथम-पूज्य हैं ही। मातृका, नवग्रह, कलशादि का पूजन, वसोर्धारापात और कुमार कार्तिक तथा षष्ठी का पूजन भी होना ही था। श्रीनन्दरानी जब अपने लाल को अङ्क में लेकर व्रजराज के वामभाग में आसीन हुईं—महर्षि का मन्त्रपाठ, विप्रों का सामगान, जयघोष, सब स्नेहार्द्र हो उठे और जब दम्पति ने कर जोड़कर कुमार कार्तिक एवं षष्ठी देवी की स्तुति की—गोपों को लगता है कि अब भी वे षण्मुख मयूरासन देव-सेनापति एवं वे देवमाया अपनी तेजोमूर्ति में प्रत्यक्ष ही हैं।

श्रीनन्दनजी—ये व्रजराज के लघुभ्राता; व्रजराज क्या इनसे राहु-वेध को कहनेवाले थे। राहु-वेध—भला इस वैडूर्यद्वार में हल्दी, सुपारी, श्वेत सर्षप की पोटली न बाँधी जाय तो भी क्या—पर नन्दनजी ने जब धनुष-बाण उठा लिया तो पोटली बँधनी ही थी। वे अपना भाग कैसे छोड़ दें। उनका अमोघ लक्ष्य—उनसे अच्छा कौन राहु-वेध कर सकता था और उन्होंने तो उसी समय इसकी प्रस्तुति कर ली जब नन्हें युवराज के भूमि-स्पर्श की बात आयी। गोकुल का यह

स्पन्दित हृदय--इसका परम सुकुमार अङ्ग क्या भूस्पर्श के योग्य है--वे तो इसे देखने में समर्थ नहीं थे। धनुष-बाण लेना तो एक बहाना था। मैया और बाबा ही कहाँ अपने लाल को भूमि पर रखने में समर्थ थे। भू-स्पर्श का तो नाम हुआ और चलने लगी भगवान् आदित्य एवं चन्द्रदेव की स्तुति। पर नन्दनजी तो जान-बूझकर हटे सो हटे और आये ही तब जब व्रजेन्द्र आचार्य-पूजन कर चुके। उन्होंने ज्या चढ़ायी और गगनभेदी घण्टानाद के मध्य पोटली चिछड़े उड़ गयी। व्रजरानी ने आज अपने देवर के धनुप और बाण की पूजा की थी। उनके मङ्गल-करों की अर्चा की आशा में ही वह धनुष जो आया था।

'यह भी कोई बात है, मैया, मैं अगुरु लाता हूँ, तू यह धूप तो रोक दे!' मधुमङ्गल बालक होकर भी ठीक कहता है। सर्षप, सैन्धव नमक तथा निम्बपत्र की यह धूनी—क्या हुआ जो इसमें घृत पड़ा है। इससे भी आगे मरोड़फल, केंचुल, सम्हालूबीज, बच, कूट, सरसों और विल्वपत्र की धूनी, नन्दनन्दन के लिये कितना तीक्ष्ण होगा यह धूम! ओषधियों की यह धूनी आवश्यक होगी--हो सकती है; उपनन्दजी ने इसकी व्यवस्था की है; किंतु अगुरु-धूम्र इसको अपनी मधुर मादक सुरभि में आत्मसात् करले--यह तो होना ही चाहिये।

'मैया बड़ी अच्छी है, देखो न! यह पूओं और बड़ियों की माला! इसमें बड़े-बड़े मोदकों की माला और लटकाओ! भला, मोदकों के बिना क्या पूए भले लगते हैं!' मधुमङ्गल तो गोपियों को समझाने लगा है कि सब अपने-अपने द्वार पर इसी प्रकार नित्य पूए और मोदकों की मालाएँ लटकाया करें; बड़ियों की माला न भी लटकायी जाय तो कोई बात नहीं। 'लेकिन यह काला-काला अजा-पुत्र (बकरा) क्यों यहाँ बाँध दिया है? भगा दो यहाँ से इसे और यह द्वार से बाहर मूसल एवं.....!'गोपियाँ हँस पड़ीं यह देखकर कि शिशु-कोष्ठ-रक्षक सशस्त्र सेवक को देखकर मधुमङ्गल तनिक रुका बोलते-बोलते और यह नटखट अँगूठा दिखाकर, मुख बनाकर उसे चिढ़ाने लगा। संकेतों से ही मटकने लगा, मानो कहता हो—'महोदय, यहाँ से चलते बनिये! यह मैया का घर है। ये पुए मेरे हैं और बहुत लालच हो तो इन बड़ियों को मैं तुम्हें दे दूँगा! मुझे अपने शस्त्र दिखाओगे तो यह अँगूठा बतादूँगा!'

'नीलमणि मैया के गोद में सो गया है। इसके कमलनेत्र बंद हो गये हैं और व्रजेन्द्र विप्रों को.....।' गोपों के चित्त में तो अब भी यह प्रत्यक्ष ही है। वे तो अब भी देख रहे हैं यही सब। कंस--बड़ा क्रूर है।' सब चौंके--'कंस कहाँ आया!' यह तो श्रीवृषभानुजी कुछ कह रहे हैं। कंस को कर देना है!

यह जो व्रजराज-कुमार का जन्मोत्सव चल रहा है, यह दो-एक दिन में तो समाप्त होने से रहा। किन्तु इस उल्लास में कहीं क्रूर कंस बाधा न दे। उसे कर देने का समय आ गया—इसका अतिवर्तन उचित नहीं।

'सुना है श्रीवसुदेवजी कारागार से मुक्त हो गये हैं। मेरे वे परम सुहृद् बन्धु—वर्षों तक उन्होंने बंदीगृह का अपार कष्ट भोगा। उनसे मिलने को मेरा हृदय स्वयं आतुर है। मैं ही उन्हें पुत्र-जन्म का समाचार दूँगा। कितने प्रसन्न होंगे वे!' श्रीनन्दराय ने मथुरा जाने में दूसरा ही लाभ देख लिया।

'पहिले राजा का कर दिया जाना चाहिये! कंस को यह नहीं लगना चाहिये कि गोकुल ने उसकी अपेक्षा वसुदेवजी को अधिक सम्मानित किया है।' श्रीवृषभानुजी ने सावधान किया! वे ही तो ऐसे अवसरों पर सदा व्रजपति के मार्गदर्शक बनते हैं।

गोपों ने छकड़े जोते; दधि, दुग्ध, नवनीत, घृत के कुम्भ भरे गये उनमें। गोपों की जब गौ एवं गोरस ही सम्पत्ति हैं, तब वे इन्हीं को तो वार्षिक-कर के रूप में देंगे। गोरस से भरे शतशः छकड़े मथुरा की ओर प्रस्तुत हुए।

'समस्त विप्रवर्ग की अपने प्राणों से अधिक रक्षा की जाय! महर्षि शाण्डिल्य के आश्रम में, उनके परम पूज्य अतिथियों के समीप कोई उत्पात न होने पाये।' व्रजेश्वर ने रक्षकों को नियुक्त

किया गोकुल की रक्षा के लिये। सशस्त्र, सबल, विश्वस्त, सावधान सेवकों की सम्यक् व्यवस्था हुई। प्रत्येक गृह, प्रत्येक गोष्ठ रक्षित रहना चाहिये; किंतु आजकल विप्रों के यज्ञ तथा ऋषि-आश्रमों में असुरों के अधिक उपद्रव होने लगे हैं; इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। मायावी असुर पता नहीं कब, किस रूप में, कैसे आ पहुँचें। रक्षा की अत्यधिक व्यवस्था करके स्वयं व्रजेशने सब देखा और सबको बार-बार सावधान किया।

× × ×

'श्रीनन्दरायजी मथुरा आये हैं राज्य का कर देने !' वसुदेवजी को सेवकों ने समाचार दे दिया।

'मेरे भाई--आज वर्षों के पश्चात् मैं उनके दर्शन करूँगा !' वसुदेबजी के आनन्द की सीमा नहीं। उनका भवन सज्जित होने लगा। बिना आदेश के ही सेवकों ने स्वागत की व्यवस्था प्रारम्भ कर दी।

'ऐसे मेरे भाग्य कहाँ हैं !' वसुदेवजी ने सेवकों को रोका। कोई बड़ी व्यवस्था--भव्य स्वागत का यह अवसर नहीं। किसी प्रकार कुछ क्षणों को मिल लिया जाय, यही बहुत है। पता नहीं मथुरानरेश कंस कब किस कारण संदेह करने लगें। इस संदेह का भय न होता--वसुदेवजी क्या इस प्रकार प्रतीक्षा करते चुपचाप बैठ कर। वे सुनते ही मिलने आतुर पदों से चले गये होते। भाई—भाई नन्दराय आ रहे हैं वर्षों पर और उनका साधारण स्वागत भी शक्य नहीं। इस विवशता--इस व्यथा को दूसरा कैसे समझेगा। श्रीदेवकीजी--क्या-क्या मनमें आया और चला गया। क्या-क्या जानना है, क्या-क्या पूछना है, कम-से-कम रोहिणीजी का, उनके पुत्र का और..... नहीं, नहीं—इस ओर से आगे की बात तो मनमें भी नहीं लानी है; किंतु यह भी क्या पूछा जा सकेगा !

'श्रीनन्दराय आये हैं !' कितनी उमंग, कितना आनन्द उठता है और दूसरे ही क्षण जैसे वह पिस उठता है। 'श्रीव्रजपति गोपों के साथ मथुरा आ गये हैं। गोकुल सूना है उनसे। कंसका वह आदेश—अपने असुर अनुचरों में उसकी वह मन्त्रणा--दस दिन और उससे कम के शिशुओं को मार देने का वह प्रस्ताव--नारायण मङ्गल करें !' वसुदेवजी का हृदय जैसे मसल उठता है। 'दौड़ जायँ, दौड़ जायँ व्रजपति के समीप और कह दें, आप लौटिये--लौटिये शीघ्र गोकुल !'

'श्रीनन्दरायजी आ रहे हैं !' सेवकों ने दौड़कर समाचार दिया। श्रीव्रजपति को भला, राजसदन में क्यों विलम्ब होना था। कर दिया, नरेश को अभिवादन किया और विदा हुए। न कंस को उनसे कोई प्रश्न करना या सहानुभूति प्रकट करनी थी और न उन्हें कंस से कोई प्रयोजन था। कंस को अपने सिंहासन का गर्व है। वह इन गोपों से बोलकर अपने को तुच्छ नहीं सिद्ध करना चाहता। मथुराका राज्य-सिंहासन सदासे गोकुल का सम्मान करता आया, यह कोई आदर्श प्रथा नहीं कंस की दृष्टि में। श्रीव्रजपति का हृदय तो और कहीं है। वे स्वयं चाहते हैं कि नरेश उनसे कुछ न पूछें, कुछ न कहें। उन्हें दो क्षण भी रोका न जाय। कंस का व्यवहार उनके लिये तो अनुकूल ही जान पड़ा। सिंहासन को अभिवादन किया और लौट पड़े। उन्हें तो शीघ्रता है वसुदेवजी से मिलने की।

'श्रीनन्दरायजी आ रहे हैं !' वसुदेवजी ने सुना और दौड़ पड़े। वस्त्र अस्त व्यस्त गिरा, उत्तरीय मार्ग में भूमि पर लोटता चला--वे दौड़े, दौड़े—जैसे कोई रङ्क निधि लूटने दौड़ा हो। वे दौड़े श्रीनन्दरायजी, देखते ही दौड़े वे दोनों बाहु फैला कर और दोनों ने एक दूसरे को हृदय से लगा लिया, लगाये रहे। शरीर रोमाञ्चित हो गया, नेत्रों से अश्रु गिरते रहे, दोनों अङ्कमाल दिये खड़े रहे। बड़ी कठिनता से कुछ धैर्य आया। वसुदेवजी ने सभी सम्मान्य गोपों को गले लगाया। आसन, अर्घ्य, पाद्य—भला, ऐसे प्राणप्रिय अभ्यागत क्या बार-बार प्राप्त होते हैं।

'आप स्वस्थ तो हैं !' कण्ठ भर आया व्रजेश का यह प्रश्न करते हुए भी। जो वर्षों से

बन्दी रहा हो, उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा तो स्वाभाविक है; पर और पूछा भी क्या जाय। कंस ने और क्या पूछने योग्य यहाँ शेष रहने दिया है।

'भाई, आज मेरा परम सौभाग्य है जो मैंने आपका दर्शन पाया। मेरे लिये तो आपका परमप्रिय दर्शन अत्यन्त दुर्लभ ही था।' वसुदेवजी भला, उस प्रश्न का क्या उत्तर दें, जिसके पूछने में भी क्लेश हुआ है और उनके पास समय भी कहाँ है। उनका हृदय तो व्याकुल हो रहा है कुछ सुनने को—अपने उन अन्तर के मूर्तिमान् आह्लाद शिशुओं के सम्बन्ध में कुछ सुनने को। उन्होंने सीधे ही विषय को लिया—यह अत्यन्त सौभाग्य का फल है कि इस प्रौढ़ावस्था में जब कि सन्तान की आशा जा चुकी थी, आपने सन्तति प्राप्त की।' सन्तति—श्रीनन्दराय की सन्तति, पर योगमाया जो नहीं चाहती कि वसुदेवजी इस समय उस कन्या का स्मरण करें। वे तो पूछते ही जा रहे हैं—"बन्धु! तुम्हारा वह पुत्र सकुशल तो है? तुम्हारे पशु नीरोग तो हैं? तुम्हारा वह बृहद्वन फल-पुष्प एवं तृणों से पूर्ण तो है? वहाँ पर्याप्त जल तो रहता है? क्या कहूँ, भाग्य बड़ा बलवान् है। प्रियजन भी भाग्य की प्रेरणा से प्रवाह में पड़े तिनकों की भाँति सदा एकत्र नहीं रह पाते। भाई, भाग्य के कारण तुम्हारे यहाँ जो मेरा पुत्र है, वह प्रसन्न तो है? मैं जानता हूँ कि तुम्हारा उसपर पुत्र से भी अधिक स्नेह है। तुम उसे हृदय से प्यार करते हो और अब तो वह तुम्हें अपना पिता ही मानता होगा!' कण्ठ अवरुद्ध हो गया और नेत्रों से टप-टप बिन्दु गिरने लगे।

श्रीव्रजपति ने भी अपने नेत्र पोंछे और अपने को सम्हाला। विषयान्तर करना ही एकमात्र उपाय है इस समय। भला, किस योग्य हैं वे! यह तो वसुदेवजी की कृपा है, श्रीरोहिणीजी का अनुग्रह है कि वे गोकुल में हैं। कहाँ सेवा हो सकती है उनकी। व्रजेश बहुत सङ्कुचित हुए इस चर्चा से और उन्होंने बड़े खिन्न कण्ठ से दूसरी ही बात कही—'बहुत ही दुःख की बात है कि कंस ने देवकी से उत्पन्न हुए आपके बहुत-से पुत्र मार दिये। अन्त में एक कन्या बची भी तो वह सशरीर स्वर्ग चली गयी। अवश्य ही मनुष्य का जीवन भाग्य पर ही निर्भर है और भाग्य ही बलवान् है। जो प्रारब्ध के तत्व को जान लेते हैं, वे फिर मोहित नहीं होते। आपतो परम ज्ञानी हैं, भाग्य के खेल को जानते हैं; अतः आप को शोक नहीं करना चाहिये!'

'कंस—देवकी के बहुत-से पुत्र कंस ने मार दिये! एक लड़की बची, वह भी स्वर्ग चली गयी! उस लड़की ने कहा.....कंस ने अपने असुर अनुचरों से मन्त्रणा की.....।' श्री वसुदेवजी ने नहीं सुना कि श्रीनन्दराय उन्हें आश्वासन दे रहे हैं। उनके हृदय में खलबली चल रही है। उन्होंने इस प्रकार देखा नन्दरायजी की ओर, जैसे अब तक की कोई बात हुई ही नहीं। सर्वथा बदले हुए स्वर में—बड़े आग्रहपूर्ण स्वर में वे बोले—'व्रजेश्वर, आपने वार्षिक कर दे दिया और राजा से मिल चुके। मुझसे भी भेंट हो ही गयी, अब आपको यहाँ बहुत देर नहीं रुकना चाहिये! मुझे लगता है कि गोकुल में कुछ उत्पात हैं!'

'गोकुल में उत्पात हैं!' श्रीव्रजपति और सब गोप चौंके। ये वसुदेवजी अकारण भला, ऐसी बात कह सकते हैं। ये तो बड़ी गम्भीरता से कह रहे हैं। सब-के-सब उठ खड़े हुए। छकड़े शीघ्र जोते गये और श्रीनन्दराय ने अनुमति ली—अब मुझे आज्ञा मिले!'

'आप शीघ्र गोकुल पहुँचें!' वसुदेवजी ने दूर तक पहुँचाने का कोई उपक्रम नहीं किया। पहुँचाने के प्रयत्न में देर होगी और इन लोगों को तो जितनी शीघ्रता से हो जाना चाहिये। वे खड़े रहे, खड़े ही रहे उन छकड़ों के मार्ग की ओर देखते।

× × ×

'दस दिन और उससे कम के नवजात शिशुओं को मार देना है!' पूतना ने स्वयं ही प्रस्ताव किया था और उसे मथुरानरेश कंस ने इसका आदेश दे दिया। वह प्रकृति से ही बाल-हत्यारिणी राक्षसी—उसे तो शिशुहत्या में सुख मिलता है। वह घोर मायावकी इच्छानुसार चाहे जहाँ उड़ती फिरती है। कोई नवजात शिशु दिखायी पड़ा और झपटकर उठाया उसने, जैसे कोई

बड़ा बगुला नन्ही मछली निगल जाता हो। नगरों में, ग्रामों में, व्रजों में—भला, उसे कोई कहीं रोक कैसे सकता है। वह रक्ताशना—बाल-भक्षिणी, उसने हाहाकार मचा दिया है देश में। उसके भय से लोग नवजात बालकों को नित्य भवन में ही रखने लगे हैं। खुले गगन के नीचे कोई शिशु दिखायी पड़ा और पूतना ने झपट्टा मारा।

यह व्रज—यह पूरा नन्दव्रज, आज पूरा सप्ताह हो रहा है, पूतना इधर क्यों नहीं आयी? मथुरा की दूसरी दिशाएँ तो उसने छान डाली हैं। इसके भय से सदा सब कहीं लोग सशङ्क रहने लगे हैं। लेकिन यह व्रज—मथुरा के इतने समीप का यह गोकुल और यहाँ तो इन दिनों अनेक शिशु आये हैं। गोकुल में पुत्रोत्सव के जो वाद्य बज रहे हैं, वे तो मथुरा तक सुनायी पड़ते हैं। पूतना क्या इन्हें सुनती नहीं? लेकिन वह क्या करे; पता नहीं क्यों जब भी वह गोकुल की ओर मुख करती है, उसके पक्ष भारी हो जाते हैं। कोई उसके पंखों को बलात् जैसे मरोड़ देता हो। इस गोकुल पर, इस व्रजधरा के ऊपर उड़ा जो नहीं जाता उससे!

'व्रज में यह उमंग, यह उत्सव—ये तो पुत्रोत्सव के ही वाद्य हैं! सुना है नन्दराय के पुत्र हुआ है! कैसा है वह पुत्र?' वह आकाशचारिणी घोर राक्षसी—व्रज में तो वह उड़कर जा नहीं पाती। उसे जाना तो है, जाना ही है। महाराज का आदेश है कि दस दिन से कम का कोई बालक बचने न पाये। आकाश से न सही, वह पैदल ही जायगी। उसने सोचा और अपनी आसुरी माया से स्त्री-वेश धारण किया व्रजधरा पर गगन से नीचे उतरकर। अपने माया-रूप पर वह स्वयं अट्टहास करके हँसी। कौन उसे पहिचान सकता है। उसे अब रोकने का साहस भी कौन करेगा। उस दुष्टा ने तीक्ष्णतम हालाहल विष का अपने स्तनों पर इस प्रकार लेप कर लिया, जैसे उसने कस्तूरी का अङ्गराग लगाया हो। 'एक बार—केवल एक बार मुख लगा और बस!' अपनी पैशाचिक योजना पर उसे मन-ही-मन आनन्द आ रहा था।

× × × ×

श्रीनन्दनन्दन आज सात दिन का हो गया। कल ही तो षष्ठीदेवी का पूजन हुआ है। कल ही तो श्रीनन्दरानी ने प्रातः अपने लाल के साथ प्रसूति-कक्ष छोड़कर स्नान किया है। श्रीनन्द-राय के उल्लास का क्या पार था, पार तो नहीं था गोपों के आनन्द एवं उल्लास का। महर्षि शाण्डिल्य और मुनिमण्डली—वह अनुपम लावण्यसिन्धु, उसकी वह एक झलक, जन्म के पश्चात् से तृषित नेत्रों ने एक-एक पल सहस्र-सहस्र कल्प की भाँति व्यतीत किये। ६ दिन—ब्रह्मा के ६ दिन भी इनसे छोटे ही होंगे, सबके नेत्र तृप्त हुए। उस अभिनव-स्नात नव-नील-नीरद शिशु को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लेकिन यह सब तो कल की बात है। कल सायंकाल ही श्रीवृषभानु-जीने कंसको कर देने के सम्बन्ध में सबको सावधान किया और आज तो व्रजपति प्रातः काल में ही गये हैं मथुरा को। सूर्यनारायण की प्रथम किरणों ने मथुरा के तट पर उनका अर्घ्य पाया होगा। अवश्य वे तब तक छकड़ों को नौकाओं द्वारा पार करा चुके होंगे। आज गोकुल में गोपियों को कहीं आने-जाने में संकोच नहीं और पुरुषों के न होने से घर का कार्य भी नहीं-सा ही है। व्रजपति ने जो इन रक्षकों को सावधान कर दिया है, ये सब तो शस्त्र-सज्ज एक-एक गृह के चतुर्दिक् सावधानी से घूम रहे हैं आज। भला, इनके इस सावधान रक्षण में कौन समर्थ है जो इधर झाँकने का साहस भी करे। गोपियों को घर की चिन्ता नहीं और घर में पुरुष न हों तो स्त्रियाँ अपने लिये क्या भोजन बनाने लगी हैं। नन्दभवन में वह जो नन्दरानी का कुसुम-सुकुमार लाल है—प्राण तो सदा उसके समीप ही रहते हैं, मन एक क्षण के लिये उससे हटता नहीं। उससे पृथक् होकर अपने-अपने घरों में वे कैसे आती हैं, उन्हीं को उस विवशता का अनुभव है। प्रतिपल जी चाहता है—नन्दभवन दौड़ जायँ। एक बार देख आयें उस उज्ज्वल नीलमणि को। आज अवकाश है—आज पूरा अव-काश है। गोपों के छकड़े मथुरा की ओर चले और गोपियों के पद नन्द-भवन की ओर। घर में कुछ कार्य भी है—कुछ आवश्यकता भी है, किसे यह सब सोचने का अवकाश है।

नन्दरानी के लाल को स्वयं रोहिणीजी ने सुगन्धित उबटन लगाया है और फिर उसके सुस्निग्ध सुकुमार अङ्गों में दिव्यौषधियों से बना सुगन्धित तेल मला है। घुँघराली काली अलकें स्निग्ध हो गयी हैं। अरुणारे दीर्घ दृग काजल लगकर और मनोहारी हो गये हैं और उसके विशाल उन्नत भाल पर यह कज्जल का बिन्दु—जैसे पूर्णचन्द्रमा पर कोई भ्रमरशिशु आ बैठा हो और फिर यह सुधा-स्वाद वह किस सरोज में पाये। वह वहीं आनन्द मग्न बेसुध स्थिर हो गया है। नन्दरानी ने अवश्य दूध पिलाकर ही पलने में सुलाया है। यह कितना प्रसन्न, कितना मग्न अपने अर्ध-मुकुलित कर-कमल और अरुण मृदुल चरण इधर-उधर फेंक रहा है। यह मणिमय स्वर्ण पलने में दुग्धफेन-कोमल उज्ज्वल आस्तरण पर नन्हा सुकुमार नीलमणि—इस चञ्चल ने अपने चरणों से मार-मार कर ऊपर का झीना कौशेय पीतपट चरणों के नीचे कर दिया है और देख रहा है पलने में लगे रत्नशुक की ओर। बार-बार किलकता नन्हे हाथों को उठाने का प्रयत्न कर रहा है।

मैया, वह तो अपने इस नीलमणि का कमल मुख देखते-देखते ही थकित हो रही है। यह दाऊ—यह जो पलना पकड़कर खड़ा हो गया है। यह अपने भाई को देखने लगा है और अब तो नीलमणि भी अग्रज को ही देखकर किलक रहा है। यह दाऊ तो छोटे भाई के पास से कभी हटना ही नहीं चाहता। इसे कौन हटाये; इसको आग्रहपूर्वक हटाते ही नीलमणि रोने लगेगा, यह तो अब सब की समझ में आ गया है।

गोपियाँ आयीं और पलने के समीप कुछ खड़ी हो गयीं, कुछ बैठ गयीं। कौन किससे पूछे, कौन क्या कहे? यहाँ तो एक ही दशा है, एक ही कार्य है। इस यशोदारानी के पलने में यह जो इन्दीवराभ नन्हा चपल किलक रहा है, इसने सभी हृदयों पर एकाधिकार जो कर लिया है। यह पलने में तो यहाँ है न, मन में, प्राण में, अन्तर में सभी कहीं तो यही किलक रहा है।

× × × ×

बेचारी पूतना—भला, आज उसे गोकुल के किस घरमें कोई शिशु मिलना है? आज वह किस घर में प्रवेश करने का साहस करे? ये रक्षक—ये तो इतने सावधान हैं कि इनकी दृष्टि से बचकर तो वह किसी पक्षी तक के निकल जाने की आशा नहीं देखती। ये सब गृह नीरव हैं। इन में से तनिक भी शब्द आता नहीं जान पड़ता। अधिकांश के तो बहिर्द्वार ही बंद हैं। गृह-द्वार खुले हों या बंद हों, जब किसी गृह में कोई आता-जाता नहीं दीखता तो वह कैसे गृह में प्रवेश करे। पता नहीं क्या बात है कि ये गृह इस प्रकार सुनसान हैं। कहीं वह किसी गृह में जाने लगे और रक्षक कुछ पूछ बैठें? ये रक्षक उसे बड़े कुतूहल से देख रहे हैं। उससे भूल हो गयी—उसने जो नारी-वेश बनाया, वह गोपनारी का वेश नहीं है। अब तो जो हो गया, वही ठीक है। वह यहाँ से परिचित नहीं। रक्षक कुछ पूछ लें तो कोई उत्तर नहीं उसके पास। उसके मनमें भी कम भय या शंका नहीं। पता नहीं क्यों आज—जीवन में आज ही वह हतप्रभ हो रही है। मार्ग से—सीधे मार्ग से ही वह चलती रही।

'यह विशाल भवन—यही नन्दराय का भवन है। इसमें से तो बहुत सी सेवक-सेविकायें आती-जाती हैं। यहाँ किसी के प्रवेश के संबन्ध में कोई कुछ पूछता भी नहीं। भीतर से आनन्द-कोलाहल की ध्वनि भी आ रही है। गोपियाँ कैसी प्रमुदित कण्ठ से मङ्गलगान कर रही हैं। अच्छा-देखती हूँ यह मङ्गलगान।' राक्षसी ने मन-ही-मन संकल्प किया। कुछ सेविकाओं ने उसे करबद्ध प्रणाम किया। उसे यह ठीक अवसर प्रतीत हुआ भवन में प्रवेश करने का।

परम सुन्दर स्वरूप, गौर वर्ण, विशाल लोचन, अङ्ग-अङ्ग जैसे शोभा से ही निर्मित हुए हों। बहुमूल्य रत्नजटित कौशेय वस्त्र एवं उत्तरीय, अङ्ग-अङ्ग में जगमग करते आभूषण, कानों में महा माणिक्य के कुण्डल और मल्लिका के कलामय गुम्फन से सुसज्जित केशपाश। पूतना ने अपनी आसुरी माया से जो अपना यह नारी-वेश बना लिया है—इसके सौन्दर्य की तुलना धरापर तो प्राप्त होने से रही। इसमें एक ओछापन, एक अन्तर्निहित रूक्षता, एक अव्यक्त कठोरता भी है सही; पर

वह इस चमक-दमक में कहाँ लक्षित हो सकती है। मन्द गयंद-गति से चलती, कङ्कण, किङ्किणी एवं नूपुरों के तालबद्ध क्वणन से दिशाओं को संगीतमय करती, ताम्बूल-राग-रञ्जित पतले अधरों में स्मित एवं दीर्घ कज्जल-मञ्जु दृगों में इधर-उधर चपल कटाक्ष सम्हाले, सम्पूर्ण गोपियों के चित्त को अपनी शोभा से मुग्ध करती, अपने दक्षिण कर के प्रफुल्ल लीला-कमल को तनिक-तनिक घुमाती यह आयी पूतना नन्द-प्राङ्गण में।

'कौन है यह ?' गोपियों ने संभ्रमपूर्वक मार्ग दे दिया। इतना लावण्य, इतना ऐश्वर्य और यह सुधास्मित, यह संकोचहीन भाव—गोपियों ने मन-ही-मन सोचा—ये कोई मानवी तो जान नहीं पड़तीं। यह लीलाकमल—कहीं ये साक्षात् कमलोद्भवा भगवती लक्ष्मी तो नहीं। क्या ठिकाना कि यह नन्दनन्दन नारायण ही हो। यह श्रीनारायण के समान ही तो इन्दीवर-सुन्दर है। ये महालक्ष्मी यहाँ अपने पति के दर्शन करने आयी होंगी।' भोली गोपियों के मनमें ही कोई छल-कपट नहीं तो वे किसी के छल की कल्पना ही कैसे करें। उन्होंने तो श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाया, जब पूतना उनके मध्य से बढ़ने लगी।

'नीलमणि सोयेगा! मैया ने पता नहीं किससे क्या कहने के लिये मुख फेरा था पलने से दूसरी ओर और पूतना पर दृष्टि पड़ी। 'ये तो कोई देवी आ रही हैं!' वह भी झटपट उठकर आदरपूर्वक खड़ी हो गयी। माता रोहिणी भी तो उसके समीप ही खड़ी हैं।

'यह श्याम नेत्र क्यों बंद कर रहा है!' दाऊ ने भी अपने अनुज को पलकें गिराते देख मुख मोड़कर देखा। पता नहीं क्या देखा उन्होंने। पूतना के मुख की ओर उनके नेत्र दो क्षण स्थिर रहे और पलना छोड़कर धीरे से वे बैठ गये भूमि पर। मदमत्त पूतना झूमती, मुस्कराती चली आ रही है। उसकी दृष्टि पलने के उस परम भूषण की ओर है। किसे भला, यह अस्वाभाविक लगे। यशोदा का यह लाल—एक बार नेत्र उसपर लगकर फिर हट कैसे सकते हैं। लेकिन दाऊ कैसे देख रहे हैं पूतना की ओर। उनके दीर्घ दृगों में तो न कुतूहल दीखता, न रोष और न उपेक्षा। पूतना यदि इन लोचनों की ओर एक बार देख लेती। ये तो जैसे कह रहे हों—'मूर्खे, क्यों मरने आती है! भाग भी जा!' इनमें तो करुणा का ही अपार सागर उमड़ता रहता है।

यह नन्दनन्दन—यह चञ्चल अभी तो हाथ-पैर उछालने का प्रयत्न कर रहा था। अभी तो अग्रज की ओर देख-देखकर किलक रहा था और अभी इसे निद्रा आ गयी। इसने भी तो पूतना की ओर देखा है अभी—अभी उसी की ओर देखकर तो इसने नेत्र बंद किये हैं। अब इसकी ओर देखना नहीं है तो आपको निद्रा आने लगी। देखना तो नहीं ही है, देखकर फिर कठोरता कैसे की जा सकेगी।

पूतना तो सीधे पलने के पास आ गयी। उसे और कहीं जैसे देखना ही अब नहीं है। झुककर उसने इस प्रकार उस नीलमणि को उठाया, जैसे बड़े प्रेम से उठा रही हो। मैया ने, माता रोहिणी ने देखा, वे समीप ही तो खड़ी हैं। यह उनके पास ही तो आकर रुकी है। लेकिन मैया कैसे रोक दे। भला, कहीं ये देवी अप्रसन्न हो जायँ। कोई देव-शक्ति मूर्तिमान् होकर उनके लाल पर कृपा करने आयी है, यह तो सौभाग्य की बात है। लेकिन यह क्या—ये देवी मैया के इस हृदय-धन को क्या अपना स्तनपान करायेंगी? यह क्या खड़े-खड़े ही स्तनपान करायेंगी? पूतना ने तो शिशु के मुख को अपने स्तनाग्र से लगा भी दिया। 'भला, देवी को इस मर्त्यलोक में अधिक रुकना कैसे रुचिकर हो सकता है। वे शीघ्रता में तो होंगी ही। अनुग्रह के कारण ही वे अपना अमृतमय दूध इस नीलमणि को पिलाने आयी हैं!' मैया के ममतामय मातृ-हृदय में कोई दुर्भावना नहीं आयी।

× × × ×

'अरे, छोड़! छोड़!! बाप रे, छोड़ मुझे!' जैसे किसी को विद्युत्स्पर्श हुआ हो। पूतना को लगा—उसके समस्त मर्मस्थान बलात् कोई निचोड़ रहा है, समस्त स्नायु ऐंठ रहे हैं। वह चिल्ला पड़ी। चिल्लाती हुई भागी वहाँ से। वह बकी है, उड़ सकती है—इतना ही सम्भव होता तो

दोनों हाथों से वह इस नन्हे शिशु को स्तनों से छुड़ा कर फेंक न देती। उसके तो जैसे प्राण यह पिये जा रहा है। नस-नस, शरीर का कण-कण फोड़ कर जैसे वहाँ की चेतना खिंची जा रही है। स्तनों की ओर। यह कल्पनातीत व्यथा—वह तो हाथ भी अपने वक्षतक पहुँचाने में असमर्थ है। उसके नेत्र फट-से गये हैं। वह भागी-भागी जा रही है हाथ फेंकते, पैर पटकते, लुढ़कती-सी, रोती—चिग्घाड़ मारती। उसके केश खुलकर उड़ने लगे हैं, शरीर पसीने से लथपथ हो गया है, वस्त्र भूमि में घसिटता जा रहा है, वह भागी जा रही है पूतना!

यह यशोदा का लाल, यह सुकुमार नीलोज्ज्वल शिशु, इसने तो अभी नेत्र भी नहीं खोले। सम्भवतः बड़ा मधुर लग रहा है यह दूध। आनन्द से नेत्र बंद हो गये हैं। दोनों कोमल अरुण हाथों से पूतना के स्तन को पकड़कर मुख लगाये चूसता जा रहा है यह। अभी सात ही दिन का तो है। इसकी मुट्ठियाँ जब कुछ भी पकड़ लेती हैं, उसे छोड़ना कहाँ सीख पाया है यह। किसी को पकड़कर छोड़ना स्वभाव में ही कहाँ है इसके। दोनों पल्लव-कोमल पद्मपद पूतना के वक्ष से चिपक गये हैं। उसे कोई पकड़ता नहीं, सहारा नहीं देता, तो वहीं चिपक गया है। यह दूध—बड़ा मीठा होगा इसका दूध; नहीं तो यह नन्दनन्दन क्या इस प्रकार पीने में जुट पड़ता? शरीर का सब क्षार तो यह पसीना बनकर निकला जा रहा है, तब दूध तो मधुर हो ही जायगा न। इसने स्तनों में हलाहल लगाया था—यह बात क्या अब सोचने की है। अन्ततः हलाहल भी तो नीला ही ठहरा, अपने इस सवर्ण शिशु से कहीं उसने मित्रता करली हो और मधुर हो गया हो तो? हाँ, इससे तो उसका पुराना सम्बन्ध है, अन्ततः वह भी तो रमा का भाई ही है और इसके तो स्मरण से वह अमृत बन जाया करता है। बिचारी पूतना को कहाँ पता था कि यह हलाहल उसके दूध में मिश्री बन जायगा! भला, ऐसा दूध यह शिशु क्या सहज छोड़ सकता है? वह क्या जुटा है पीने में! नेत्र बंद किये क्या वह चुसकी भरता जा रहा है! यह पूतना रोती, चिग्घाड़ती, हाथ-पैर पछाड़ती भागी जा रही है, इसका उसे क्या पता और क्या चिन्ता। वह तो दूध पी रहा है—दूध।

× × × ×

'क्या हुआ, यह देवी क्यों चिल्लायी! कहाँ भागी यह! दौड़ो! दौड़ो! यह मेरे लाल को लिये जाती है!' मैया चिल्लायी, माता रोहिणी चीख पड़ीं, गोपियाँ पुकारते हुए दौड़ीं। भला, पूतना के साथ कौन दौड़ सकता है। सब दौड़ीं, सब दौड़ती चलीं उधर, जिधर वह भागती जा रही है। 'वह भागती जाती है! वह उसकी चिग्घाड़ आ रही है! इतनी भयंकर ध्वनि, इतना कर्कश स्वर—जैसे कर्ण फटे जा रहे हैं!' सब-की-सब भूल गयी हैं अपने आपको। सब दौड़ रही हैं—दौड़ती ही जा रही हैं।

सेवकों ने—रक्षकों ने भी चीत्कार सुनी—उन्हें कहाँ अवसर मिला कि कुछ कर सकें। वे सावधान हों, देखें कि क्या हुआ, इससे पहिले तो दौड़ती, चिल्लाती, छटपटाती पूतना नन्दभवन से निकली और उनके सम्मुख से वायु-वेग से चली गयी। वे भी दौड़े सब-के-सब उसके पीछे।

'अरर धम्!' सैकड़ों वज्रपात जैसे साथ ही हुए हों, भूमि काँप गयी वेगपूर्वक, भवन-तरु सब हिल गये। बर्तन भड़भड़ाकर गिरे और फूट गये। जो भी दौड़ रहे थे, सब भूमि पर गिर पड़े! इतना भीषण शब्द, इतनी भयङ्कर गूँज और इतना प्रबल धमाका—कोई कैसे सम्हाल सकता था अपने को। लेकिन अपना ध्यान कहाँ किसे है। कौन सोचता है कि इतनी भीषण ध्वनि जहाँ हुई, वहाँ कोई अपने लिये भय भी हो सकता है। 'भय है—वह नन्दनन्दन को लेकर भाग गयी, पता नहीं क्या हुआ!' सब इसी एक भय से झटपट सम्हलकर उठे और फिर भागे।

× × × ×

ये गोपियाँ—कितनी दूर दौड़ती आयी हैं ये! इनके प्राण तो उस शिशु में लगे हैं, इन्हें क्या दूरी का पता है। 'लेकिन यह क्या है सम्मुख? यह कौन सा पर्वत पड़ा है? यह राक्षसी—वह महाशब्द इसीके गिरने का था। यह तो उत्तान पड़ी है भूमि पर। इसके ये बड़े बड़े रूक्ष लाल-

लाल केश बिखरे पड़े हैं। ओठ, ये इसके दाँत—पूरे बाण जैसे तीक्ष्ण और उतने ही लंबे ये उज्ज्वल भयंकर दांत। यह तो मुख फाड़कर मरी पड़ी है। ये दोनों ओर फैले मोटे बाहु और हाथों में खपरैल-जैसे विशाल तीक्ष्ण नख! इसकी नासिका के छिद्र तो जैसे पहाड़ की अन्धकारपूर्ण दो गुफाएँ हों, और इसके स्तन—जैसे शैलशिखर हैं ये।' जो सेवक और रक्षक दौड़ आये हैं, वे बड़े भयभीत हुए। यह पर्वताकार राक्षसी—यह तो राक्षसी है—देवी नहीं है। ये लोग समीप आ गये हैं। इस पर्वतोत्तुङ्ग मस्तक की आड़ में उन्हें पूरा शरीर कहाँ दीखता है। मुख ही तो किसी प्रकार दीखा है। वे घूमे दूसरी ओर मस्तक के—इसके नेत्र तो जैसे दो अंधे (जलहीन) कुएँ हैं, कितने भयंकर हैं ये नेत्र और इसकी ये फैली भुजाएँ तथा वे दोनों फैले पैर—जैसे इसका यह तो महाभीषण जलशून्य ह्रद जैसा विशाल खड्ड उदर है, वहाँ तक पहुँचने के लिये ये चार सेतु वैसे ही विशाल और भीषण बने हैं!' गोपों को, सेवकों को, सबको आतुरता है—नन्दनन्दन कहाँ है? उसका क्या हुआ? वे पूतना-देह के इधर-उधर अस्त-व्यस्त दौड़ रहे हैं।

गोपियाँ आयीं दौड़ती, इन रक्षकों से कुछ ही क्षण तो पीछे आयी हैं वे। "यह राक्षसी! इतना विशाल देह! इतना रौद्र रूप!' वे अत्यन्त भयविह्वल हो गयीं। उनके चरण सहसा रुक गये और वे एकटक देखती रह गयीं दो क्षण उसी राक्षसी की ओर। दूर से—कुछ दूर से देखने का लाभ उन्हें मिलना ही है—

"वह रहा नीलमणि! वह तो दूध पीकर तृप्त होगया है। पेट के बल इस राक्षसी के वक्ष पर लेटा अपने दोनों नन्हे अरुण चरण पटक रहा है, छोटे सुकुमार लाल-लाल करों से इसके स्तन को मार-मारकर किलक रहा है। वह तो निर्भय खेल रहा है!' गोपियों को जैसे जीवन-दान मिला। वे लपकीं, चढ़ गयीं राक्षसी के शरीर पर और दौड़ती गयीं। उन्होंने नन्दनन्दन को उठा लिया, हृदय से लगा लिया और लौटीं। कई पहुँचीं थीं, और सब साथ ही लौटीं। मैया की गोद में उन्होंने किस भाव से लाकर दिया उस नवजलधर-सुन्दर को और मैया ने किस ललक से लिया, यह कैसे वर्णन हो।

यह वनप्रान्त—यह राक्षसी मरी पड़ी है यहाँ। भला, ऐसे स्थान पर कौन ठहरे एक क्षण। सबको शीघ्रता है, सब को लगता है किसी प्रकार निरापद नन्दभवन पहुँच जाय यह व्रजराज-कुमार। और रक्षकों को इन गोपियों से अधिक शीघ्रता है। यह राक्षसी—पता नहीं इसके साथ और कोई हो तो! इसके उस भीषण चीत्कार को सुनकर कोई असुर दौड़े गोकुल की ओर। इसी समय तो गोकुल की रक्षा परम आवश्यक है। ये गोपियाँ और यह व्रजनवयुवराज—यही तो उनके परम हृदय हैं। सभी रक्षक, सभी सेवक गोपियों को चारों ओर घेरे, बड़ी सावधानीपूर्वक, तीव्र गति से गोकुल लौटे।

× × × ×

'आज ही यह प्रथम दिन खुले कक्ष में प्रसूतिगृह से आया और आज ही यह उत्पात! पता नहीं कौन से अशुभ ग्रह हैं। राक्षसी ने स्पर्श किया इसका—पता नहीं आगे क्या हो!' सभी के मन में बड़ा भय है, बड़ी आशङ्का है; किन्तु व्रज की साक्षात् देवता तो गौएँ हैं। इन निखिल-देवमयी की शक्ति तो अपार है। सभी क्रूर ग्रह, समस्त अमङ्गल तो इनकी चरणरज से ही नष्ट हो जाते हैं। इनका परम पावन गोमूत्र—वह तो महौषधि है। समस्त आसुरी शक्तियाँ उसकी गन्ध से ही भयभीत होती हैं और इनकी पुच्छ—यह तो निखिल अमङ्गलों को सहज ही झाड़ फेंकने वाला अमोघ चमर है। गोपियों ने इसीकी इन्दीवराभनील नन्दनन्दन के ऊपर कृष्णा की पूँछ फिरायी। गौ ने हुंकार की—जो नित्य गोपाल है, उसका पालन भी तो गौएँ ही करेंगी। कपिला के पवित्र गोमूत्र से उपनन्द-पत्नी ने स्नान कराना उपयुक्त समझा और फिर उसे सम्पन्न होने में क्या देर लगती है। गोरज लेकर भगवन्नामों का न्यास स्वयं किया उपनन्दपत्नी ने शिशु के द्वादशाङ्गों में और फिर बार-बार उस न्यास की आवृत्ति की। भला, इतने से संतोष कैसे हो जाय। जल लेकर हाथ-पैर

धोया उन्होंने, अपने अङ्गों में बीजमन्त्रों का अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर शिशु के अङ्गन्यास, करन्यास को सम्पन्न करके वे उसके अङ्गों में कवच का न्यास करने लगीं—

'अजन्मा भगवान् तुम्हारे पैरों की रक्षा करें! कौस्तुभमणिधर प्रभु घुटने से नीचे के भाग की और भगवान यज्ञ जाँघों की रक्षा करें! तुम्हारे कटिदेश की भगवान अच्युत, पेट की भगवान् हयग्रीव, हृदय की केशव, वक्ष की सर्वप्रेरक, कण्ठ की इच्छामय प्रभु, भुजाओं की भगवान विष्णु, मुख की उरुक्रम और सभी दिशाओं में वे सर्वेश्वर रक्षा करें! भगवान सुदर्शनचक्रधर सदा तुम्हारा सम्मुख से रक्षण करें! वे कौमोदकीगदा-धारी श्रीहरि तुम्हारे पृष्ठभाग को रक्षित रखें! शार्ङ्ग धनुष एवं नन्दकखड्गधारी वे स्वजनरक्षक मधुसूदन दोनों पार्श्वों में रहकर तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् उत्तमश्लोक का पाञ्चजन्य शङ्ख कोणों में तुम्हारी रक्षा करे। ऊपर से तुम्हारी रक्षा भगवान उपेन्द्र करें। पृथ्वी पर पक्षिराज गरुड़ तुम्हारा रक्षण करें! और वे हलधर परम पुरुष चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें! तुम्हारी इन्द्रियों को हृषीकेश, प्राणों को नारायण, चित्त को श्वेतद्वीपाधिपति और मन को भगवान् योगेश्वर रक्षित करें! भगवान् पृश्निगर्भ तुम्हारी बुद्धि की और परम पुरुष तुम्हारी आत्मा की रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द, सोते समय माधव, चलते समय वैकुण्ठ, बैठे रहने पर श्रीपति, और भोजन करते समय सम्पूर्ण ग्रहों के लिये भयंकर भगवान् यज्ञभोक्ता तुम्हारी रक्षा करें। डाकिनियाँ, यातुधान, कूष्माण्ड आदि जितने बालकों को पीड़ा देने वाले हैं; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक आदि क्रूर सत्व; कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना प्रभृति मातृकाएँ और उन्माद, अपस्मार प्रभृति जितने रोग हैं; जो शरीर, प्राण तथा इन्द्रियों के शत्रु हैं, इनको दूषित करने वाले हैं; इनके अतिरिक्त भी जो स्वप्न में दिखायी पड़नेवाले भयंकर उत्पात तथा बालकों एवं वयस्कों के यह हैं; ये सब भगवान् विष्णु के नाम से ही डरनेवाले हैं। तुम्हारे लिये ये सब नष्ट हो जायँ! तुम्हें इनका प्रभाव कभी स्पर्श न कर सके!' उपनन्द-पत्नी ने बड़ी गम्भीरता से यह मन्त्र-रक्षण किया। गोपियाँ शान्त रहीं, गम्भीर बना रहा पूरा वातावरण; पर यह दाऊ तो हँसता, खिलखिलाता ही रहा है। माता रोहिणी ने इसे गोद में पकड़ न रक्खा होता तो यह क्या शान्ति से यह सब होने देता। यह तो छोटे भाई के पास पहुँचने के लिये प्रयत्न करता ही रहा है।

व्रजराज सायंकाल तक आ जायँगे और तब वे महर्षि शाण्डिल्य को बुलाकर विधिवत् स्वस्तिपाठ, ग्रहशान्ति प्रभृति करायेंगे। लेकिन इतनी भयंकर राक्षसी आयी, वह इस नवनीत-सुकुमार शिशु को ले भागी—यह तो नन्दरानी और व्रजेश्वर के अनन्त जन्मों के प्रबल पुण्यों का प्रताप, व्रजजनों पर श्रीनारायण की कृपा कि बालक ज्यों-का-त्यों सकुशल प्राप्त हो गया। भला, संध्या तक कैसे प्रतीक्षा की जाय! रक्षा का—इस अशुभ स्पर्श के परिहार का कुछ उपाय तो तत्काल ही होना अत्यन्त आवश्यक था ही।' गोपियों ने आशीर्वाद दिया अपने आराध्य, कुलदेव, ग्रामदेव आदि का स्मरण करके। मैया ने गोदमें लिया आपने लाल को और स्तन-पान कराने लगी। बहुत दूध पिया है इसने उस राक्षसी का; अब भला, क्या क्षुधा रहेगी। उसी समय जब वह क्रूरा परम सुन्दरी बनकर आयी थी, यह सोने लगा था। बहुत देर हो गयी—तब से इस सब झमेले में सो ही नहीं सका। मैया की गोद में पहुँचते ही पलकें बंद कर लीं उसने। मुख माता के स्तन में लगाये हुए ही वह तो सो गया। मैया ने धीरे से पलने पर सुला दिया। अब तो सबको सावधान रहना है, फिर कोई राक्षसी न आ जाय।

× × × ×

'गोकुल में उत्पात हैं।' श्रीव्रजेश्वर, दूसरे सब गोप भला, इस आशङ्का से कितने व्याकुल होंगे—कोई अनुमान हो सकता है। 'पता नहीं कौन से उत्पात हैं, कैसे उत्पात हैं! वह व्रज की आशा का नवाङ्कुर—श्रीनारायण मङ्गल करें। छकड़े दौड़ाये, नावों पर बैलों को जुते ही रहने दिया गया; श्रीयमुनाजी पार हुईं और जैसे उत्तुङ्ग वृषभ छकड़े लिये उड़ने लगे हों! 'बहुत विलम्ब हुआ!' इस गति पर संतोष किसे है।

'यह--यह क्या ?' सहसा वृषभ स्वतः खड़े हो गये। उन्होंने विचित्र भङ्गी प्रकट की। 'क्या है ?' गोप कूदे छकड़ों से। 'आगे का विशाल वन कहाँ है ? हम लोग क्या मार्ग भूल गये ?' यहाँ तो मार्ग में मथुरा नरेश का प्रिय रक्षित-कानन था आगे ही। उसके वृक्ष तो दीखते ही नहीं। गोपों ने छकड़े छोड़ दिये और आगे बढ़े। उतावली में मार्ग भूल गया हो तो ठिकाना क्या! पहिले इधर-उधर देख लेना चाहिये।

'यहाँ तो यह पूतना मरी पड़ी है!' सम्मुख के तरु, वीरुधों की पंक्ति से आगे बढ़ते ही गोप चिल्लाये। पूतना--यह कंस के असुर सहायकों में प्रधान राक्षसी, भला, इसे पहिचानने में गोपों से भ्रम हो सकता है ? क्या हुआ जो यह प्रायः बकी बनकर उड़ा करती थी। यहाँ तो यह अपने वास्तविक रूप में ही दोनों पैर मथुरा की ओर पसारे, गोकुल की ओर मस्तक किये उत्तान पड़ी है। इसका यह तीन गव्यूति (लगभग ६ कोस) लंबा-चौड़ा पर्वताकार शरीर—भला, राजकानन दिखायी कैसे पड़ता! इस निशाचरी के शरीर के नीचे पड़कर तो वृक्षों के तने, शाखाएँ, टहनियाँ, पत्ते, सभी भुरकुस हो गये हैं। यहाँ तो केवल रेशे रह गये हैं आर्द्र काष्ठ के। सारे वन को पीस दिया है इसने गिरते-गिरते। दूर से ही गोपों ने देख लिया राक्षसी के पर्वताकार देह को।

'पूतना—पूतना यहाँ....!' श्री नन्दराय बन्धुओं एवं दूसरे गोपों के साथ बढ़ आये आगे। 'अवश्य ही वसुदेवजी कोई महर्षि हैं, जो यदुकुल में उत्पन्न हो गये हैं। उनकी वाणी कितनी सत्य निकली। उन्होंने कहा था कि गोकुल में उत्पात है और यह सम्मुख उत्पात प्रत्यक्ष है!' व्रजेश्वर अपने बन्धु की प्रशंसा करके गद्‌गद हो गये। 'यह पूतना--यह बालघ्नी राक्षसी कहीं गोकुल तो नहीं गयी थी। गोकुल में क्या हुआ ? वहाँ कुशल तो है ?' श्रीव्रजपति ने, गोपों ने, सबने छकड़े दौड़ाये पूरे वेग से दौड़ाये गोकुल की ओर। वे खड़े होकर, उझककर वृषभों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। कैसे शीघ्र पहुँचा जाय।

× × × ×

'व्रजराज आये!' वृषभों के गलों में बँधी स्वर्ण घण्टिकाओं का नाद सुनायी पड़ा और रक्षक दौड़े। 'श्री व्रजराज की जय!'

'कुशल तो है ? कोई उत्पात तो नहीं ?' बड़े शङ्कित चित्त से पूछा गया। छकड़ों की गति मन्द हुई।

'आपके पुण्यप्रताप से, भगवान् नारायण की कृपा से कुशल है!' रक्षकों ने थोड़े शब्दों में सुना दिया पूतना का समाचार और छकड़े दौड़े--दौड़े वृषभ नन्द-भवन की ओर। भला, उन सुकुमार शिशु को इतनी बड़ी राक्षसी ले भागी थी। ये रक्षक ठीक नहीं बतलाते! कुछ हुआ हो तो!. बिना स्वयं देखे संतोष किसे हो!

'नीलमणि कहाँ है ? कैसे है वह ? सकुशल तो है ?' श्री नन्दराय छकड़े से सीधे अन्तःपुर पहुँचे और पहुँचे उनके साथ समस्त गोप। भला ऐसे समय सूचना देने का ध्यान किसे रहे। यह कार्य तो सेविकाओं ने पहिले ही सम्पन्न कर दिया था।

'मेरा लाल!' व्रजराज ने उठाकर हृदय से लगा लिया। नेत्र भर आये उनके, शरीर गद्‌गद होगया।

सभी को उसे अङ्क में लेना है, सभी को देखना है—स्वयं देखना है कि उनकी वह हृदय-निधि सुरक्षित है। स्नान—स्वच्छता—महर्षि शाण्डिल्यका आह्वान—ग्रहशान्ति-दान—सब होने हैं, सब होंगे; पर अभी तो इसे—इस इन्दीवरसुन्दर को गोदमें लेकर देखना है--सबको ही देखना है।

× × × ×

'वह पर्वतकाय राक्षसी अपने बृहद्वन की सीमापर ही पड़ी है। वह यदि वहीं सड़ेगी तो सबको कष्ट होगा।' श्रीनन्दनन्दन सकुशल है। वह राक्षसी के घोर चीत्कार से डरा भी नहीं। अब कहीं चित्त कुछ व्यवस्थित हुआ। संनन्दजी ने ठीक ही प्रश्न उठाया है।

'कुछ भी हो, कोई भी हो, जब अपनी सीमा के पास उसका शव पड़ा है तो उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है।' उपनन्दजी ने स्वयं यह व्यवस्था करने का भार लिया और उठ खड़े हुए।

'इसे कहीं उठाकर ले जाना किसके बसकी बात है।' ये उपनन्दजी के साथ आये अन्त्यज सेवकगण ठीक ही तो कहते हैं। भला, यह पर्वत क्या मनुष्यों से उठ सकता है। इसे न तो यमुनाजी में प्रवाहित करने को ले जाया जा सकता और न इतना बड़ा गड्ढा खोदना सम्भव है, जिसमें इसे भूमि में दबाया जा सके।

'इसके शरीर को टुकड़े-टुकड़े काट कर दूर खड्ड में फेंक कर जला दिया जाय!' प्रस्ताव-चाहे जितना अप्रिय हो, जब दूसरा मार्ग ही नहीं तो उसे स्वीकार करना ही ठहरा।

'बेचारी की सद्गति हो जायगी।' भला, अब क्या सद्गति के लिये उसे अग्नि-दाह की अपेक्षा है; पर उपनन्दजी तो अपनी ही दृष्टि से सोचेंगे न। वे धर्मप्राण व्यवस्था में लग गये हैं राक्षसी की सद्गति की। वे शतशः अन्त्यजों के साथ स्वयं पहुँच गये हैं उसके शव के समीप।

परशु से राक्षसी के शव को टुकड़े-टुकड़े किया सबों ने। किसी प्रकार एक-एक अंश रस्सी एवं बल्ली के सहारे ढोकर दूर ले जाकर एक खड्ड के किनारे ढेर किया उन टुकड़ों का। खड्ड में पर्याप्त काष्ठ फेंक कर अग्नि लगायी गयी ऊपर से ही डालकर और तब राक्षसी के शरीर के सब टुकड़े उसी में ढकेल दिये गये।

× × × ×

'यह अपार सुगन्ध, जैसे कोई अगुरु की राशि प्रज्वलित हो रही हो! कहाँ से आ रही है यह सुगन्ध? इतनी सुगन्ध कैसे आ रही है?' सभी गोपों को बड़ा आश्चर्य हुआ है। भला, कानन में इतना अगुरु कौन जलायेगा। अगुरु की सुगन्धि इतनी मधुर—इतनी मादक—इतनी प्रिय होती कहाँ है।

'धूम्र तो उस खड्ड की ओर से आ रहा है! उस राक्षसी के शव का धूम·····उसमें इतनी सुगन्ध·····!' बात कुछ ऐसी है तो सही, पर यह क्या समझ में आने की बात है? व्रज-जनों के साथ ये पूतना को जलाने वाले लोग भी कम चकित नहीं हैं। कौन बताये इन्हें कि उस राक्षसी के दूध को उसके हृदय पर चिपक कर तुम्हारे जिस युवराजने पिया है, उसकी वह नवनील-नीरद मूर्ति कल्पना से भी जिसके हृदय में ठीक ठीक आ जाती है, सुरभि तो उसका मलिन देह प्राप्त कर लेता है, फिर इसके सौभाग्य की तो सीमा ही नहीं है।

यह सुरभि कहीं से उठी हो—कौन सोचे इसके सम्बन्ध में। किसे इतना अवकाश है। व्रजराज ने महर्षि शाण्डिल्य को बुलाने के लिये भाई को तभी भेज दिया। शान्तिपाठ, हवन और महोत्सव—सभी तो होगा गोकुल में! गोकुल की आशा का परमाधार इस संकट से—इस महा उत्पात से बचा है!' अभी तो स्नान करना है!' भला, कोई कैसे महोत्सव में पहुँचने से वञ्चित रहना चाहे। शव के टुकड़े प्रज्वलित गड्ढे में गिरा कर उपनन्दजी सबके साथ गोकुल पहुँचने की शीघ्रता में हैं।

गोकुल के लोग भी चौंके, आश्चर्य में पड़े, यह महासुरभि·····कहां से आती है यह?' पर उन्हें ही अन्वेषण या अधिक तर्क का अवकाश कहाँ है। सब तो महोत्सव की प्रस्तुति में लगे हैं।

# दुग्धपान

*'साष्टाङ्गपातमभिवन्द्य समस्तभावैः सर्वान् सुरेन्द्रनिकरानिदमेव याचे।*
*मन्दस्मितार्द्रमधुराननचन्द्रबिम्बे नन्दस्य पुण्यनिचये मम भक्तिरस्तु ॥'*

—श्रीलीलाशुक

नन्दनन्दन आज ग्यारह दिन का हुआ। आज इसका नामकरण होना चाहिये था। अभी परसों ही माता रोहिणी ने कहा था—'नीलमणि का तो नामकरण हो ही जाय।'

'व्रजेश्वर कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि यह अपने अग्रज से पहिले संस्कृत हो!' दाऊ के जन्म के समय ही मथुरा के कारागार में समाचार भेजा गया था। श्रीवसुदेवजी ने कहला दिया—'शीघ्रता की आवश्यकता नहीं है!' अभी उनके कारागार-मुक्त होने पर भी चर पूछने गया था। जब वे टालते जा रहे हैं तो कोई बड़ा कारण होना चाहिये।

'इसका संस्कार भी अपने बड़े भाई के साथ ही होगा!' व्रजपति ने तो टाल दिया; किन्तु गोप-गोपियों के हृदय में कितनी उमंग थी, कितना उल्लास था—आज कुमार का नामकरण होता·····कैसे होता? सभी समझते हैं, यह कैसे हो सकता है। आज नामकरण न सही, कल दोलाशयन तो होगा ही। सबका उत्साह कल पर केन्द्रित हो गया है। सब कल की प्रस्तुति में जुट गये हैं।

× × × ×

श्रीव्रजराज-कुमार आज पलने में पौढ़ेगा! आज यह बारह दिन का हुआ। यह स्नेह की मञ्जु म्रदिमा—पलने का मन्द-मन्द हिलना भी अभी सह सकेगा यह सुकुमार? अभी तो यह स्थिर पलने में ही शयन करता है। शिशु के अङ्ग-विकास के लिये गति चाहिये, गति तो झूले में ही मिलेगी उसे। आज झूलते पलने में झूलना प्रारम्भ करेगा यह चञ्चल।

महर्षि शाण्डिल्य पधारे और पधारे उनके साथ शतशः द्विजवृन्द। आज श्री शेषशायी का पूजन होना है। यह उज्ज्वल दुग्धधवल प्राङ्गण और आज तो व्रजराजने इसे क्षीराब्धि बना दिया है। भगवान् अनन्तशायी की यह दिव्य झाँकी—नन्दभवन के प्राङ्गण में साक्षात् नारायण जैसे अपनी अनादि शय्या पर व्यक्त हो गये हों और ये रजतश्मश्रु, वलीपलित काय, तेजोमूर्ति ऋषि-गण सस्वर साम के मन्त्रों से उन्हीं परात्पर पुरुष की तो स्तुति कर रहे हैं!

महर्षि ने गणपति, नवग्रहादि के साथ आवरण-देवता, पार्षद, परिकर—सब की पूजा सम्पूर्ण करा दी और अब तो व्रजेन्द्र अपने कुमार को अङ्क में लेकर अपने आराध्य का पूजन कर रहे हैं। 'भगवान् नारायण इस शिशु पर प्रसन्न हों!' शङ्खध्वनि, मन्त्रपाठ एवं सबसे ऊपर गूँजता यह जयघोष! गगन से निरन्तर झरती पुष्पवृष्टि और देववाद्य तो आज गोकुल के वाद्यों की प्रतिध्वनि हो गये हैं।

यह मणि-मण्डित स्वर्ण-पलना और उसमें लगे ये सजीव-से मणिमय शुक-सारिकादि! इन्द्रनील, पद्मराग, महामाणिक्य के ज्योतिःपुञ्ज खिलौने और इस नन्हे नीलसुन्दर के लिये तो यह नन्हा क्षीराब्धि ही बहुत है। पलने का यह उज्ज्वल सुकोमल आस्तरण—इस पर यह अपने चरण उछालता किलकेगा! क्षीराब्धि भी कदाचित् आज इस पलने में अपने को एक करके कृतार्थ ही होता।

महर्षि पूजा करा रहे हैं पलने की, रज्जु की और क्रीड़ा-उपकरणों की। मैया की गोद में आया यह श्याम। उच्च, उच्चतर, उच्चतम वाद्य, शङ्खनाद की प्रणव-ध्वनि और मैया ने लो, धीरे से रख दिया अपने नीलमणि को पलने में।

'इसे मैं झुलाऊँगी!' व्रजरानी उल्लसित हो गयी यह सुनकर। माता रोहिणी ने आज एक आग्रह किया और वह भी धीरे से उनके कान के समीप। परम सती, मङ्गलमयी और श्याम की बड़ी माँ भी तो हैं ये। अपना स्वत्व कैसे छोड़ दें।

'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा.....।'

विप्रों का स्वस्ति-वाचन चल रहा है। गोप उछलने और अपनी कला को मूर्त करने में लगे हैं। मागध, सूत, वन्दी अपने कण्ठ को धन्य कर रहे हैं। गोपियों के कलकण्ठ को पाकर सङ्गीत सार्थक हो गया है और यह मधुमङ्गल ताली बजाकर नाच रहा है, कूद रहा है। यह दाऊ अपना मस्तक जैसे पलने की मन्द गति के साथ धीरे धीरे आगे-पीछे हिलाता, दोनों कर भूमि पर टेके अपने अनुज की ओर देखता झूम रहा है।

'कुमार, श्याम!' ये भगवती पूर्णमासी—ये अपने मङ्गलमय अभय कर फैला रही हैं। व्रजेश्वरी इनके श्रीचरणों में मस्तक ही तो रख सकती हैं। इन जगदम्बा की कोई और क्या सेवा करेगा।

माता रोहिणी—आज तो माता को जैसे अपनी ही सुधि नहीं है। महोत्सव चल रहा है। इतना आनन्द-कोलाहल है और जैसे कोई नहीं है उनके पास। वे तो कुछ गा रही हैं, कुछ लोरी की भाँति धीरे-धीरे गा रही हैं। वे आनन्द-विभोर पुलकित तन इस प्रकार गा रही हैं, जैसे उनका मन्दस्वर यह नीलसुन्दर सुन रहा है। पलने की रज्जु—इस रज्जु ने जैसे हृदय का राग पाया है। माता के कर हिल रहे हैं और हिल रहा है यह पलना।

नन्दनन्दन किलक रहा है, अपने कर एवं चरण उछाल रहा है। यह भी अपनी बड़ी माँ को ही देख रहा है। कुछ कह रहा है अपनी किलक में। कुछ संकेत कर रहा है अपनी चेष्टा में। इसे भी इस समय बड़ी माँ ही दीखती है। और लोग हैं, और शतशः नेत्र प्रतीक्षा कर रहे हैं कि यह एक बार देखे तो सही। सहस्रशः कण्ठ इसी के कर्णों तक अपनी ध्वनि पहुँचाने के प्रयास में हैं और यह—यह तो बड़ी माँ के हिलते अधर देखकर किलक रहा है। झूल रहा है मन्द-मन्द इसका यह पलना।

× × × ×

श्री व्रजराज-कुमार को कौन गोदुग्ध पान करायेगा प्रथम? इसकी धात्री होने का सौभाग्य किसे मिलेगा? किसके हृदय में लालसा नहीं है। कौन उत्कण्ठित नहीं है। मैया क्या करे—वह किसे कहे, किसे अस्वीकार कर दे। उसका श्याम है तो सभी का। उसकी सभी जेठानियाँ और देवरानियाँ उत्सुक हैं। सभी गोपियाँ कहते-कहते रह जाती हैं—'व्रजरानी, अपने लाल की धाय तो बना लेना हमें!' सबके मनमें एक संकोच है, दूसरे की लालसा पर ठेस न लगे।

उस दिन उपनन्दपत्नी ने कहा था—'समय पर ही निश्चय हो जायगा!' उनका ही प्रथम स्वत्व है, वही सबसे बड़ी हैं; किन्तु वे धाय बनेंगी? उन्होंने आग्रह किया तो कौन रोक लेगा? समय ही कहाँ दूर है। कल ही तो यह इकतीस दिनका होगा। कल ही तो इसे गोदुग्ध दिया जायगा। व्रजेश कह रहे थे कि कपिला ने आज उन्हें देखते ही हुंकार की और उसके स्तनों से दूध झरने लगा।

महर्षि शाण्डिल्य ने आदेश दिया है, आज तीन दिन से कपिला केवल दूध पी रही है। एक लक्ष कपिला गौएँ औषधि-तृणों पर रहती हैं और उनका दूध एक सहस्र गायें पीती हैं। उन सहस्र गायों के दूध से एक शत पद्मगन्धा कपिला गौएँ तृप्त होती हैं और वे अपने दूध से व्रजराज की दस मुख्य धेनुओं को संतुष्ट करती हैं। यह नीलोत्पलदिव्यगन्धा कपिला, यह कामदा तो उन

दस के दूध से अर्चित हो रही है। कल श्याम को दूध पिलायेगी। यहाँ कन्हाई इसके अमृत-पय का प्राशन करेगा। आज इसके चारों स्तनों से अखण्ड धारा चल रही है और वह बंद ही नहीं होने को आती। महर्षि ने आज से ही भगवान् शंकर का अखण्ड सहस्राभिषेक प्रारम्भ कर दिया है। कामदा तो अकेली ही उस अभिषेक के लिये दूध देने पर तुली जान पड़ती है। वह नन्दनन्दन को दूध पिलायेगी—उसके दुग्धाधार में क्षीरोदधि ही आवसा हो तो क्या पता। इतना सुरभित क्षीराब्धि का पय हो सकता है—कौन विश्वास करेगा।

× × × ×

'व्रजेश्वरी! लाओ, लाल को मुझे दो!' ये भगवती पूर्णमासी! इनके करों में यह दिव्य ज्योतिर्मय दक्षिणावर्त नन्हा-सा शङ्ख, सचमुच शशि समुद्र से ही निकल है। पूर्णिमा को वह इस शङ्ख की छटा को कुछ-कुछ पा लेता है। मैया ने, माता रोहिणी ने, सबने समझा तो यही था कि भगवती आज कुमार को दुग्धपान के लिये यह शङ्ख प्रसादरूप प्रदान करने आयी हैं; परन्तु इन्होंने तो शङ्ख दिया नहीं। ये तो श्याम को अङ्क में लेकर पूर्वाभिमुख बैठ गयीं उसका सिर दक्षिण करके। 'ये महिमामयी, ये साक्षात् जगदम्बा, ये क्या·····।'

'व्रजराज, तुम्हारे युवराज की यह धात्री बैठी है! यह रहा शङ्ख! इसका पूजन करो और मुझे दूध दो! मेरा लाल दूध पियेगा!' भगवती ने तो सबको एक क्षण के लिये स्तब्ध, आश्चर्य-चकित कर दिया।

'जगदम्बा!' बाबा ने चरणों पर मस्तक रख दिया आतुरता-पूर्वक। उनका भरित कण्ठ और कुछ नहीं कह सकेगा; किन्तु नेत्रों ने भगवती के श्रीचरण प्रक्षालित कर दिये।

'करुणामयी माँ!' मैया ने अञ्चल फैलाकर भूमि में मस्तक रक्खा। उसके कण्ठ से ये शब्द भी नहीं निकले।

'भगवती पूर्णमासी श्याम को दूध पिलायेंगी!' गोपों को, गोपियों को जैसे चारों पुरुषार्थ एक साथ प्राप्त हो गये। जैसे साक्षात् जगज्जननी, महामाया ने उनके युवराज की धात्री बनकर उन्हें कृतार्थ किया है!

महर्षि शाडिल्य—वे तपोधन, केवल वे ही अपने मन्त्रपाठ में शान्त, सुस्थिर हैं। वे तो निश्चल स्वर में उस नन्हे शङ्ख को मार्जन करने लगे हैं। उनका तो भाव ही कहता है कि 'यह तो पहिले से जान लेने की बात थी—भला, व्रजराज-कुमार की धात्री और कोई कैसे बन सकती थी!'

× × × ×

'सौष्ठव, तुम तनिक दूध तो पी लो!' यह दुग्ध-धवल चञ्चल सौष्ठव—कामदा का यह चपल बछड़ा, यह तो बार-बार पकड़ कर लाने पर भी माता के स्तनों से मुख ही नहीं लगाता। गणपति, नवग्रहादि कभी के पूजित हो चुके। अग्निदेव ने श्रद्धापूत आहुतियाँ प्राप्त कर लीं। पितर तृप्त हो चुके और कामदा तथा इस चञ्चल सौष्ठव का भी पूजन हो गया। महर्षि ने शङ्ख की पूजा सम्पन्न करा दी और आज व्रजरानी को सौभाग्य मिला भगवती पूर्णमासी के श्रीचरणों की अर्चा का। अब तो श्याम को दूध पिलाना है। आचार्य ने अर्चा ग्रहण करके आशीर्वाद दे दिया और दोहन करने के लिये नवीन वस्त्राभरणों से सज्जित ये व्रजराज के लघुभ्राता प्रस्तुत ही हैं स्वर्ण पात्र लिये; पर बिना बछड़े के मुख लगाये तो गोदुग्ध पीने योग्य नहीं होता। यह चञ्चल सौष्ठव बार-बार भाग जाता है। अपने गले में पड़ी माला को हिलाता, फुदकता यह भाग जाता है भगवती पूर्णमासी के समीप और तनिक दूर से ही श्याम को सूँघने का प्रयत्न करके मस्तक घुमा-घुमा कर कूदता है। श्याम भी तो इसी की ओर देखकर किलक रहा है। यह तो जैसे कूदकर समझा रहा है—'तू यहाँ क्यों लेटा है? आ, मेरे साथ कूद! देख न, मेरी माँ के स्तनों से कितना उजला, कितना मीठा दूध झर रहा है! तू चल; चल, तू पी ले! ना—पहिले तू पी ले तो मैं पीऊँ।'

'चल, तू दूध पी ! तू मेरी बात नहीं सुनेगा तो दाऊ कान पकड़ेगा तेरे।' मधुमङ्गल ठीक कहता है, यह दाऊ अपने नन्हे हाथ कान पकड़ने को ही तो उठा रहा है।

'दूध ! दूध !' दाऊ भी समझ गया है कि दूध तो पहिले इसी को पीना है। यह बछड़ा नहीं मानता तो वह अपने हाथों इसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगा है। यह दूध पी ले तो उसके छोटे भाई को दूध मिले। पता नहीं क्या बात है, मधुमङ्गल की बात ये गायें, ये वृषभ और ये नन्हे बछड़े तक समझ लेते हैं। देखो न, इसने कहा है और सौष्ठव कूद गया माता के समीप। अब तो वह एक-एक स्तन क्षण-क्षण में बदल रहा है। उसे दूध कहाँ पीना है। मधुमङ्गल कहता है—जैसे यह समझ कर ही वह नाम कर रहा है दूध पीने का।

× × × ×

'लाल ! यह पद्ममधुमिश्रित, नारायण का प्रसाद धारोष्ण दूध है ! तू तनिक पी तो सही !' भगवती पूर्णमासी तो आज सचमुच जगज्जननी, वात्सल्यमयी हो गयी हैं। यह किलक रहा है नीलसुन्दर उनके मुख की ओर देखता उनके अङ्क में और अब उनके दक्षिण कर का यह शङ्ख—वे तो एकटक देख रही हैं। वे देख रही हैं और श्याम किलक रहा है। अपने कर एवं चरण ऊपर उठा-उठा कर वह अब शङ्ख को देख रहा है, उसे सम्भवतः पकड़ना चाहता है। इस चञ्चल को दूध पिलाना है और यह शङ्ख को ही पकड़ने के प्रयत्न में है।

नन्हे लाल अधर, खुला किलकता दन्तहीन मुख, शङ्ख को पकड़ने को उत्सुक कर और भगवती ने अधरों से तनिक-सा शङ्ख का मुखाग्र लगाकर एक बिन्दु गिरा दिया मुख में। हाथ, पैर वेग से हिलाकर यह चाटने लगा है दूध का वह बिन्दु ! महर्षि का सामगान, विप्रों का स्वस्ति-पाठ, गोपों का शङ्खनाद और जयध्वनि, गोपियों का कलगान—सब उन्मद हर्ष में झूम उठे हैं। सब झूम उठे हैं और अब कौन देखे कि मधुमङ्गल तालियाँ बजाकर नाच रहा है।

अधरों की यह दुग्धस्नात अरुणाभा—इसने अन्ततः शङ्ख को हिला ही दिया। यह चिबुक पर समुज्ज्वल बिन्दु और यह दूध चाटते हुए नन्दनन्दन की शोभा ! भगवती पूर्णमासी तो हाथ का शङ्ख भी अब उपनन्दपत्नी को देना भूल गयी हैं। वे तो एक हाथ में उसे उठाये मूर्ति बन गयी हैं।

—❀-❀-❀—

# शकट-भञ्जन

*"वत्स जागृहि विभातमागतं जीव कृष्ण शरदां शतं शतम् ।*
*इत्युदीर्य सुचिरं यशोदया दृश्यमानवदनाम्बुजं भजे ॥"*

—श्रीलीलाशुक

कंस के लिये आजकल निद्रा लेना भी कठिन हो गया है। पलक लगते ही उसे जान पड़ता है कि उसका काल आ गया। कोई महाभयंकर मूर्ति उसका कण्ठ दबाये दे रही है। वह चौंक कर उठता है। प्रायः चीत्कार करता है। उस वसुदेव की लड़की अष्टभुजा महाशक्ति ने कहा था—'तेरा पूर्व-जन्म का शत्रु कहीं प्रकट हो गया !' कंस को तो तभी से महाभय प्रतीत होने लगा और अब तो यह क्या संदेह की बात रही कि वह शत्रु कहाँ आया ! वह दूर भी नहीं, यमुना के उस पार गोकुल में ही तो है। नन्द का वह पुत्र—वही तो है। इतने निकट—पता नहीं, कब आ जाय। उसका क्या ठिकाना—सात दिन का भी पूरा नहीं हुआ था और अपारबलशालिनी पूतना को उसने मार दिया। पूतना की मृत्यु—कंसने तो संवाद सुना, तभी उसे ऐसा लगा जैसे स्वयं उसी की मृत्यु सम्मुख आ गयी है। उसने तभी समझ लिया कि गोकुल में ही उसका शत्रु आया। भला, कंस क्या इतना मूर्ख है कि दीपक में पतंगे की भाँति स्वयं जा कूदे ? गोकुल वह उसी के सम्मुख जाय, जिससे उसकी मृत्यु निश्चित है ? अब नन्दजी से खुली शत्रुता करना भी ठीक नहीं। उस मायावी विष्णु का ठिकाना क्या—कश्यप के यहाँ उत्पन्न होते ही वामन बनकर बलि के यज्ञ के लिये चल पड़ा ! कहीं नन्दजी से शत्रुता हो और वह पिता का पक्ष लेकर झटपट युद्ध करने मथुरा पर चढ़ दौड़े तो ? अब तो एक मात्र कपट-प्रयत्न ही किये जा सकते हैं।

'कपट-प्रयत्न—लेकिन ऐसे प्रयत्न भी कहाँ सफल हो रहे हैं। बेचारा श्रीधर गया था गोकुल। कितना राजभक्त है वह ब्राह्मण ! सभी आसुरी यज्ञों में वह सहायक रहा और राजहित के लिये ही प्रयत्न करने गया।' कंसके मनमें श्रीधर के प्रति सहानुभूति जाग्रत् हुई। उसने सोचा था कि श्रीधर ब्राह्मण है। नन्दजी तथा सभी गोप ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। श्रीधर के लिये कोई भय तो है नहीं और वह प्रयत्न में कुछ उठा न रक्खेगा। नन्द के उस लड़के को अवसर पाते ही मसल देगा वह। श्रीधर तो गोकुल से गूँगा होकर लौटा है। उसकी जीभ ही ऐंठ गई है और अब तो वह आता ही नहीं राजसदन।

श्रीधर क्या राजसदन आवे। कर्तव्यबुद्धि से ही गोकुल से लौटकर आया था। किसी प्रकार लिख कर, संकेत से उसने अपनी बात बतायी। कोई कैसे उसकी बात पर विश्वास कर ले ! 'यह तो ठीक कि नन्दगृह में उसका बड़ा सत्कार हुआ। यह भी ठीक कि स्वयं नन्दपत्नी उसकी सेवा के लिये जल भरने गयीं। गोप बड़े सीधे और श्रद्धालु हैं। इन ग्रामीण लोगों में श्रद्धा होती ही है विचार-हीन; पर यह क्या मानने की बात है कि नन्द के अबोध लड़के ने पलने में से उठकर घर के बर्तन फोड़ दिये, इसकी जीभ ऐंठ दी और इसके मुख में नवनीत लगा दिया, जिससे लोगों को संदेह हो गया और गोपों ने इसे गोकुल से निकाल दिया। लगता है कि श्रीधर ने कोई मूर्खता की। उसके जाने का उद्देश गोपों ने समझ लिया। अन्ततः ब्राह्मण ही तो है। गोपों ने डराया होगा, सिखा-पढ़ा दिया होगा और मारा भी हो तो क्या ठिकाना। जो भी हो, ताड़ना या भय से उत्तेजना के कारण बेचारे की वाणी मारी गयी। वह गूँगा हो गया और सम्भवतः विक्षिप्त भी। तभी तो ऐसी बातें बकता था। पता नहीं कहाँ गया। उस दिन के पश्चात् तो वह मथुरा में दीखा नहीं।' असुर कंस

को कौन बताये कि नन्द के उस श्याम कुमार का किसी भी भाव से दर्शन, स्पर्श पाने वाला फिर मथुरा की इस असुर-मण्डली का सदस्य नहीं रह सकता ? श्रीधर की वाणी जिसने ली, उसने उसके हृदय के तमस् को भी हर लिया। वह हरि तो पापहारी पहिले से है। श्रीधर क्या अब भोगों की प्राप्ति के लिये नरेश की सेवा करने मथुरा में रहता ?

'ब्राह्मण की क्या शक्ति और क्या चतुराई ! लेकिन यह काग—यह तो परम चतुर और पराक्रमी है। इसे क्या हो गया ?' कंस की समझ में बात न आयी और न आने की है। कागासुर अपनी काकबुद्धि एवं पराक्रम के बलपर ही उसे आश्वासन देकर गया था गोकुल। कुछ क्षणों पश्चात् ही तो वह सिंहासन के सम्मुख फट से गिरा।

'पता नहीं क्या बात है—कागासुर कहता था कि उसने जैसे ही उस लड़के को देखा, अपने-आप बलात् खिंच गया उसके समीप और फिर तो उसने मुट्ठी से पंख पकड़ कर ऐसा फेंका···! भला, दो—ढाई महीने का शिशु और किसी काग को पकड़ कर फेंक देगा—लेकिन···। कंस संदिग्ध हो गया है। क्या पता कि बात ठीक ही हो। कितनी भयंकर बात है !

जो गोकुल जाता है, वह या तो लौटता नहीं या लौटा तो अद्भुत बन जाता है वह !' कंस को आश्चर्य अधिक हो रहा है भय की अपेक्षा। इतनी पीड़ा मिली, इतना अपमान हुआ और अङ्ग पीड़ा से कराहते भी कागासुर पता नहीं क्या उलटी-पलटी शिक्षा दे गया। 'मूर्ख कहीं का ! अब काकभुशुण्डि के आश्रम में उनकी शरण जायगा !' कंस स्वतः ही गुर्राया। कोई असुर यह मूर्खतापूर्ण बातें सोचे, यह तो कलङ्क है असुरकुल के लिये।

'उत्कच पराक्रमी है और है भी शूर ! उसे कोई देख भी नहीं सकता !' कंस की आशा को एक आधार तो मिल ही गया है। डूबते को कोई बड़ा-सा बुलबुला दीख जाय तो भी तो वह एक हाथ मारने का साहस कर ही लेता है। आज तो अलक्ष्य देह, वायु-शरीरी, महाशूर उत्कच गया है गोकुल और गया है कागासुर की भर्त्सना करके बड़े गर्व से सबके सम्मुख आश्वासन देकर।

'उत्कच वायु-शरीरी है—कितनी अच्छी बात है ! उसे कोई नहीं देख सकेगा और बस.....।' कंस मन-ही-मन अनेक स्वप्न-सौध बनाने लगा है।

चाक्षुष मन्वन्तर में उत्कच ने लोमश के आश्रम के बहुत-से वृक्ष उखाड़ डाले, तोड़ डाले तो उन्होंने शाप दे दिया कि 'तू ने उन्मद वायु के समान तपोवन का नाश किया, अतः वायु-शरीर हो जा !' भला, इस शाप से उसकी तो शक्ति ही बढ़ी। वह और उन्मद हो गया। आज वह कंस को आश्वस्त करके गोकुल गया है।

'उत्कच वायु-शरीरी है। उसकी गति अत्यन्त तीव्र है। अबतक तो उसे लौट आना चाहिये था।' कंस के मन की कुशङ्काएँ आवृत्ति करने लगी हैं; किंतु आशा बड़ी प्रबल होती है। वह प्रतीक्षा कर रहा है—बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है।

'उत्कच ! उत्कच ! उत्कच !' बार-बार पुकारता है कंस। पत्ते हिले, कुछ शब्द-सा हुआ और उसे लगता है कि उसका वायु-शरीरी मित्र आया। अदृष्ट के करों की लेखनी बड़ी कठोर है। कंस कैसे जानेगा कि उत्कच अब की बार लौटने के लिये नहीं गया। प्रतीक्षा चाहे जितनी प्रबल हो, मित्र का पराभव चाहे जितना अकल्पित और दुःखद हो; पर नन्दनन्दन के जो प्रतिकूल है, उसे तो सदा अपनी इच्छा, आशा और कल्पना के प्रतिकूल ही संवाद सुनने हैं।

× × × ×

श्याम अब दो महीने से अधिक का हो गया। वह पलने में अपने कोमल अरुण कर-पल्लव एवं पङ्कजचरण उछालता है, किलकता है और पलने में लगे क्रीड़ा-शुक, सारिकादि को देख-देखकर प्रफुल्ल होता है। वह क्या किलकारियाँ लेता सरकने का प्रयत्न कर रहा है ? इसे चाहे जितनी बार सिरहाने खिसकाओ; हिलते, सरकते पलने के पैताने से जा सटेगा। पैर तो उछालने ही हैं इसे और कहीं ये कुसुम-कोमल चरण पलने की मणि-मण्डित स्वर्ण-पट्टिका से लग जायँ.....मैया को, गोपियों को, सेविकाओं को सदा सावधान रहना पड़ता है।

अच्छा—आज इसने अपने दाहिने हाथ से दाहिने चरण का अँगूठा पकड़ लिया है और उसे मुख में लेकर चूस रहा है। कज्जल को नेत्रों से इस चञ्चल ने कपोलों तक फैला दिया है और भाल का कज्जल-बिन्दु भी फैल गया है हाथ लगकर। दोनों हाथों के पृष्ठ पर कज्जल लगा है और देखने योग्य तो है यह अरुण मृदुल चरण की मध्यमा पर लगी काली कज्जल-रेखा। क्या विचित्र छटा है इस रेखा की भी। इस समय तो यह अँगूठा चूसने में मग्न है। इसे अभी यही तो आता है कि कुछ मुट्ठियों में आये तो झट उसे मुख में लेकर चूसा जाय।

'ये पतले नन्हे अधर, यह नेत्रों की स्थिर प्रसन्न भङ्गी और यह वक्ष की स्वर्णिम रोम-राजि-भ्रमरी!' गोपियों की दृष्टि जब भी इस रोमराजि पर जाती है, उन्हें बलात् हँसी आ जाती है। वे क्या जानें कि यह श्रीवत्स-लाञ्छन है। उन्हें तो स्मरण आता है कि उस दिन लाल को अङ्क में लेकर जब नन्दरानी दूध पिला रही थीं, उनकी दृष्टि इस रोमराजि पर पड़ी और वे अञ्चल से पोंछने का प्रयत्न करने लगीं इसे। कितनी सरला हैं व्रजेश्वरी! उन्होंने कहा था—'स्तनों से पता नहीं कब दूध की कुछ बूँदें टपक पड़ीं इसके वक्षपर और सूख गयीं। ये छूटती ही नहीं। तनिक तैल दो तो धीरे से इसे छुड़ा दूँ!' गोपियों ने परिहास में ही तैल-पात्र दिया और जब असफल व्रजेश्वरी ध्यान से इस रोमराजि को देखने लगीं तो कितना हँसी थीं वे। आज भी वह स्मृति इन्हें हँसा देती है।

'यह चपल—यह लो, पैर का अँगूठा मुख से छूट गया! अरे, यह तो रोने लगा! कितना मोहक, कितना मधुर है इसका रोना भी!' गोपियाँ उस रुदन का ही रस लेने लगीं। व्रजेश्वरी को पुकार देना चाहिये कि उनका हृदयधन दूध की प्यास लिये रो रहा है, यह भूल ही गया उन्हें। व्रज-रानी तो आज बहुत व्यस्त हैं। रात्रिभर सभी जगी हैं। आज नन्दनन्दन का जन्म-नक्षत्र है। यह व्रजजीवन आज दो मास, दस दिन का हो गया और नक्षत्र मास से तो पूरे तीन महीने हुए आज। व्रजराज स्वयं महर्षि शाण्डिल्य को बुलाने गये हैं। वे तो आते भी होंगे। व्रजेश्वरी को भला, श्रीरोहिणीजी आज क्या सहज अवकाश दे सकती हैं। उन्होंने स्वयं उपस्थित रहकर उनको विधि-पूर्वक स्नान करवाया है सेविकाओं द्वारा और अब अपने हाथों उनका शृङ्गार करने में लगी हैं। उन्हें किसी के द्वारा किया शृङ्गार आज रुचता जो नहीं है और जब वे व्रजरानी को सजाने लगी हैं, भला, शीघ्रता कैसे होगी।

'लाल ने करवट ली!' आनन्द से व्रजेश्वरी की छोटी देवरानी ललक उठीं। रोते-रोते यह अपने आप आज पहिली बार दाहिनी करवट हो गया।

'बधाई! बधाई! लाल ने करवट ली है!' दासियाँ दौड़ीं हर्षोत्फुल्ल इधर-उधर।

'नीलमणि ने स्वयं दक्षिण करवट बदली!' व्रजेश्वरी ने सुना, माता रोहिणीने सुना और दोनों के सब शृङ्गार-साज पड़े रह गये। दोनों दौड़ीं। मैया ने ललककर पुत्र को उठाया! उसे चुम्बन किया और हृदय से लगा लिया।

'श्याम ने स्वतः उत्थान किया!' व्रजराज महर्षि को लिये आ रहे थे, दौड़ते सेवक ने मार्ग में सूचना दी।

'तब तो जन्म-नक्षत्र के साथ आज ही कुमार का औत्थानिक महोत्सव भी है!' महर्षि शाण्डिल्य के नित्यगम्भीर मुख पर स्मित आया और उन्होंने अपने आनन्दविह्वल यजमान की ओर देखा।

'श्रीचरणों के आशीर्वाद से ही यह जन कृतार्थ है!' कण्ठ गद्गद हो रहा है। अञ्जलि बाँधकर व्रजपति ने मस्तक झुकाया। भला, गोकुल में क्या महोत्सव के लिये आयोजन करना पड़ता है। यहाँ तो नित्य महोत्सव है और आज का औत्थानिक महोत्सव—भला, व्रजराज की स्वीकृति की उसे कहाँ अपेक्षा है। आज तो उत्सव को ही स्वयं जैसे सार्थक होना है। व्रजनवयुवराज का

औत्थानिक पर्व—श्रीनन्दराय के साथ तो समाचार घर-घर, जन-जन तक पहुँच चुका और पहुँच तो जाना है उसे कुछ घड़ियों में ही पूरे व्रज में। गोपों ने, गोपियों ने तो महोत्सव के उपहार सजाने प्रारम्भ कर दिये होंगे और कुछ समय में तो गोकुल से बाहर के गोष्ठों की मण्डली आने लगेगी।

× × × ×

"मैया, मैं ब्राह्मण हूँ न ! ला, इसे मैं स्नान कराऊँगा।" यह भगवती पूर्णमासी का मूर्तिमान् आनन्द—यह मधुमङ्गल चाहे जब जो बन जायगा। आज तो वह महर्षि शाण्डिल्य के साथ मन्त्र-पाठ करने लगा है। 'हुँ—मैं अपनी दक्षिणा छोड़ दूँ क्या !' 'भगवती पूर्णमासी कहती हैं कि यह सदा इसी अवस्था में रहता है। पता नहीं कितने योगसिद्ध महापुरुष होते हैं।' ना, ना, मैया का वात्सल्य भला, मधुमङ्गल को योगसिद्ध कैसे मान ले। लेकिन है इसके बालकण्ठ का मन्त्रपाठ बड़ा ही श्रुति मधुर।

महर्षि ने सुकुमार श्याम अङ्ग में गोबर लगवाया व्रजेश्वर के करों से और मधुमङ्गल ने कपिला के पावनतम गोमूत्र का स्वर्णकलश उठा लिया—'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्!' मैया तो अवश्य मना कर देती—वह तो मना ही करने जा रही थी स्नेह से कि यह चपल कहीं कोई गड़बड़ी न करे; पर यह तो उसके साथ महर्षि और पूरा ऋषि-विप्र-मण्डल मन्त्रपाठ करने लगा स्वरसहित ! तब अवश्य यह भी कोई विधि होगी।

तू झट-पट बड़ा हो जा और अपने-आप इस धूलि में लोट-पोट हो लिया कर इस दाऊ की भाँति ! भला, दूसरे के द्वारा यह गोरज लगाना कहाँ तक भला लगेगा।' महर्षि तो गोमूत्र-स्निग्ध श्यामल अङ्गों को गोरज से स्वयं मण्डित कर रहे हैं और पता नहीं मधुमङ्गल यह क्या कह रहा है। यह तो अपनी ही धुन में रहता है और हाँ, दाऊ ने तो सचमुच पूरा स्नान कर लिया है गोरज से। मैया ने इसे स्नान कराया, तैल लगाया, अञ्जन किया आज अपने ही हाथों और भला, यह अब किसी की गोद में टिक सकता था। इसका छोटा भाई स्नान कर रहा है तो यह समीप बैठकर देखे भी नहीं। इसमें बड़ी बात क्या हुई जो पास रक्खी गोरज मुट्ठियों में भरकर इसने अपने ऊपर डाल ली और अब तो वह यह चला अपने अनुज को गोरज-स्नान कराने। महर्षि अन्ततः यही रज तो लगा रहे हैं। लो, उसने तो एक मुट्ठी डाल दी भाई के उदर पर और महर्षि की ओर देखकर हँसने भी लगा। भला, महर्षि इसे क्या रोकेंगे—वे तो हैं ही स्नेह की मूर्ति।

गोरज-मण्डित सुकुमार श्याम अङ्ग और उसपर यह पद्मगन्धा कपिला के उज्ज्वल धारोष्ण दूध की धारा। महर्षि शाण्डिल्य ने तो इस बृहत् स्वर्णपात्र में पाटल के मृदुल आस्तरण पर नन्दनन्दन को लिटाकर इस दुग्धाभिषेक के द्वारा जैसे सचमुच क्षीरसागर को ही मूर्तिमान् कर दिया। यह चञ्चल अपने लाल-लाल चरण उछालता इस दुग्धधारा को देखता कितना प्रसन्न हो रहा है।

'यह मार्गशीर्ष का मास—यह हेमन्त ऋतु—बहुत विलम्ब हो रहा है!' मैया को एक ही चिन्ता है। उसे लगता है कि उसके लाल को सर्दी लगती होगी; किन्तु महर्षि की विधि में कैसे बाधा दी जाय। यह तो अच्छा हुआ कि दूध से नहलाने के पश्चात् सुगन्धित उष्ण यमुना जल लिया गया और बाबा ने झट-पट स्नान कराके उपनन्दपत्नी की गोदमें दे दिया बालक को। उसके परम सुकुमार अङ्ग पोंछ दिये गये और गोद में वस्त्रों में छिपा लिया मैया ने उसे।

महर्षि तो देव-पूजन, मङ्गल-श्राद्ध तथा अन्य कृत्यों में कभी विलम्ब करते ही नहीं। पता नहीं कैसे सब काम सविधि करके भी वे इतनी शीघ्रता कर लेते हैं। मैया को लगता है कि अभी तो उसकी गोद में उसका लाल आया और अभी ही पुनः स्वस्तिवाचन है !

'ये परमतपस्वी, नित्यपवित्र, साक्षात् वेदस्वरूप विप्रगण—इनके मङ्गल आशीर्वाद कभी व्यर्थ जा ही नहीं सकते !' मैया के लिये यह तो परम आह्लाद की बात है कि ये तपोधन उसके पुत्र को आशीर्वाद देंगे।

श्री व्रजराज ने नीलमणि को अङ्क में लिया और महर्षि के साथ समस्त विप्रवर्ग ने सस्वर स्वस्ति-पाठ के साथ कुशों के अग्र-भाग से नन्हे सीकरों का अभिषिञ्चन प्रारम्भ किया।

अभिषेक समाप्त हुआ। नीलमणि माता की गोद में आया। वह क्षुधित तो होगा ही, मैया ने दूध पिलाना प्रारम्भ किया। लगता है कि इस स्नानादि में वह बहुत थक गया। माता के स्तनाग्र को मुख में लेते ही नेत्र बंद हो गये उसके, और दूध पीते-पीते ही वह तो सो भी गया।

आज पूरा नन्द-भवन कोलाहल-पूर्ण है। श्रीव्रजराज तो विप्रवर्ग के साथ बाहर चले गये और गोपों का स्वागत-सत्कार भी बाहर होगा ही; पर गोपियों का यूथ तो आता ही जा रहा है। आज नारायण ने यह परम सौभाग्य का अवसर प्रदान किया। सबका समुचित सत्कार होना चाहिये। आज तो मङ्गल-गान से भवन ध्वनित हो रहा है। भला, आज एकान्त कहाँ और बच्चे को तो कहीं ऐसे ही स्थान पर सुलाना चाहिये, जहाँ इसकी निद्रा भङ्ग न हो।

वह ऊँचा विशाल छकड़ा—आज ही तो इसे आँगन में लाया गया है। महोत्सव के लिये कक्ष पूरा रिक्त हो जाय, इस दृष्टि से कक्ष के दधि, दुग्ध, नवनीतादि के भाण्डों का एक बड़ा भाग इस पर रख दिया गया। कक्ष को खाली करने के लिये कितनी सुन्दर सूझ थी यह। मैया ने इधर-उधर देखा और उसकी दृष्टि छकड़े पर गई। 'यह खूब ऊँचा है! इसके नीचे पर्याप्त स्थान है और यहाँ एकान्त भी है। नीलमणि यहाँ सुखसे सो सकेगा!' छकड़े के धुरे में पलना लटकते कितनी देर लगनी थी। मैया ने धीरे से लिटाया श्याम को, दो-चार बार थपकियाँ दीं, तनिक देर धीरे-धीरे पलने को झुलाया।

'मैया, हम झुलायेंगे!' ये बालक तो श्याम के समीप ही सदा खेलते हैं। इन्हें तो दूर जाना जैसे कभी रुचता ही नहीं और ये भला, कभी नीलमणि को रुला सकते हैं। मैया को सम्मान्य गोपियों का सत्कार करना है। वह दूर से यहीं दृष्टि लगाये रहेगी। उसने समझा दिया कि पलना इतनी गति से अधिक न झुलाया जाय। सब बालक यहीं खेलें, कहीं भी चले न जायँ और जैसे ही नीलमणि उठे, उसे बुला लें।

'हम यहीं खेलेंगे और इसके उठते ही तुझे पुकारेंगे!' बालक तो चाहते हैं कि मैया किसी प्रकार जल्दी से चली जाय तो वे भली प्रकार अपने इस सोते नन्हे सखा को देखें और मैया चाहे या न चाहे, उसे यहाँ से तनिक हटना तो पड़ेगा ही। वे आ रही हैं गोपियाँ, वे तो इधर ही आ रही हैं गाती हुई बधाई देने। वे यहाँ आयीं तो उनकी गान-ध्वनि से यह जग जायगा। मैया स्वयं आगे बढ़कर इन गोपियों का स्वागत करे, यही तो उचित है!

× × × ×

'यह लो, यह तो जाग गया!' एक बालक ने देखा कि शकट के नीचे पलने में श्याम जग गया है! अब वह मजे से शकट की ओर देख-देख कर हाथ-पैर उछाल रहा है। कितना सुन्दर है इसका किलकना। बालक भूल ही गये हैं कि नन्दरानी से कहना भी है कि यह जाग गया है। वे तो सब एकत्र होकर देखने लगे हैं इसी की ओर।

'अच्छा, इसने तो पैर पकड़ लिया और अपना अँगूठा ही चूसने लगा है!' जैसे बालकों को स्वयं उस अँगूठे का रस प्राप्त हो रहा हो।

एक ओर बालक यह आनन्द ले रहे हैं और दूसरी ओर उत्कच अपने लिये अवसर ही नहीं पाता। यह महादैत्य—क्या हुआ जो वह वायुशरीरी है, वह पूतना-जैसा मूर्ख नहीं। वह देखते ही समझ गया है कि पलने में नन्दरानी ने जिस नील शिशु को शयन कराया है, वह कितना दुर्धर है। उत्कच जानता है कि इस बालक को स्पर्श करके असुरता टिक नहीं सकेगी।

'यहाँ छल भी क्या काम देगा।' पूतना ने ही क्या कम छल किया था। इस नन्हे बालक

के दीर्घ दृगों में जो अपूर्व ज्योति है--कैसे कोई माया टिक सकती है इस ज्योति के आलोक में। दैत्य समझ नहीं पाता कि वह क्या करे।

'यह शकट है तो खूब भारी। इस छकड़े पर पात्रों का भार भी पर्याप्त है। मैं इसे सहज ही अपने भार से दबा दूँगा। छकड़ा पिस उठेगा मेरे दबाते ही और···।' दैत्यने शकट में प्रवेश किया। वह उत्कच—शकटरूप शकटासुर हो गया।

'कितना सुन्दर है इसका रोना भी!' बालक तो बालक ही हैं। श्याम कब तक अपने अँगूठे को चूसे। इसे भूख लगी है। क्यों कोई उसे उठाकर दूध नहीं पिलाता? चरण छोड़ दिया इसने मुख से और रोने लगा। अपने हाथ-पैर उछाल-उछाल कर यह रो रहा है। इसके नन्हे अधर बार-बार आकुञ्चित होते और फैलते हैं। इसके विशाल कज्जलरञ्जित नेत्रों के कोनों में अश्रु आ गये हैं। इसकी यह रुदन-ध्वनि भी कितनी स्वरपूर्ण—श्रवणमधुर है! बालक तो इस ध्वनि को सुनने तथा इसकी चेष्टा को देखने में ही मग्न हो रहे हैं। मैया को कौन बुलाये। ये सब तो यह भी नहीं देखते कि छकड़ा बार बार कुछ 'चरमर-चरमर' कर रहा है।

'अब यह रोने लगा! अब कोई-न-कोई आयेगा और उठा लेगा इसे!' उत्कच—वही शकटासुर—उसे अब शीघ्र अपना कार्य पूर्ण कर देना है। नीचे यह रो रहा है मैया यशोदा का लाल। बहुत भूख लगी है इसे। यह पैर उछाल रहा है। कब तक प्रतीक्षा करे। क्यों छकड़े के नीचे मैया सुला गयी—इसे भी सम्भवतः इस छकड़े पर रोष है। इसे भी शीघ्रता है अपने काम की। छकड़ा कहता है 'चरमर चरमर·····अरर धम् धड़ाम्!'

× × × ×

'क्या हुआ? क्या हुआ?' गोप द्वार पर से दौड़े नन्दभवन में।

'राक्षसी—कोई राक्षसी आयी! दौड़ो, पकड़ो! भाग न जाय श्याम को लेकर! ये गोपियाँ पता नहीं क्या चिल्लाती दौड़ी आ रही हैं! इन्हें लगता है कि फिर कोई राक्षसी आयी होगी।

'मेरा लाल!' मैया गोपियों के सत्कार में कुछ भूल गयी थीं। छकड़े की ओर से दृष्टि दूसरी ओर चली गयी थी। 'यह धमाका! यह भड़-भड़, यह भयंकर शब्द!' उसकी दृष्टि छकड़े पर गयी और दो पद भी कहाँ दौड़ सकी वह। वह तो घूम कर गिर पड़ी पृथ्वी पर और मूर्छित हो गयी।

'बालक बच गया! श्याम सकुशल है!' 'धन्य है यह गोपी! इसने तो जीवन-दान दिया सब को।'

'श्याम सकुशल है!' दौड़ते गोपों ने सुना, जैसे सुधा-धारा कानों में पहुँची।

घनश्याम सकुशल है! बाबा ने स्वयं दुहराया और मूर्छित होते होते चेतना लौट आयी। वे छकड़े तक पहुँच ही सके इस ध्वनि की शक्ति का सहारा पाकर। पुत्रको उठाकर उन्होंने ध्यान से देखा उसका अङ्ग-अङ्ग।

'यह रहा नीलमणि! सकुशल है यह!' माता रोहिणी ने लाकर व्रजरानी के अङ्क में रक्खा उसे। बाबा ने हृदय से लगा लिया है पुत्र को; किंतु यह तो रो रहा है—रोता जा रहा है। इसे तो मैया ही चुप करा सकती है। उपनन्दपत्नी की गोद से वह रोहिणी जी की गोद में आया और रोहिणीजी को तो मूर्छिता व्रजरानी को चेतना देनी है।

'नीलमणि सकुशल है?' व्रजेश्वरी को जैसे विश्वास ही नहीं होता अपने नेत्रों पर। वे तो गोद में लेकर उसके अङ्ग-अङ्ग देख लेना चाहती हैं। सभी ने तो यही किया है। 'इतना भयंकर शब्द—नीलमणि कितना डर गया है! कितना भयभीत लगता है।' वह डर गया है या नहीं, कौन जाने, पर उसे भूख लगी है। होगा वह किसी का विश्वम्भर—पर इस व्रज में तो वह मैया के स्तन-पान के लिये क्षुधातुर है। रो रहा है—कब से रो रहा है। इतना भयंकर अपशकुन हुआ! भला, स्वस्तिपाठ के बिना कैसे मैया दूध पिला दें।

महर्षि शाडिल्य द्विजवर्ग के साथ पधारे। उन्होंने स्वस्ति-वाचन किया। कुश के अग्रभाग से पवित्र ओषधियुक्त जलसीकरों द्वारा तपस्वी ब्राह्मणों ने अभिषिञ्चन किया और तब मन्त्रवेत्ता, तपोमूर्ति विप्रवर्ग के अमोघ आशीर्वाद से निश्चिन्त होकर मैया ने अञ्चल में छिपाया नीलमणि को स्तनपान कराने के लिये।

× × × ×

नन्दभवन के कोने में वह विशाल छकड़ा छिन्न-भिन्न पड़ा है। उसके चक्के धुरे, कूबर—सब पृथक्-पृथक् हो गये हैं। उसके ऊपर के पात्र चूर-चूर हो गये हैं। दधि, दूध, नवनीत, घृत, तैल आदि सब वस्तुएँ एकाकार होकर बह रही हैं आँगन में। छकड़ा पूरे वेग से ठीक उलटा होकर गिरा है। इतना बड़ा झटका लगा है कोई कि वह समस्त वस्तुओं के साथ उलट गया। उसके चक्के, धुरे अलग-अलग जा गिरे। भगवान् नारायण ने रक्षा की! पलना शकट के नीचे रज्जु छिन्न होने से धीरे से सीधे ही गिरा। कहीं वह भी उलटा···! ओह! यहीं बहुत-से बालक थे—पर छकड़ा तो सीधे उलटा है।

'इस प्रकार शकट कैसे उलट गया?' बात तो पूरी ही शङ्का की है। इतना बड़ा लदा-लदाया छकड़ा तो दस-बीस गोप पूरा बल लगाकर भी उलट नहीं सकते। भार की अधिकता से तो वह किसी पार्श्व में ही ढुलक सकता था। यह तो जैसे किसी ने पीछे से पकड़ कर सीधे आगे उलटा फेंक दिया है।

'यहाँ तो केवल कुछ बालक थे!' बालक तो उस भयंकर शब्द को सुनते ही भय से भाग गये इधर-उधर; किंतु इतनी भयंकर दुर्घटना के कारण का तो पता लगाना ही चाहिये। 'कौन-से बालक थे यहाँ? उनसे कुछ तो पता लगेगा।' बालकों का अन्वेषण हुआ और उन्हें भला, बताने में क्या संकोच।

'मैंने देखा है, यह रो रहा था! खूब रो रहा था। इसीने अपने पैर से—इस पैर से—मार-कर छकड़ा उलट दिया।' बालक ने श्याम का लाल-लाल दाहिना चरण हाथ से पकड़कर बताया।

'हाँ, हाँ, इसीने छकड़ा उलटा! हमने भी तो देखा है!' अनेक लड़के यही कहते हैं। यह नन्हा-सा नीलमणि, आज ही यह स्वयं करवट ले सका है। इसका यह नवनीतसुकुमार किंशुक-अरुण चरण—ये सब बच्चे ही तो हैं! इनकी बातका ठिकाना क्या?

'कहीं बच्चों से ऐसे अकाण्ड का पता लग सकता है?' बच्चों से पता लगने से रहा। वे तो पूरे निश्चिन्त हैं कि इसी नन्हे नन्दलाल ने छकड़ा पैर से मारकर उलट दिया। बच्चों के अतिरिक्त यहाँ दूसरा कोई था नहीं, जिससे पूछा जाय।

× × × ×

उत्कच—शकटासुर—क्या हुआ उसका? उसका होना क्या शेष रहा? इस यशोदासुत के श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त करके फिर भी क्या कुछ शेष रहता है? उसका शरीर—उसका शरीर था ही कब? वह तो अदृश्य वायुशरीरी था और अदृश्य ही रह गया। अब भला, उसे इस मायिक जगत् में कहाँ दृश्य होना है। यह शकट—यह श्रीनन्दराय का छकड़ा अवश्य उलट गया। बर्तन तो फूट चुके। उनके टुकड़े तो फेंकने ही हैं और छकड़े को गोपों ने उठाकर फिर चक्र, धुरे यथास्थान बैठाकर लो! जैसे-का-तैसा कर दिया। रहा यह दूध-नवनीत-दधि आदि सो यह कपि, पक्षी आदि का समूह लग गया है—अभी वह इसका कण-कण सार्थक किये देता है।

—❀❀❀—

# नामकरण

*"क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।*
*गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित्"* ॥

—भागवत १०।५१।३८

श्याम सौ दिन का हो गया। शास्त्रीय विधि तो यही है कि द्विजाति बालकों का नामकरण उनके जन्म से अधिक-से-अधिक सौ दिन के भीतर कर दिया जाय। आज यह अन्तिम दिन है; लेकिन गोकुल में, नन्दभवन में तो इसका कोई आयोजन ही नहीं। अभी भी श्रीरोहिणीतनय दाऊ नाम से पुकारे जाते हैं और नन्दनन्दन को लोग नीलमणि, श्याम आदि स्नेह के नामों से ही पुकारते हैं। नामकरण तो दोनों भाइयों का ही नहीं हुआ।

'नीलमणि परसों सौ दिन का हो जायगा.....।' श्री रोहिणीजी ने व्रजरानी से कितने स्नेह से आग्रहभरे स्वर में कहा था। वे सम्भवतः कहना चाहती थीं—उनकी बात कहाँ पूरी हो पायी। व्रजेश्वरी ने तो इस भावभरी दृष्टि से देखा है कि अब कैसे कोई आग्रह करे। उनकी तो दृष्टि ही कहती है कि 'व्रजपति आपकी कोई सेवा भले न कर पायें; भला, अवमानना का कोई अपराध कैसे करेंगे। आप यह आग्रह तो न करें! व्रजपति ने कौन-सी ऐसी भूल की है कि दाऊ पराया माना जाय।' दाऊ को अङ्क में लेकर सचमुच मैया के नेत्र भर आये, अब माता रोहिणी को चर्चा बदलनी ही है।

'आज श्याम सौ दिन का हुआ! विधि पालन की जाती तो आज तो अवश्य उसका नामकरण होता!' प्रातः उठते ही बाबा के, माता रोहिणी के और मैया के मन में यही बात आयी। आयी तो यह बात समस्त व्रजवासियों के मन में। कितना उल्लास का समय—कैसा महोत्सव होता!' सब बाबा और मैया-जैसे तो नहीं कि बात मन में आयी-गयी हो जाय। सबको तो नामकरण-महोत्सव जैसे नेत्रों के सन्मुख ही लगता है। सब कंस को कोस रहे हैं। उसी के उत्पात से तो आजतक श्याम का नामकरणोत्सव रुका है।

× × × ×

बाबा यह गोष्ठ में क्या कर रहे हैं? गोपों ने तो गायें खोल दीं और उन्हें चराने ले गये। सेवकों ने गोष्ठ स्वच्छ कर लिया। अब तो यहाँ छोटे बछड़े और सद्यःप्रसूता गायें ही रही हैं। सेवक इनकी भी व्यवस्था करके गोष्ठ से चले गये हैं बाहर और व्रजराज क्या कर रहे हैं यहाँ? आज सम्भवतः रिक्त गोष्ठ की स्वच्छता और गायों की सुविधा का निरीक्षण करना है। अपनी पूजा से उठकर तभी तो आ गये हैं यहाँ।

'कौन है? यहाँ गोष्ठ में कौन आ रहा है?' गायें और बछड़े तो द्वार की ओर सहसा देखने लगे हैं। इनकी भङ्गी बतलाती है कि कोई आ रहा है। बाबा ने अपने पशुओं की भङ्गी देखी और द्वार की ओर मुख फेरा। 'ओह, महर्षि गर्ग!'

'यह वृष्णिवंशीय गोप पार्जन्य नन्द श्रीचरणों में प्रणत है!' बाबा ने भूमि में पड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। आज यह गोष्ठ पावन हुआ! मेरे अनेक जन्म के सुकृत सफल हुए।' यह केवल शिष्टाचार नहीं। बाबा के नेत्रों से अश्रु झर रहे हैं और उनका शरीर गद्गद हो गया है।

'व्रजराज, कल्याण हो आपका! आप तो साक्षात् सुकृत की मूर्ति हैं! आपके पुण्यप्रभाव को कोई कैसे समझ सकता है!' महर्षि ने दोनों हाथों से उठाया व्रजपति को। महर्षि के चरणों

पर पुनः मस्तक रखकर बाबा उठे किसी प्रकार। महर्षि मथुरा से चलकर आये हैं, श्रान्त ज्ञात होते हैं। गोष्ठ में ही बाबा ने आसन पर अपना उत्तरीय बिछा दिया महर्षि के लिये।

'यदुकुल के आचार्य महर्षि गर्ग गोष्ठ में पधारे हैं!' गोष्ठरक्षक क्या इतनी सूचना भी माता रोहिणी को पहुँचाने में विलम्ब कर सकते हैं। इसके लिये व्रजेश की आज्ञा की आवश्यकता भी क्या है।

'आचार्य पधारे!' माता रोहिणी ने झटपट आसन छोड़ दिया। 'बहिन, तू भी नीलमणि को ले चल! आचार्य का क्या ठिकाना कि भवन में आवेंगे ही। वे परम विरक्त हैं। उनके श्रीचरणों की वन्दना का सौभाग्य मिलेगा और बालकों को आशीर्वाद देंगे आचार्य!' माता रोहिणी तो प्रेमवश ही यह सब कह गयी हैं। मैया तो नीलमणि को पहले आचार्य के चरणों में रखकर इसके लिये उनकी मङ्गल-आशिष् पाने को उत्सुक हैं। गोष्ठ में और किसी को चलना नहीं चाहिये। पता नहीं आचार्य व्रजपति के पास क्यों मथुरा से आये हैं।

× × × ×

'यह महाभाग वसुदेवजी का पुत्र है!' बाबा के क्या इस परिचय की आवश्यकता है। यदुकुलाचार्य महर्षि गर्ग क्या श्रीरोहिणीजी की अपार श्रद्धा से अपरिचित हैं! लेकिन बाबा ठीक ही तो कह रहे हैं! महर्षि आसन से उठ खड़े हुए हैं और उनके नेत्रों से धाराएँ चल रही हैं। वे तो एकटक मैया यशोदा की गोद की इस ज्योतिर्मय निधि को देख रहे हैं। देख रहे हैं केवल। उनका शरीर तो स्थिर हो गया है। बाबा को बड़ा आश्चर्य है कि महर्षि को क्या हो गया है।

'यह है श्रीचरणों के आशीर्वाद का आकाङ्क्षी गोपाल!' गोपाल—गोपाल—सचमुच ही तो यह गोपाल है। बाबा के अतिरिक्त इसका ठीक नामकरण कौन कर सकता है।

'गोपाल!' अपने चरणों पर उस नीलोज्ज्वल शिशु को मैया को रखते देख महर्षि कुछ सावधान हुए। उन्होंने देखा, उनके एक चरण को यह तडित्प्रभ गौर शिशु अपने कोमल करों से थपथपा रहा है, माता की गोद से नीचे बैठकर। पता नहीं वह कोई सूचना दे रहा है या नहीं; पर दूसरे चरण पर व्रजरानी ने अपने नीलमणि को रख दिया है और वह तो महर्षि की ओर ही मुख उठाकर हँस रहा है। महर्षि ने उठा लिया गोद में उसे। ओह, इतना आनन्द! यह स्पर्श! जैसे रोम-रोम में आनन्दसिन्धु लहराने लगा हो। शिशु को गोद में लिये ही महर्षि बैठ गये आसन पर।

'आज श्याम सौ दिन का हो गया! आज उसके नामकरण की अन्तिम तिथि है। ये यदुकुल के आचार्य पधारे हैं! यदि ये कृपा करें—दाऊ के साथ श्याम का भी नामकरण कर दें ये! भला, इतना महान् ज्योतिर्विद्, त्रिकालदर्शी महापुरुष कहाँ मिलेगा फिर इस संस्कार के लिये!' बाबा के मन में यह संकल्प सहसा उठा है और हलचल मची है। व्रजेश को क्या पता कि माता रोहिणी और मैया भी यही सोचने में तल्लीन हैं। बाबा कबतक अपने को रोके रहें। महर्षि तो नीलमणि को गोद में लेकर विभोर हो रहे हैं। यह ठीक कि बच्चों को वाणी से आशीर्वाद भी नहीं दिया उन्होंने; पर आशीर्वाद क्या वाणी से ही दिया जाता है। महर्षि की यह स्नेहपूर्ण भङ्गी—आशीर्वाद कहाँ शेष रहा है; लेकिन बाबा को केवल आशीर्वाद ही तो नहीं चाहिये। उन्होंने अञ्जलि बाँधकर महर्षि के चरणों में मस्तक झुकाया। महर्षि ने देखा—देखाभर! अब भी वे बोल नहीं सकेंगे; किंतु उनके नेत्र कहते हैं 'व्रजराज, आप क्या चाहते हैं? मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य कर सकता हूँ? आप क्यों संकोच करते हैं!'

'अभी तक इस रोहिणीकुमार का नामकरण संस्कार नहीं हुआ और आज ही गोपाल भी सौ दिन का हुआ है! यदि श्रीचरणों का अनुग्रह हो तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ!' बहुत ही नम्रता एवं आग्रहभरी वाणी में प्रार्थना की व्रजराज ने।

'क्या कह रहे हैं ये नन्दराय!' जैसे महर्षि को कुछ स्मरण आ गया हो—कोई भूली बात जैसे मन में सहसा आयी हो। एक क्षण में ही महर्षि ने मुख गम्भीर कर लिया। 'आपका यह

आग्रह कैसे उचित हो सकता है। आप अपने कुल-पुरोहित से अपने पुत्र का संस्कार करायें!' बात तो ठीक है। महर्षि शाण्डिल्य जब हैं ही तो दूसरे को उनका स्वत्व क्यों दिया जा रहा है?

'ब्राह्मण तो जन्म से ही सबके गुरु होते हैं!' व्रजेश की वाणी में आग्रह, दीनता, विवशता—पता नहीं, क्या-क्या है। उनका यह स्वर सुनकर भी कोई उनकी बात न माने, कैसे हो सकता है यह।

'नन्दरायजी, मैं आपकी नम्रता और शालीनता से प्रसन्न हूँ। आपने अपनी सहज सरलता से ही नहीं कहा कि महर्षि शाण्डिल्य तो परम वीतराग हैं और नाम-करण कुलपुरोहित की अपेक्षा ज्योतिर्विद् की ही अधिक अपेक्षा करता है।' महर्षि की वाणी में तटस्थता के स्थान पर स्नेह आया। 'लेकिन सभी यह जानते हैं कि मैं यदुकुल का आचार्य हूँ। देववाणी ने देवकी के अष्टम गर्भ से कंस को मारनेवाले का जन्म बताया था और कंस ने वसुदेवजी की जिस लड़की को पटकना चाहा, उसने आकाश में स्थिर होकर कहा था कि 'तेरा शत्रु कहीं प्रकट हो गया।' कंस को संदेह है कि देवकी की आठवीं संतान कन्या नहीं होनी चाहिये। इधर संयोगवश आपके पुत्र के पास पहुँचकर पूतना-जैसी महाराक्षसी मर चुकी है। आपका अपने भाई वसुदेवजी से अत्यन्त प्रेम है, यह भी कंस जानता ही है। अब यदि आपके पुत्र का नाम-करण संस्कार करा दूँ तो कंस को लगेगा कि यह देवकी का पुत्र है। कहीं इस आशङ्का से वह इसे मारने ससैन्य गोकुल पर चढ़ाई कर दे—कितना बड़ा अनर्थ हो जायगा!'

महर्षि ने दाऊ के नाम-करण के सन्बन्ध में कुछ कहा ही नहीं। तब क्या दाऊ का नाम-करण वे स्वीकार कर लेंगे? श्याम का नामकरण भी कर दें—अतीन्द्रिय ज्योतिर्विज्ञान के परमाचार्य—इनसे उपयुक्त महापुरुष कहाँ प्राप्त होगा जो इन शिशुओं के भविष्य को बता सके। बाबा दो क्षण चुप रहे, कुछ सोचते रहे और फिर बड़ी नम्रता से अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की उन्होंने—'मैं तो आपकी कृपा की ही याचना कर सकता हूँ! आप—जैसे महापुरुष हम दीनचित्त कृपण गृहस्थों पर दया करने को ही बड़ा पुण्योदय होने पर यदा-कदा दर्शन देते हैं। आपके परमपावन करों से केवल स्वस्तिवाचन भी हो जाय तो मेरा और इन शिशुओं का सौभाग्य! मेरे सगे भाई भी इस गोष्ठ में नहीं हैं। बिना किसी आयोजन के यहीं एकान्त में आप स्वस्तिपाठ के अनन्तर यदि इनका नाम-करण करके आशीर्वाद दे दें.....।' मस्तक रख दिया व्रजेन्द्र ने आचार्य के चरणों पर।

भला, महर्षि गर्ग इस प्रार्थना को अस्वीकार कैसे कर दें। वे तो आये ही हैं श्रीवसुदेवजी की प्रार्थना स्वीकार करके इसी कार्य से। यह संस्कार एकान्त में हो जाय, इसीलिये तो उन्होंने यह पद्धति अपनायी है। अतः प्रार्थना तो स्वीकार करनी ही है। महर्षि ने सानन्द कह दिया—'आप की इच्छा पूर्ण हो!'

जब कोई आयोजन करना ही नहीं है तो कुश तथा जल प्राप्त होने में कितनी देर। आचार्य ने बड़ी ही एकाग्रता से स्वस्तिपाठ किया और तब दाऊ को अङ्क में उठाया उन्होंने—'यह श्रीरोहिणीजी का कुमार अपने सद्गुणों से समस्त सुहृदों को प्रसन्न करेगा। सबका हृदय इसके गुणों में ही रमण करेगा, अतः इसका नाम राम है। यह अत्यन्त बलशाली होगा, अतः इसे बल भी कहा जायगा और मथुरा तथा गोकुल के समस्त सुहृदों के हृदय अपने में ही आकृष्ट किये रहने के कारण यह संकर्षण कहलायेगा!' माता रोहिणी ने आचार्य के श्रीचरणों के सम्मुख अञ्चल फैलाकर भूमि में मस्तक रक्खा। आचार्य ने दाऊ को बाबा की गोद में दे दिया और नीलमणि को लिया अङ्क में।

'व्रजराज तुम धन्य हो!' नीलमणि को अङ्क में लेते ही पता नहीं क्यों महर्षि भाव-विह्वल हो जाते हैं। किसी प्रकार उन्होंने सम्हाला अपने को—'यह तुम्हारा लाल पहिले युगों में क्रमशः श्वेत, रक्त तथा पीत रूप धारण कर चुका है। इस बार यह यहाँ कृष्ण हुआ है। इस बार इसका नाम कृष्णचन्द्र है!' कृष्ण—कृष्णचन्द्र—कितनी मधुरिमा, कितना आनन्द, कितना अमृत-

घन है यह नाम! इन दो अक्षरों में कितना माधुर्य है! महर्षि तो इनके उच्चारण में ही भाव-विह्वल हो रहे हैं।

कृष्णचन्द्र—यह पहिले युगों में श्वेत, रक्त एवं पीत वर्ण धारण कर चुका है। पता नहीं महर्षि का तात्पर्य नर-नारायण, नृसिंह एवं वामन भगवान् से है या श्वेतद्वीपपति शशिवर्ण आदि नारायण, भगवान् ब्रह्मा एवं हिरण्मय विराट् से। बाबा भला, यह सब क्या जानें। हाँ, उनका यह लाल अब कृष्णचन्द्र है, यही ठीक।

'पहिले कभी तुम्हारा यह पुत्र देवकीजी की गोद में श्रीवसुदेवजी का पुत्र हो चुका है, अतः जाननेवाले लोग इसे वासुदेव भी कहेंगे!' पता नहीं महर्षि कब की बात कहते हैं। इन त्रिकालज्ञ के लिये तो सभी काल वर्तमान ही हैं। बाबा का वसुदेवजी से जो सौहार्द है, वह क्या इसी जन्म का है। यह तो सभी अनुभव करते हैं कि यह बन्धुत्व युग-युग से ऐसा ही है।

'तुम्हारे इस पुत्र के बहुत-से नाम हैं और बहुत-से रूप हैं; वे नाम और रूप इसके गुण एवं कर्मों के अनुरूप ही हैं। उन नाम और रूपों को मैं तो जानता हूँ, पर लोग नहीं जानते।' अवश्य महर्षि इसके पूर्वजन्मों की बातें कह रहे होंगे। नहीं तो भला, इसके अनेक रूप कैसे हो जायँगे? लेकिन महर्षि को इस समय यह ध्यान नहीं कि उनके किस वाक्य का कैसा अर्थ व्रजेन्द्र एवं मातायें समझ रही हैं! महर्षि के अर्धनिद्रित-से नेत्र श्याम के मुख पर स्थिर हैं और कहते जा रहे हैं वे अब तो नाम की बात छोड़कर वे इसके भावी गुणों और कार्यों का संकेत करने लगे हैं—'यह सम्पूर्ण गोप एवं गोवंश को आनन्दित करेगा। यह आपलोगों का परम कल्याण करेगा। इसके आश्रय से आपलोग सम्पूर्ण कठिनाइयों से—संसार से पार हो जायँगे। व्रजेश, पहिले से इसीके द्वारा दस्युओं से पीड़ित साधुजनों की रक्षा होती आयी है और यही गर्वोन्नत दस्युओं को जीतता रहा है। जो मनुष्य इससे प्रेम करेंगे, वे महा भाग्यवान् हैं। इसके आश्रितों को शत्रु वैसे ही नहीं दबा सकेंगे, जैसे भगवान् विष्णु के आश्रित देवगणों को असुर पराजित नहीं कर पाते! नन्दरायजी, आपका यह पुत्र श्री, कीर्ति तथा प्रभावादि समस्त गुणों में नारायण के समान है! आप इसकी खूब एकाग्रता से रक्षा करें!'

महर्षि ने जिस सांकेतिक परा वाणी का आश्रय लिया है—अन्ततः यह परतत्व—यह पुरुषोत्तम भी तो 'परोक्षप्रिय' है। इसका वर्णन क्या सामान्य वाणी कर भी सकती है? बाबा, माताएँ—भला, रहस्य, संकेत, श्लेष से क्या काम इन्हें। इनके ये राम और कृष्ण—हाँ, अब यह दाऊ तो राम हो गया और नीलमणि कृष्ण। ये बड़े प्रभावशाली होंगे, आपत्तियों से व्रज को बचायेंगे और कोई शत्रु इन्हें पराजित नहीं कर सकेगा—बस, बाबा को और माताओं को तो इतने से ही जीवन का परम फल प्राप्त हो गया।

'मेरा सर्वस्व—समस्त गोधन, गोकुल का सम्पूर्ण कोष·····!' बाबा भला, क्या दें महर्षि को दक्षिणा में, वे कहाँ सोच पाते हैं।

'व्रजेन्द्र, मैंने आज क्या नहीं पाया!' महर्षि ने बोलने नहीं दिया पूरा वाक्य। 'यह स्थूल ऐश्वर्य—ब्राह्मण इसके लिये तो अकिंचन ही अच्छा और जो हमारी परम सम्पत्ति है, जन्म-जन्म, युग-युग की साधना से जिसे अर्जित करने की आशा भी प्रायः आशा ही रहती है···मैं पूर्ण हो गया! मुझे आज सब कुछ प्राप्त हो गया! नन्दरायजी! आपका स्नेह, आपका अनुराग पाया मैंने और आप के कुमारों का आचार्य बना मैं···।' आचार्य तो परम उदार हैं। वे सदा से ही नितान्त वीतराग एवं पराकाष्ठा के आत्मतुष्ट अपरिग्रही हैं। स्नेह ही उन्हें तुष्ट करता है। उनका इस प्रकार भाव-विह्वल होना स्वभाविक ही है।

आचार्य जानेके लिये उठ खड़े हुए। व्रजपति जानते हैं कि प्रेमाश्रु के अमल धवल पावन रत्नों के अतिरिक्त और कुछ इन श्रीचरणों में स्वीकृत होने की आशा नहीं और इन रत्नों के व्रजेश सदा से धनी हैं। धनी तो हैं वे अखिल ऐश्वर्य के और उस ऐश्वर्य के शाश्वत अधिपति के भी।

आचार्य जाना चाहते हैं—जाना चाहिये, इसलिये जाना चाहते हैं। भला, इस नन्दनन्दन के समीप से कोई क्या कभी स्वेच्छा से हटना चाहता है; परन्तु अधिक विलम्ब करने से लोगों को पता लग सकता है, बात फैलने से तो सब प्रयत्न ही व्यर्थ हो जायगा। किसी प्रकार महर्षि ने विदा ली। किसी प्रकार ही उनके पदों में शिशुओं को रखने के पश्चात्, प्रणिपात करके व्रजेश ने स्वीकार किया कि वे दूर तक पहुँचाने न जायँगे। महर्षि की आज्ञा—शिशुओं की कल्याण-भावना—किया क्या जाय, गोष्ठ-द्वार पर ही प्रणाम करने को विवश होना ही पड़ा।

× × × ×

राम—गोपों को, गोपियों को कितना प्रिय है यह नाम! माता रोहिणी ने कितना सुन्दर नाम चुन लिया है अपने कुमार का! कौन जाने व्रजरानी या व्रजेश ने चुना हो। राम—यह दाऊ सच-मुच राम ही तो है। इसे देखा और चित्त रमा इसमें और यह कृष्णचन्द्र—व्रजेन्द्र अपने पुत्र को श्याम के बदले स्नेहवश कृष्णचन्द्र कहते हैं तो अस्वाभाविक क्या है। चन्द्र—भला, चन्द्र किस तुलना में है इस कृष्ण के। कृष्णचन्द्र—लेकिन यह गोपियों के लिये है कुछ बड़ा-सा नाम—उन्होंने इसका एक संस्करण कर लिया छोटा सा—कन्हैया और अब कोई कनू ही कहे तो उसके अन्तर के अपार आह्लाद को रोक कौन लेगा। यह कनू तो है ही सबका। जिसके जो मन में आये, उसके लिये इसका वही नाम!

—❀⊂❀⊃❀—

# भूमि का भाग्य

*"लीलया ललितयावलम्बितं मूलगेहमिव मूर्तिसम्पदाम्।*
*नीलनीरदविकासविभ्रमं बालमेव वयमाश्रयामहे ॥"*

—श्रीलीलाशुक

अरुणवितान-मण्डित पथ, अरुणपरिधान सेवक और ये शतपत्र पद्म की मालाएँ; हेमन्त में गोकुल का यह नवकुङ्कुम-मण्डित पथ, राग-रञ्जित दिशाएँ—आज श्याम कक्ष से बाहर प्राङ्गण में आयेगा। कन्हाई आज सूर्य-दर्शन करेगा। उसका यह चतुर्थ मास चल भी तो रहा है। उस दिन गोष्ठ में मैया उसे अञ्चल में छिपाकर ले गयी। गोपों को क्या पता कि उसी दिन महर्षि गर्ग का आशीर्वाद प्राप्त हुआ उसे और उसी दिन वह कक्ष से बाहर आया। आज भगवान् सूर्य की आराधना का दिवस है। आज रक्तचन्दन के मण्डलों से गृहद्वार और करवीर पुष्पों की मालाओं से स्तम्भ भूषित हो गये हैं।

नन्दनन्दन आज भगवान् आदित्य का दर्शन करेगा। दिशाएँ स्वच्छ, प्रसन्न हो गयी हैं। मन्द, मन्दतर सुरभित पवन के पद भी इस प्रेमभूमि पर थकित हो रहे हैं। इस हेमन्त में गोपों को लगता है कि आज कुछ अधिक शीत बढ़ गया है।

बाबा तो ब्राह्ममुहूर्त के प्रारम्भ में नित्य कालिन्दी-स्नान के अभ्यासी हैं। महर्षि शाण्डिल्य ने अरुणोदय-काल में ही पूजन प्रारम्भ करा दिया। श्याम आज सूर्य-दर्शन करेगा—वह बाल-रवि के कोमल करों को सहन करले, यही क्या कम है। कन्हाई क्या भास्कर की उज्ज्वल किरणों में आने योग्य है अभी ? यह हृदय के राग से लालित—दिनमणि की नवरागरञ्जित कोमल किरणें ही इसका स्पर्श पा लें—आज तो इतना ही बहुत है।

मैया ने आज अरुण कौशेय-वस्त्र धारण किया है। उसके अङ्क में यह नील-सुन्दर—इसके कोमल अरुण चरण; इन चरणों की मृदुल ज्योतिर्मय अरुणाभा कोई कहाँ से पाये ! यह तो मैया का ही अङ्क-भूषण है। महर्षि शाण्डिल्य शीघ्रता कर रहे हैं। बाबा को तो और भी शीघ्रता है। गणपति-पूजनादि से लेकर नान्दी-श्राद्ध तक के समस्त कृत्य तो हो चुके। अब तो स्वस्तिपाठ तथा शङ्ख एवं घण्टे के तुमुल नाद के मध्य मैया अपने लाल को कक्ष से बाहर अङ्क में लेकर आयी है भगवान् भास्कर को अर्घ्य देने।

स्वर्ण के इस सुविस्तृत थाल में ये रक्तचन्दन से चित्रित कमलदल और उनके मध्य यह आदिबीज-मण्डित सूर्य-मण्डल। मैया तो व्रजेश के वाम भाग में बैठ गयी है भगवान् सूर्य की पूजा के लिये। कुङ्कुमरञ्जित अक्षत, रक्ताम्बर, अरुण सूत्र, रक्त चन्दन - आज की पूजा के उपकरण तो सभी लाल रङ्ग के हैं। यह सब तो हैं; पर यह कन्हाई तो इधर-उधर देख रहा है। यह तो चकित-सा चारों ओर देख रहा है। इसका किलकना, हाथ पैर फेंकना और यह देखना इधर-उधर—पता नहीं क्यों आनन्द-मग्न है। आज आँगन में आकर पूरा प्रसन्न है यह और गोकुल को तो आराधना का यह प्रत्यक्ष फल प्राप्त हो रहा है—नन्दनन्दन प्रसन्न है।

'एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते !'

उठी यह करवीर-कुसुम-पूरित, रक्तचन्दन-रञ्जित अर्घ्य की अञ्जलि; गूँजा महर्षि का मन्त्रपाठ और वह उठा क्षितिज पर भानुबिम्ब ! भगवान् भास्कर जैसे इस अञ्जलि को स्वीकार करने आतुरतापूर्वक ऊपर उठते आ रहे हैं। मैया ने मस्तक झुकाया और अब तो श्याम को कक्ष में चले ही जाना चाहिये।

× × × ×

कन्हाई अब पलने पर लोट-पोट हो लेता है। अब यह पेट के बल उलट जाता है और चरणों को फेंक फेंक कर आस्तरण को अस्तव्यस्त कर दिया करता है। अब इसने पलने में खिसकना सीख लिया है इधर-से उधर उलट पुलट कर और दोनों करों के सहारे तनिक-तनिक उचकने का प्रयत्न भी करने लगा है।

"नीलमणि बैठने लगेगा! यह घुटनों के सहारे धीरे-धीरे चलेगा! मेरी अँगुलियाँ पकड़ कर खड़ा हो जायगा! पता नहीं कब मेरा लाल ठुमक-ठुमुक कर चलेगा! कब यह अपनी तोतली बोली में मुझे 'मैया' कहेगा!" मैया पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है। इसके मनमें जाने कितनी उमंगें हैं। कान्ह का यह पाँचवाँ मास है। श्रीव्रजराज ने महर्षि से मुहूर्त पूछ लिया है। कल यह भूमि पर बैठेगा। कल इसे धरा का स्पर्श प्राप्त होगा।

कितना सुकुमार है! कितने मृदुल अङ्ग हैं इसके! करों में लेने के समय भी तो मैया अनेक बार ठिठक जाती है। अनेक बार यह रोता है मैया की गोद के लिये—कौन जाने क्षुधा लगने पर दूध के लिये रोता हो और मैया इसे उठाने को हाथ बढ़ाकर भी थकित-सी रह जाती है। कहीं इसे इन करों के स्पर्श से कष्ट न हो। इतना बड़ा व्रज, इतना अपार ऐश्वर्य व्रजराज का; किंतु मैया को संतोष नहीं हुआ अपने लाल के आस्तरण से कभी। कभी उसे ऐसा आस्तरण नहीं मिल सका, जिसपर संतुष्ट होकर वह श्याम को सुला सके। बार-बार करों से आस्तरण स्पर्श करके बदलना और फिर छूना—पता नहीं क्या व्रजराज कोई अच्छा-सा कोमल आस्तरण नहीं ला देते। सदा विवश होकर कन्हाई को इन्हीं आस्तरणों पर सुलाना पड़ता है। जिसकी मृदिमा नवनीत को भी लज्जित करे, दुग्ध-फेन के स्पर्श में भी जिसके लिये कठोरता का ही अनुभव हो, जननी के उस अतुल मातृत्वसम्भार को क्या जगती उपयुक्त आस्तरण दे सकती है? कितनी विडम्बना है—उसका वह लाल भूमि पर बैठेगा! भूमि का स्पर्श करेगा वह!

'कनूँ भूमि पर बैठेगा! इसके अङ्गों में शक्ति आयेगी! यह बैठने लगेगा! घुटनों सरकने लगेगा और·····!' मैया के मानस की अद्भुत गति हो गयी है। वह प्रसन्न हो या भीत—दोनों भावों के अपार हिंडन चल रहे हैं वहाँ।

× × × ×

आज कन्हाई भूमि पर बैठेगा—वह व्रजधरा का स्पर्श करेगा! अभी तक तो वह अङ्क में और पलने में ही रहा है। आज भूमि के भाग्य जगेंगे—धरा धन्य होगी आज। श्यामसुन्दर का आज भूम्युपवेशन-संस्कार है। सम्भवतः भूमि भी इसे अनुभव करती है, समझती है। ये मणियों के नूतन प्रादुर्भाव—यह नैसर्गिक मण्डल, आज तो चारों ओर सर्वतोभद्र, स्वस्तिकादि पुण्य मण्डल ही दृष्टि पड़ते हैं। मणियों से ही नहीं, तृणों से, पुष्पों से, पत्रों एवं अङ्कुरों से—सर्वत्र मङ्गलमय सुचित्रित हो गयी है पृथ्वी। किसी अलक्ष्य चित्रकार की तूलिका घूम रही है—घूम रही है अविश्रान्त और गोकुल की धरा क्षण-क्षण नूतन सज्जा पाती जा रही है।

राजपथ, गलियाँ, प्राङ्गण—आज तो पूरा गोकुल श्रीयमुना के पावन जल एवं गोमय से उपलिप्त हो गया है और गोपियों ने इसमें शालिचूर्ण, हरिद्रा, कुङ्कुमादि से जिस कोमल कुसुमकला का अङ्कन किया है—किसकी तूलिका में साहस है कि इसकी छाया का भी स्पर्श कर सके।

गोपों ने तोरण बनाये हैं, बंदनवार सजाये गये हैं और मणिप्रदीपों के आलोक में ब्राह्म-मुहूर्त में ही जगमग करती, मल्लिका के मादक पराग से झूमती दिशायें, आज विकच कमल की मालाओं ने धरती को मण्डल प्रदान किये हैं। स्तम्भाधारों पर और धरणी—आज यह सामान्य मर्त्यधरा कहाँ है। धरा तो गोकुल के अवतरण से ही धन्य हो गयी और उसे आज गोपों ने जी भर सजाया है। आज गोपाल उसपर अपने नन्हे कोमल अरुण कर रखेगा।

× × × ×

कपिला का पुनीत गोमय, मैया ने स्वयं अपने करों से इस मण्डप को उपलिप्त किया है

और माता रोहिणी ने एकान्त मन से ये विविध रङ्गों के मण्डल चित्रित किये हैं। श्याम भूमिपर बैठेगा! कोमल-कलेवर कन्हाई को धरा का कठोर स्पर्श होगा! बालक रो पड़े इस पावन संस्कार के समय, यह तो ठीक नहीं है। वह नवनीत-कोमल—इन भड़कीले विचित्र मण्डलों में कदाचित् उसका चित्त लग जाय। कदाचित् वह उन्हें देखने में तनिक भूल जाय कष्ट को।

धरा का पूजन—भूदेवी क्या करें! वे कह पातीं, बाबा के श्रीचरणों का स्पर्श पाकर ही वे धन्य हो गयी हैं। उनकी प्रसन्नता के लिये क्या बाबा को पूजा की आवश्यकता है? बाबा की कोई सेवा हो सके—कौन है जो ऐसे सौभाग्य की कामना न करे। श्रुतियों की मर्यादा—कितनी निठुर है यह मर्यादा! बाबा पूजन करने जा रहे हैं और भूदेवी उनके श्राचरणों पर मस्तक रखकर कह भी नहीं सकतीं—'क्षमा करें इस सेविका को!'

महर्षि शाण्डिल्य अपने पूरे मुनि-मण्डल के साथ आज पृथ्वीसूक्त का सस्वर पाठ कर रहे हैं! बाबा तो पूजन में लगे हैं। 'उनका लाल भूमि पर बैठेगा—उनका नवनीरज-कोमल कृष्ण! धरित्री उसे धारण करे! उसे ये सर्वसहा, धैर्यमयी परम कोमल होकर धारण करें! उसके लिये ये मङ्गलमयी हों!' उन्होंने सविधि अर्घ्य दिया और अब तो आचमन देकर पूजन में लग गये।

मैया क्या करे—ये महर्षि आज्ञा दे रहे हैं; ये शङ्ख, भेरी, दुन्दुभि, शृङ्ग—सब एक साथ गूँज रहे हैं। जय-जय की यह गगन को गुञ्जित करती अपार ध्वनि; पर मैया—मैया ने नीलमणि को उठाया दोनों हाथों से और उठाये ही है। कैसे वह इस कठोर भूमि पर अपने इस हृदय को बैठाये? उसके तो हाथ कम्पित होने लगे हैं। इस हेमन्त में भी उसके भाल पर स्वेद की बड़ी-बड़ी बूँदें चमकने लगी हैं।

'अच्छा—यह सब क्या है? यह रंग-बिरंगा क्या है सब?' श्याम तो दोनों पैर नचाने लगा है। दोनों कर नीचे करके वह पूरा लटक गया है। वह भूमि पर बैठेगा! लेगा यह विचित्र रङ्गीन अद्भुत वस्तुएँ! अब तो मैया को उसे बैठाना ही पड़ेगा।

'श्रीव्रजराजकुमार की जय!' गगन गूँजा और लो श्याम तो बैठ गया। दोनों चरण अर्धकुञ्चित करके, दोनों करतल भूमि पर टेककर यह क्या बैठ गया है कनूँ। मैया ने अपने दोनों कर तनिक हटा लिये हैं। आज प्रथम भूमिपर बैठाया गया और बैठ गया। यह तो सम्मुख के कुङ्कुम से बने पुष्प को देख रहा है। देख रहा है—कैसे उठाये, कैसे ले! अभी तो दोनों कर भूमि पर रहें, तभी यह अपने को सम्हाले रह सकता है।

यह हूँ हाँ और मैया की ओर देखने के प्रयत्न में तो उसके हाथों पर लुढ़क ही गया। ये दो क्षण—दो ही क्षण तो बैठा रहा है यह। इसके लिये ये दो क्षण क्या कम हैं? मैया देखने लगी है कर, पद और नितम्ब इसके। इतनी ही देर में कितने लाल हो गये शिशु के अङ्ग! यह तो अभी उसी ओर झुका है। उधर ही हाथ फेंक रहा है। कोई नहीं सुनता, कोई नहीं समझता। यह सम्भवतः उस कुङ्कुमपद्म को पाने के ही प्रयास में है। मैया की दृष्टि इसके अङ्गों पर है और बाबा की दृष्टि—बाष्प-पूरित बाबा की दृष्टि भी सम्भवतः यह तनिक अरुणाभ श्याम अङ्ग ही देखने में लगी है।

'बालक को अब और प्राङ्गण में नहीं रखना चाहिये!' महर्षि शाण्डिल्य भी इस नन्हे चञ्चल को देखने में लगे हैं। उपनन्दजी की बात ही उन्हें कहनी है। अब तो कक्ष में मातृ-पूजन, गुड़-घृत से वसोर्धारापात करके नीराजन करना है।

कन्हाई कक्ष में आया। महर्षि ने समस्त विप्रवर्ग के साथ अभिषिक्त किया उसे नन्हे सीकरों से। श्याम के विशाल भाल पर आज महर्षि ने कुङ्कुम-तिलक करके अक्षत लगा दिये और उसके दक्षिण कर में रक्षासूत्र बाँध दिया। यह रक्षासूत्र—जो जगती की रक्षा के लिये ही आया है, उसकी रक्षा वात्सल्य के ये रागारुण सूत्र ही तो कर सकते हैं! बाबा को अभी महर्षि की अर्चा करनी है। विप्रों की सविधि पूजा के पश्चात् गोपों को सत्कृत करना है और कन्हाई तो भूखा है। मैया उसे दूध पिलाने लगी है। इतनी देर हुई—वह अब दूध पियेगा और फिर सो जायगा अपनी बड़ी पलकें मूँदकर।

—❀—❀—❀—

# व्रजराज के प्राङ्गण में

*"आकुञ्चितं जानु कर च वामं न्यस्य क्षितौ दक्षिणहस्तपद्मे ।*
*आलोकयन्तं नवनीतखण्डं बालं भजे कृष्णमुपानताङ्गम् ॥"*

—श्रीलीलाशुक

श्याम अब बैठने लगा है। मैया जब उसे बैठा देती है भूमिपर सुकोमल आस्तरण के ऊपर, अपने दोनों चरण आधे आकुञ्चित करके, दोनों करतल भूमि पर रखकर वह कुछ क्षण बैठा रहता है।

मैया का स्नेह—उनका उल्लास बढ़ता जाता है और बढ़ते जाते हैं उसके वात्सल्य के प्रियपात्र। वह तो मैया है न, उसके स्नेह की भी कोई सीमा है। उसकी गोद में कितना स्थान है, इसकी भी कोई इयत्ता है। यह सुबल, यह मणिभद्र, यह वरूथप—ये सब उसके नीलमणि के चिर सहचर—मैया के लिये तो जैसे सभी कन्हाई ही हैं। गोपियों का मन घर में लगता नहीं। कृष्ण-चन्द्र के चन्द्रानन को देखे बिना चैन नहीं पड़ता और गृह के कार्य उन्हें कुछ देर लगा भी दें घरों में तो ये अङ्क के शिशु कहाँ मानते हैं। ये तो रो-रोकर नेत्र लाल कर लेंगे, हिचकियाँ बँध जायँगी इन्हें। घर पर दूध तो माता का ये रात्रि को निद्रा की अलस जागृति में ही पीते हैं; नहीं तो इनका रुदन तो तब बंद होता है, जब माताएँ इन्हें लेकर नन्द-भवन पहुँचती हैं। श्रीनन्दरानी—व्रजेश्वरी, वे भी इनका मार्ग ही जैसे देखती रहती हों। किसी को नित्य की अपेक्षा कुछ देर हुई और कारण पूछा उन्होंने। शिशु तो वहाँ पहुँचते ही रोना-धोना भूल जाते हैं। ये सब पास-पास पेट के बल लेटकर, बैठकर पता नहीं क्या संकेत करते हैं अपने चपल कोमल करों एवं चरणों को उछालते हुए और किलकते रहते हैं दिन भर।

यह भद्र—बस, यही सबसे भिन्न है। मैया अनेक बार कहती है अपनी देवरानी से—'तू भद्र को अब यहीं रहने दिया कर! मैंने दो दाऊ पा लिये!' बात तो ठीक है, जब रात्रि में जगने पर भी यह रोते-रोते हिचकियाँ लेने लगता है, तब उसी समय पहुँचाना पड़ता है। मैया की गोद में आये बिना यह चुप होगा नहीं। सायंकाल सो जाने पर ही तो माता इसे घर ले जा पाती हैं।

'मैं तो तुम्हारे इस पुत्र की धाय हूँ। तनिक बैठने लगे तो तुम्हें इसे भी सम्हालना ही पड़ेगा!' भद्र की माता तो इसी में उल्लसित है कि उसका पुत्र सचमुच दाऊ-जैसा ही है वर्ण में, आकृति में और अभी से यह दाऊ इस प्रकार उसे दिन भर प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता है, जैसे यह उसका सगा भाई हो। इसे छोड़ना तो पड़ेगा ही मैया के अङ्क में। जब अभी से इसकी यह दशा है, तब भला, आगे यह घर रहेगा? पर अभी—अभी यह है ही कितने दिनों का।

× × × ×

'आज कन्हाई स्वयं बैठ गया है उठकर!' गोकुल में तो उत्सवों की सदा धूम रहती है। आज—आज तो मैया को, बाबा को, गोपों को, सभी को परम आनन्द है। आज श्याम स्वयं बैठ गया है।

महर्षि शाण्डिल्य आयेंगे, द्विजवृन्द आयेगा, स्वस्तिपाठ, हवन, पूजन, मङ्गल-श्राद्ध, सभी की प्रस्तुति होने लगी हैं। गोप इधर-से-उधर दौड़ रहे हैं सामग्री प्रस्तुत करने में और गोपियाँ आनन्दमग्न मङ्गल-थाल सजाये गाती हुई झुंड-की-झुंड नन्दभवन में आ रही हैं।

यह बैठा है श्याम—आज ही तो यह पहिली बार उठकर स्वयं बैठ गया है। यह दाऊ बैठा है अपने अनुज के समीप। यह लेटा किलकता है भद्र और यह रही सुबल, वरूथप, मणिभद्र आदि की मण्डली। अच्छा, यह कनू कुछ देख रहा है—कुछ पकड़ना चाहता है। यह अपने मुख के प्रतिबिम्ब को ही इस रत्न-भूमि में पकड़ने के प्रयत्न में है और बार-बार भाई की ओर इस प्रकार देख रहा है, जैसे कहता हो—'दादा, यह कौन है? तू इसको पकड़ तो! मेरे हाथ तो यह आता नहीं!' अरे, यह तो रोने लगा। भला, यह भी कोई बात है कि यह एक प्रतिविम्ब को पकड़ना चाहे और वह हाथ न आये। अब तो रोयेगा ही।

× × × ×

कन्हाई घुटनों चलने लगा है। दोनों हाथों और घुटनों के सहारे यह चञ्चल अब सरकने लगा है। मैया प्रोत्साहित करती है, तनिक दूर जाता है और फिर भूमिपर ही लेट जाता है पेट के बल। इसके मृणाल-कोमल बाहु थक जाते हैं। वहीं भूमि पर मस्तक रखकर पीछे देखता है मैया की ओर, हँसता है, किलकता है और फिर आगे दौड़ने का प्रयत्न करता है। यह धूलि-धूसर वक्ष, उदर, जानु और कपोल—इसने तो दोनों ओर की अलकें भी धूसरित कर ली हैं। कटि की रत्न-किङ्किणी, करों के कङ्कण, चरणों के नूपुर रुन-झुन करता यह क्या चलने के प्रयत्न में लगा है।

दाऊ अपने छोटे भाई को लो! उठाने लगा दोनों हाथों। यह उसे थकने पर सहायता देने आ गया है। यह भद्र—यह तो अभी कठिनता से ही कुछ खिसक पाता है और यह तोक—यह तो सबसे छोटा ठहरा, यह अभी पड़े-पड़े ही किलकेगा। भद्र और तोक—यदि भद्र दाऊ की ठीक प्रति-कृति है तो तोक यदि श्याम से छोटा न होता—अवश्य लोग पहिचानने के लिये कन्हाई के वक्ष की इस स्वर्णिम रोमराजि का ही सहारा पाते। तोक के यह रोमराजि ही तो नहीं! ये सुबल, वरूथप, मणिभद्र—ये सब भी तो समवयस्क ही हैं श्याम के। कन्हाई तो इनके साथ घुटनों चलने के लिये प्रोत्साहित ही होता है।

यह मैया प्रोत्साहित कर रही है। आनन्द-मुग्ध देख रही है। कन्हैया बार-बार कुछ बढ़कर फिर लेट जाता है और बढ़ता है। बढ़ता है और बैठ जाता है। अच्छा—अब यह क्या करने लगा है? यह तो कुछ पकड़ना चाहता है। यह जो रत्नभूमि पर काली नन्ही पिपीलिका उसीके सम्मुख इधर-से-उधर भाग रही है, उसी को पकड़ने चला है यह। लो—इस चींटी को पकड़ने की धुन में लेटने के बदले बैठ गया! भला, कहीं मुट्ठी से यह क्षुद्र चञ्चल चींटी पकड़ी जा सकती है। अच्छा, अब अङ्गुलियों से पकड़ेगा। पिपीलिका पकड़ी जाय, इतनी क्या अङ्गुलियाँ जमती हैं इसकी। अब इसने बड़े भाई की ओर देखा। भला, दाऊ कहाँ समझता है कि श्याम उसे इस नन्ही चींटी को पकड़ने के लिये कहता है। लेकिन वह तो अपनी हूँ हाँ में संकेत किये जा रहा है—'भैया, मेरे हाथ तो यह आती नहीं, तू पकड़ तो सही!' भैया नहीं सुनता, तो लो—अब यह पूरी हथेली से पकड़ेगा। 'जा, अब कहाँ जायगी!' अरे, चींटी क्या हुई? श्याम ने हथेली उठाकर भूमि देखी और अब तो वह जैसे कुछ डर गया हो—भला, यह भी कोई बात है—यह काली वस्तु उसकी हथेली पर ही दौड़ने लगी है। वह दाऊ को हथेली दिखा रहा है, बैठे-बैठे ही अब हथेली उठाये भैया की ओर खिसकने लगा है भरसक तीव्रता से और हूँ, हाँ करता जा रहा है कि इसे उसके हाथ से कोई हटाये तो सही?

× × × ×

'कृष्ण!' अरे, यह कौन—यह कौन आयी? कन्हैया यह खिलखिलाता घुटनों और करों के सहारे भागा—यह भागा मैया की ओर! मैया ने दोनों हाथ बढ़ाकर ले लिया अङ्क में उसे और अब तो यह भली प्रकार मैया के कण्ठ से लग गया है। छिप जाने का यह प्रयत्न, बार-बार मुख घुमाकर तनिक-तनिक देखना और खिल-खिलाकर, दोनों पैर हिलाकर मैया के कण्ठ से पुनः सट जाना—गोपी तो ठगी-सी खड़ी है यह अनुपम छटा देखती। कन्हाई उसकी ओर देखता है और वह दोनों हाथ बढ़ाती है अङ्क में लेने के लिये, यह किलककर मुख फेर लेता है!

श्याम अभी भी देहली पार नहीं कर पाता। मैया प्रोत्साहित करती है। दाऊ तो बार-बार उठाने का ही प्रयत्न करता है। अच्छा—आज यह उड़ते पक्षियों की छाया पकड़ने चला है। छाया हाथ आये या न आये, इससे कुछ मतलब नहीं; यह तो उसके पीछे भाग रहा है। बार-बार उस पर कर रखने का प्रयत्न कर रहा है। अच्छा—इस छाया के पीछे सरकते, चलते तो आज देहली पार कर ली इसने! क्या हुआ जो देहली के समीप बैठकर, उस पर लेटकर हाथों के सहारे बहुत सम्हल कर पार कर सका।

कन्हाई को जल बड़ा प्रिय है। कहीं एक बिन्दु भी जल दीख जाय तो यह उसे अपने कोमल हाथों से फैलाता रहेगा बैठकर। आज तो लो! इसने आँगन में एक पात्र लुढ़का दिया जल का और अब तो दोनों भाई उसमें हाथ, पैर उछालकर आनन्द मना रहे हैं। दाऊ अपने छोटे भाई के कन्धों पर गीले करों से कुछ कर रहा है और श्याम बड़े भाई के उदर को तनिक आर्द्र बनाने में लगा है। दोनों फैले जल में कैसे निश्चिन्त बैठे हैं! माता रोहिणी आ रही हैं—और ये हँसते, किलकते दोनों दूसरी ओर भाग जाने के प्रयत्न में हैं। यह भद्र भी आया—यह मैया के समीप से इधर न आता तो कदाचित् मैया कुछ क्षण और इधर न आती।

बड़ी कठिनाई है—मैया और माता रोहिणी दिन-भर इन बालकों को सम्हालने में व्यस्त रहती हैं। ये सब-के-सब बड़े चञ्चल हैं। दासियों पर तो क्या, दूसरी गोपियों पर भी कैसे इन्हें छोड़ा जा सकता है। यह कन्हाई तो गोद में से खिसक जाता है। सायंकाल मङ्गलप्रदीप जला और यह बराबर उसे पकड़ने की ही घात में रहता है। लाल-लाल दीप-शिखा—इसे लगता होगा कि यह भी कोई मुख में दे लेने की मीठी-सी वस्तु है। जो मिले मुख में! दीपक के लिये, आहवनीय कुण्ड की अग्नि के लिये, भोजनालय में दहकते अङ्गारों के लिये—पता नहीं कहाँ ये चपल लाल-लाल अग्नि पकड़ने दौड़ पड़ेंगे। बार-बार इन्हें पकड़ना पड़ता है।

ये मयूर, काक, कपोत, शुक, हंस—पता नहीं इनमें से कौन कब चञ्चु चला दे। ये कोई पाले हुए पक्षी हैं? पाले हुए पक्षी का भी क्या विश्वास। ये चञ्चल शिशु—पक्षी भी तो इनसे खेलने में ही लगे रहते हैं। कन्हाई कक्ष से आँगन में आया और पक्षियों की भीड़ लगी। मयूर तो थन-गन नाचते कक्षतक में चले आते हैं। ये बालक पक्षियों को दोनों हाथों में पकड़ लेते हैं। इन्हें क्या पता कि कहाँ पकड़ना चाहिये। कहीं नख लग जाय। कहीं पक्षी फड़-फड़ा उठे और पक्ष लग जायँ···!' मैया कितनी भी सावधान रहे, उसका कन्हाई तो रोकने से रुकता नहीं और आँगन में पड़े दाने को पाकर पक्षी श्याम के समीप न आयें, यह होने से रहा।

पक्षियों तक ही बात हो तब तो—पता नहीं क्या बात है, ये कपि पीछा ही नहीं छोड़ते। 'कान्ह दीखा और ये आये उसके समीप। मैया को बड़ा भय लगता है। कन्हाई कपियों के कान पकड़कर किलकता है; भद्र उनके कण्ठ में दोनों बाहु लपेट लेता है, दाऊ उन्हें पूँछ पकड़कर उठाता है—बच्चों का क्या ठिकाना और चञ्चल कपि···। मैया कोई काम नहीं कर पाती और माता रोहिणी भी इन शिशुओं के निरीक्षण में ही लगी रहती हैं।

गोपों को कितना भी कह दिया जाय, वे कहाँ इतनी सावधानी रख पाते हैं। यह भी कोई बात है कि ये वनमृग भवन में बार-बार दौड़े चले आते हैं! मैया ही कहाँ मृगों को भगा पाती है। सेविकाएँ लकुट उठाती हैं तो ये उस लकुट को ही सूँघ लेने का प्रयत्न करने लगते हैं। बड़े सीधे—बड़े भोले हैं सब; पर अन्ततः मृग ही हैं न। इनके शृङ्ग बड़े तीक्ष्ण हैं। ये आनन्दमग्न होकर कूदना ही जानते हैं। ये बालक इनके शृङ्ग पकड़ लेते हैं, जब मृग उन्हें सूँघने लगते हैं। कान्ह इनके कान पकड़कर खड़ा हो जाता है। कितने भय की बात है!

द्वार बंद करके मृगों को भले वारित कर दिया जाय, ये काली, उज्ज्वल, स्वर्णिम बिल्लियाँ—ये तो म्याऊँ-म्याऊँ करते घेरे ही रहेंगी। श्याम बड़ा प्रसन्न होता है इन्हें दोनों करों से पकड़कर। वह इनसे खेलता ही रहता है। दाऊ, भद्र, सभी बालक इन्हें नवनीत खिलाते हैं अपने करों का।

मैया को भला कैसे संतोष हो कि बिल्लियाँ नख छिपाये ही रहती हैं। वह इन्हें भगा दे तो बच्चे मचलेंगे। ये भागने भी कहाँ लगी हैं; पर जब कान्ह इनके मुख में अङ्गुलियाँ डालकर किलकने लगता है ··मैया व्यग्र हो उठती है।

× × × ×

ये बालक बड़े चञ्चल हैं। इन्हें जैसा नवनीत, वैसी सुई और वैसी ही छुरिका या तलवार! जो हाथ में आ जाय, उसीसे खेलने लगेंगे। यह श्याम बड़ा चपल हो गया है। यह इधर-से-उधर, इस कक्ष से उस कक्ष में घुटनों के बल भागता ही रहता है। अब यह द्वार भी बैठकर पार कर लेता है। कोई पुकारे, कोई रोके तो इसकी छटा देखने योग्य होती है। बार-बार अपनी घुँघराली काली अलकों से घिरा चन्द्रमुख पीछे घुमाकर देखेगा और हँसता हुआ भागेगा। ये सभी बालक एक-से हैं। पाकगृह में, आँगन में, किसी कक्ष में--पता नहीं, कब कहाँ चले जायँ ये। मैया इनके पीछे ही लगी रहती है। सेवक भला, क्यों इस प्रकार पात्र छोड़ते हैं; सेविकाएँ क्यों छुरिका भूमि पर रखती हैं। मैया शिशुओं का साथ एक क्षण को भी कहाँ छोड़ती है।

कन्हाई का क्या ठिकाना, वह उस दिन पाकशाला में घुस गया अपने सखाओं के साथ। सेविका क्या करे, उसने यह किलकता मुख देखा और देखती रह गयी। कुशल हुई कि मैया ने दौड़ कर सब को आगे से रोका। सिंघाड़े छीले जा रहे थे; सम्भवतः उज्ज्वल सिंघाड़ों ने श्याम को आकर्षित किया होगा। ये छिलके इनके तीक्ष्ण कण्टक; पर यहाँ तो ये सब कोई-न-कोई आशङ्का-स्थल उपस्थित किये ही रहते हैं।

'कनूँ! श्याम! अरे कहाँ गये सब?' अभी तो सब सम्मुख ही खेल रहे थे। मैया ने कन्हाई के लिये उफनता दूध उतारा और इतने में उसका नीलमणि सखाओं के साथ द्वार से बाहर हो गया।

'अच्छा!' मैया का तो हृदय ही धक् से हो गया। यह श्याम अपने झबरे कुक्कुर के मुख में हाथ दिये है, यह भद्र उसके कान खींच रहा है और यह दाऊ तो बैठे श्वान की पीठ पर ही बैठने के प्रयत्न में है। श्याम तो मैया को देखकर किलककर दूसरी ओर भागा। यह ठीक कि यह पशु बड़ा सरल है, अत्यन्त स्वामि-भक्त और चतुर है, भय की कोई बात नहीं; परन्तु इसके तीक्ष्ण नख, कठोर दाँत--मैया ने दौड़कर कन्हाई को पकड़ा। किसी प्रकार सब को ले आयी आँगन में।

× × × ×

कृष्णचन्द्र को छोड़कर कहीं भी जाया नहीं जा सकता। सायंकाल गोष्ठ में घृत-दीप रखकर गोमाता के चरणों में प्रणिपात करने का तो सनातन नियम है। राम-श्याम-भद्र, इन बालकों के लिये भी आवश्यक है कि नित्य इनके अङ्गों पर सायंकाल सकल अमङ्गल-वारक गोपुच्छ घूमे, इनके भाल पर मङ्गलमय गोरज लगे और गायों के पावन चरणों में ये प्रणत हों। श्याम ने पहिले हो दिन मैया के कहते ही गोमाता के पदों के समीप भूमि में मस्तक टिका दिया था। वह तो जैसे सदा से यह प्रणाम करता आया हो। घुँघराली अलकें गोरज से भर जाती हैं, भाल उस पावन धूलि से अलंकृत हो जाता है और नासिका का अग्रभाग एवं भृकुटियाँ तो धूसरित होकर अद्भुत शोभा देने लगती हैं। अपनी धूलिभरी लाल-लाल हथेलियों को वह फिर अपने या भद्र के मुख, वक्ष, उदर पर ही पोंछता है।

ये अपार गायें--मैया को समय तो लगना ही है। प्रत्येक पंक्ति के सम्मुख भी कहाँ मस्तक भूमि में रख पाती है वह। माता रोहिणी भी साथ ही आती हैं। दोनों मातायें भी इन शिशुओं को सम्हाल लें तो बहुत है। गायें इन्हें देखते ही हुंकार करने लगती हैं। चञ्चल बछड़े इनके समीप भाग आते हैं और इन्हें सूँघ-सूँघकर कूदने लगते हैं। ये भी हँसते हैं, किलकते हैं, तालियाँ बजाते हैं। यह सब तो ठीक--पर तनिक दृष्टि हटी और ये गायों के मध्य पहुँचे! दाऊ को रुचता है घर्म--वह इस उच्च बछड़े के नवीन शृङ्गों को ही पकड़कर झूलना पसंद करता है।

श्याम और भद्र—ये दोनों ही क्या कम हैं, ये दोनों हाथों से किसी बछड़े या गौ का मुख पकड़ने का प्रयत्न करने लगेंगे। 'गायों के, वृषभों के तीक्ष्ण शृङ्ग हैं; वे इधर-उधर हटें और कहीं तनिक धक्का ही लग जाय! बछड़े तो पास ही कूदते हैं···गायें तो नहीं चाटतीं; पर बछड़े—कहीं वे स्वभाववश चाटने को मन कर लें—कितनी खुरदरी जिह्वाएँ हैं उनकी और ये कुसुमसुकुमार···!'

मैया बराबर इन्हीं आशङ्काओं से इन सबों की ओर ही देखती रहती है। श्याम आते ही धूलि में लेट जायगा; पता नहीं गोरज में लोट-पोट होने में उसे क्या आनन्द आता है। नन्ही मुट्ठियों से सब एक दूसरे पर धूलि डालने लगेंगे। अच्छा है, यह मङ्गलमय गोरज इस बहाने बालकों के सर्वाङ्ग में लग तो जाती है; लेकिन कन्हाई नित्य मचलता है गोष्ठ से लौटते समय। वह मैया की गोद से उतरने को लटक जाता है। उसका धूलिधूसर श्रीअङ्ग—मैया पुचकारती है, दुलारती है और वह अपने दोनों चरण हिलाता, लटकता, उतरने की हठ करता जाता है। इन गायों के मध्य में ही वह खेलेगा, गोष्ठ से हटना उसे तनिक भी रुचिकर नहीं।

× × × ×

श्रीनन्दरानी अपने लालको दूध पिला रही हैं। श्याम एक स्तन पान करके दूसरी ओर मुख करने लगा है। देखने ही योग्य है यह छटा—वह माता के स्तनपान में लगा है और दूसरे हाथ से अभी तक दूध की उस नन्ही बूँद को मिटाने के प्रयत्न में है, जो उसके मुख से, मुख इधर करते समय माता के वक्ष पर गिर गयी थी। कैसे आनन्दभरे अधखुले हो रहे हैं इसके विशाल नेत्र।

मैया ने स्नेह से देखते-देखते एक अङ्गुली लगायी इसके चिबुक से और यह देखने लगा मैया की ओर। यह दुग्धस्नात अधरद्युति, यह हँसता चन्द्रमुख और ये दो परमोज्ज्वल नन्हे दाँत—दन्तों की दुग्धकणिका के साथ अधर पर पड़ती यह ज्योति तो अद्भुत ही है। अच्छा, अब यह सोयेगा, इसे जम्हाई आ रही है। यह खोला इसने अपना नन्हा मुख।

मैया को क्या हुआ? इसका तो चुटकी बजाने को उठा दाहिना हाथ उठा ही रह गया है। यह इस प्रकार आश्चर्यचकित-सी क्यों देख रही है कनूँ के मुख को? 'आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारकमण्डल, विशाल सागर, ये पर्वत, यह धरा और ये नगर! ये कानन और ये नदियाँ! हे भगवान्! हे नारायण!' मैया यह सब क्या कह रही है? इस नन्हे मुख में क्या वह पूरा विश्व देख रही है? आश्चर्य से वह थकित हो गयी है। उसके नेत्रों में तो भय के स्पष्ट भाव हैं। यह लो, वह तो काँपने लगी! नेत्र ही बंद कर लिये उसने और यह कनूँ हँसने क्यों लगा है? क्या पता, लोग कहते हैं कि इसका हास्य ही माया है।

'हाय, हाय! मेरे लाल को क्या हो गया! अरे, देखो तो! इसने जितना नवनीत खाया, जितना दूध पिया—कुछ पचा नहीं। सब इसके मुख से दीख गया मुझे। इसने कहीं मिट्टी और पत्ते भी खाये हैं! सब इसके उदर में ज्यों-के-त्यों हैं! इसे अपच हो गया!' गोपियाँ हँसती हैं, माता रोहिणी कुछ समझ नहीं पातीं। भला, मुख से भी कहीं उदर की वस्तुएँ दिखायी पड़ सकती हैं? क्या पता व्रजेश्वरी ठीक ही कहती हों। कन्हाई का उपचार तो होना ही चाहिये! गोमूत्र परम पावन है और अपच की तो महौषध ही है; पर···लेकिन इसे अपच जो हो गया है।

× × × ×

तैलसिक्त काली घुँघराली अलकें, उनमें गूँथे सुमन और यह लहराता मयूरपिच्छ, विशाल भाल पर कज्जलबिन्दु, कुटिल भ्रूमण्डल, अरुणाभ कजरारे लोचन, पतले लाल-लाल ओष्ठ—यह कृष्णचन्द्र अपनी लाल बायीं हथेली पर उज्ज्वल नवनीत रक्खे, यह हाथ उठाये, एक ही दक्षिण हस्त एवं घुटनों के सहारे कहाँ खिसकता जा रहा है? यह बार-बार हाथ के नवनीत को देखता है, बार-बार देखता है, जैसे सावधान है कि कहीं वह भूमि पर न गिर जाय। मैया ने मुख में देना चाहा था यह सद्योमथित नवनीत, पर हठ करके हथेली पर लेकर यह चल पड़ा है। अब भला, मैया की दृष्टि इसे छोड़कर नवनीत पर कैसे टिके। वह तो पात्र सम्मुख लिये इसे देखती बैठ गयी है। कहाँ जा रहा है उसका लाल?

यह बड़े भाई को दिखाने आया है आँगन में कि उसके पास नवनीत है। नहीं, नहीं, स्वयं खिलाने आया है और भला, अपने हाथ का नवनीत यह कैसे दाऊ को या भद्र को छूने दे। अब किस तरह जम कर बैठ गया है। दो अङ्गुलियों से तनिक-तनिक नवनीत भाई और भद्र के मुख में देगा। दोनों चाहते हैं कि यह भी खाये, दोनों नवनीत उठाना चाहते हैं; पर ऐसा कैसे हो सकता है। यह तो हथेली हटा रहा है। कुछ अस्पष्ट कह रहा है, सम्भवतः यही कि 'नवनीत मेरा है! देखो, तुम दोनों देखो तो कि मेरा नवनीत कितना मीठा है! छुओ मत! मैं इसे छूने नहीं दूँगा! लो, मैं खिलाता हूँ, तुम देखो तो सही, कितना अच्छा है यह!'

× × × ×

मैया ने उबटन लगाकर तैल लगाया है, स्नान कराया है, अलकें सँवारी हैं और कज्जल लगाया है। भला, इन सब की बात कोई सोचने की बात है। ये सब सखा हैं न, ये सब बड़े अच्छे हैं। सब इस मृदुल धूलि की मुट्ठियाँ इसके कंधों पर, पीठ पर, वक्ष पर, उदर पर डाल रहे हैं। कितनी शीतल, कितनी कोमल है धूलि। कनूँ ही क्या किसी से कम है, इसने भी दोनों मुट्ठियाँ भर ली हैं और दाऊ की अलकों में ही इन्हें रिक्त करने लगा है। भद्र के कंधे पर एक मुट्ठी, सुबल के वक्ष पर और···और यह धूलिक्रीड़ा तो चल ही रही है।

कनूँ अभी से नटखट हो गया है। यह अपने दोनों लाल-लाल चरण जल्दी-जल्दी चलाकर धूलि फैलाने लगा है। मणिभद्र के सम्मुख की धूलि इसने फैला दी तो वही क्या छोड़ दे, वह भी तो पैर नचा सकता है और यह पैर धूलि में उछालना—यह भी मजे का खेल है।

यह धूलिस्नात श्यामरूप—मैया अपने इस अवधूत को देखकर हँस रही है। यह अपनी नन्ही मुट्ठी में धूलि भर लाया है उसे देने। धूलि ही देने आया है, अभी गोद में कहाँ आना है। अभी तो सखाओं के मध्य में जाने को मुड़ चला है यह, धूलि माता के करों पर डालकर। मैया भला, क्या रोके। 'बालक धूलि में खेलें तो उनके अङ्ग पुष्ट होंगे।' मैया ने इसे बहुत सुना है। वह तो इतना ही देख रही है कि कोई मिट्टी न खाने लगे और किसी के नेत्रों में धूलि न पड़े।

यह मधुमङ्गल -यह तो पता नहीं क्या-क्या घरौंदे बना रहा है। कितनी धूलि एकत्र कर ली है इसने। भला, कनूँ क्या इसका बिगड़ना मान लेगा? लो, यह इसकी राशि पर आ बैठा। 'ले, मैं तुझे ढक देता हूँ उदर तक!' सचमुच मधुमङ्गल ने तो श्याम की नाभि तक धूलि चारों ओर एकत्र कर दी। सब आ जुटे हैं—बड़ा अच्छा है यह खेल तो। कन्हाई—यह चपल स्थिर बैठने से रहा। पैर चलाकर धूलि बिखेर दी इसने अब तो। यह धूलि-क्रीड़ा, यह तो नित्य-क्रीड़ा है। भला, इसका विश्राम क्या। श्याम खेल रहा है, सखाओं के साथ वह धूलि में खेल रहा है।

# अन्न-प्राशन

*"अरुणाधरामृतविशेषितस्मितं वरुणालयानुगतवर्णवैभवम् ।*
*तरुणारविन्ददलदीर्घलोचनं करुणालयं कमपि बालमाश्रये ॥"*

—श्रीलीलाशुक

आज कन्हाई पाँच महीने, इक्कीस दिन का हो गया। आज इसका अन्न-प्राशन है। आज ही अन्न-प्राशन है दाऊ का, भद्र का, सुबल का और दूसरे अनेक बालकों का। सभी कुछ छोटे या बड़े बालकों का अन्न-प्राशन आज ही करने का गोपों ने निश्चय किया है। श्याम के ये नित्यसङ्गी, इनके सभी संस्कार अब साथ-ही-साथ तो होंगे। श्रीवसुदेवजी ने नाम-करण के सम्बन्ध में ही जब आदेश नहीं दिया, तब दूसरे संस्कार होते कैसे दाऊ के। अब तो मथुरा से संवाद भी आ गया है कि 'कृष्ण' के साथ-साथ ही 'राम' के भी सब संस्कार करा दिये जायँ। लेकिन दाऊ है जो अब तक किसी वस्तु की अपेक्षा ही नहीं करता। बाबा ने, मैया ने, सभी ने सोचा था कि बालक अनेक पदार्थों के लिये आग्रह करेगा, मचलेगा। उसे रोकने के लिये बहुत प्रयत्न करना होगा; पर यह दाऊ तो जैसे जन्म से संतोषी होकर प्रकट हुआ। यह किसी खिलौने के लिये तो कभी मचलता ही नहीं, भोज्यवस्तु के लिये क्या मचलेगा। कोई वस्तु मुट्ठी में आयी और मुख में गयी—दाऊ ने सधारण शिशु की यह प्रकृति जैसे पायी ही नहीं। वह तो वस्तु मुट्ठी में आते ही जो कोई समीप हो, उसी के मुख में देने का प्रयत्न करता रहा है सदा। अपने खिलौने वह किसी बालक को देकर ताली बजा-बजाकर प्रसन्न होता है। कुछ मिला और उसने अपने छोटे भाई या भद्र की मुट्ठी में दिया। जन्म से ही वह जैसे देना-ही-देना सीखकर आया है। भला, उसे क्या सम्हालना है भोज्यपदार्थों के सम्बन्ध में। आज उसका अन्न-प्राशन है। आज ही वह समझेगा कि अन्न कैसा लगता है।

× × × ×

श्याम का अन्न-प्राशन है—महर्षि शाण्डिल्य ने देवपूजन करा दिया है। पितरों को अपना भाग मिल चुका। गायों को गोपों ने तृप्त कर दिया। विप्रवर्ग भोजन कर चुका। बाबा तो चाहते हैं कि ये वनपशु, ये पक्षी तक तृप्त हो जायँ। विविध पकान्नों की राशियाँ लगा दी गयी हैं। कोई आये, कोई खाय! गोप तो प्रेरित कर रहे हैं लोगों को, लुब्ध कर रहे हैं वनपशुओं एवं पक्षियों को।

'आप लोग भोजन कर लें तो आपके प्रसाद से इसको पवित्र होने का सौभाग्य प्राप्त हो!' बाबा चाहते हैं कि उनके पुत्र का अन्न-प्राशन यज्ञ-शेष से हो; किंतु भला, इसे सुने कौन। मर्यादा का बन्धन न होता—विप्रवर्ग क्या पहले भोजन करना चाहता था? ये गोप, ये प्रजाजन—इनकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। राशि-राशि सुस्वादु पकवानों के ढेर लगे हैं और पक्षियों तथा पशुओं का यूथ भी अपार एकत्र हुआ है; किंतु इन राशियों की ओर तो वे भी नहीं देखते। सबकी दृष्टि तो व्रजराज की ओर है। जैसे सब कहते हों—'बाबा, आज तो अपने कुमार का प्रसाद पाने दो!'

आज सम्पूर्ण व्रज आमन्त्रित है। दूर-दूर के गोष्ठों से लदे छकड़े और नर-नारी रात्रि-भर आते रहे हैं। रात्रिभर गोपियाँ जगी हैं और व्यस्त रही हैं। सबको अपने पाकशास्त्र की कला सार्थक करनी है और ये राशियाँ—ये पकवानों के पर्वत—सचमुच क्या गोपियों ने ही इन्हें बनाया है? कैसे सम्भव हो सकता है रात्रिभर में इनको बना लेना। कौन जाने आज अन्नपूर्णा ने ही अपने को धन्य करने के लिये यह अथक उद्योग किया हो।

गोकुल तो आज नन्द-भवन हो गया है, सत्कार तो करना है बरसाने तथा अन्य समस्त गोष्ठों का। आज श्रीव्रजराजकुमार का अन्न-प्राशन है। आज समस्त व्रज आमन्त्रित है और भला, कौन इस परम सुयोग को छोड़ दे।

× × × ×

उज्ज्वल कौशेयमण्डप, कदली के सफल स्तम्भ, अगुरुधूपित दिशाएँ और मृदुल आस्तरण। ये बैठे हैं श्रीव्रजराज अपने नीलोज्ज्वल कमललोचन को गोद में लेकर। आज यह कन्हाई मयूर-मुकुटी हो गया है। घुँघराली काली अलकें तैलसिक्त हैं और सुमनों के साथ मैया ने एक मयूरपिच्छ लगा दिया है उसमें। भाल पर कज्जलबिन्दु, कजरारे दीर्घ नयन और यह अपने चञ्चल कर हिलाता चकित-सा इधर-उधर देख रहा है।

यह बैठा है दाऊ बाबा की दक्षिण भुजा से सटकर और भद्र—बाबा की गोद में दो तो क्या, ऐसे सहस्र शिशुओं के लिये भी स्थान का कहाँ अभाव है। यह सुबल, यह मणिभद्र—सभी का तो आज अन्न-प्राशन है और यह मधुमङ्गल--यह तो सबसे आगे डटा बैठा है।

'बाबा, तुम पहले मेरा अन्न-प्राशन करा दो!' भला, इस मधुमङ्गल को क्या ब्राह्मणों के साथ भोजन करना अच्छा लग सकता है। बाबा तो आग्रह ही करते रहे और अब भी यह भोग तो लगाये।

महर्षि शाण्डिल्य ने अग्निदेव का पुनः पूजन कराया। रसेश वरुणदेव पूजित हुए और अन्न के अधिष्ठाताने अपना भाग पाया। मङ्गलगान, वाद्य, शङ्खध्वनि, स्वस्तिपाठ और जय-जय नाद—यह उठाया बाबा ने ग्रास नन्हा-सा और दाऊ के अधरों से लगा दिया। दाऊ यह क्या करता है, उसने तो अधर फड़काये और कुछ भूमि पर और कुछ पेट पर गिरा दिया। वह तो बाबा की ओर ऐसे देखने लगा है--जैसे यह क्या बाबा ने उसे खिला दिया। भला, कोई मीठी वस्तु—दूध जैसी हो तो बात भी थी। वह अभी दूध ही तो पीता है।

'लाल, महर्षि हैं न—ले, यह और ले ले तू।' अब दाऊ मुख खोलने से रहा। अब तो उसके अधरों से लगाकर ही क्षार, अम्ल आदि को हटाना है। बाबा ने धीरे से मुख पोंछा उसका।

अरे-अरे यह क्या लगा दिया बाबा ने इस नवनीत-सुकुमार कन्हाई के कोमल नन्हे पतले लाल-लाल अधरों से। श्याम ने अधर फड़काये, मुख सिकाड़ा और घुमा लिया। यह भी कोई बात है कि बाबा फिर, फिर ये विचित्र वस्तुएँ लगाये जा रहे हैं। वह मुख बना रहा है, ओष्ठ विचित्र-विचित्र ढंग से सिकोड़ रहा है। अब नहीं—अब वह नहीं सह सकेगा.....बाबा ने यह अच्छी वस्तु लगायी, हाँ--यह मीठी-मीठी इसे तो उसने चाटना प्रारम्भ किया—पर नहीं, नहीं - वह मुख घुमा रहा है।

'तू और लेगा?' यह दाऊ--इसने पकड़ा बाबा के बाहु को। बाबा पाँच ग्रास पूरे न करें तो क्या बिगड़े। यह लो--अभी तो मुख ही नहीं खोलता था और अब हठ है कि सब पदार्थ उसी के मुख में दिये जायँ। अभी से यह अपने अनुज की आड़ बनने बढ़ आया है। इसके छोटे भाई के यदि कमलकोमल मुख में ये विचित्र पदार्थ देते ही हैं तो उसके बदले यही उन्हें खा लेगा।

'अच्छा, तू ही ले!' सचमुच इस बार तो बाबा के हाथ का नन्हा ग्रास इस दाऊ ने मुख खोलकर ले लिया। इसने तो इस बार तनिक भी अरुचि प्रकट नहीं की। भला, बाबा क्या अब भी इसके छोटे भाई को इन वस्तुओं से छुट्टी न देंगे। बाबा ने दाऊ के और श्याम के भी अधर जल से पोंछ दिये, वृद्धा उपनन्दपत्नी ने श्याम को उठा लिया गोद में, पर दाऊ तो उठना ही नहीं चाहता। वह तो यहीं बैठा रहेगा--क्यों, सम्भवतः उसका कुतूहल गया नहीं।

'अरे, तू भद्र को भी नहीं खिलाने देगा!' यह लो, यह दाऊ तो सम्भवतः इसीलिये डटा बैठा है कि अब किसी बालक को बाबा ये अप्रिय वस्तुएँ न दें। वह सबके बदले खा लेगा! भला, यह कैसे हो सकता है। बाबा भद्र के अधरों से कुछ लगाने जा रहे हैं और यह मचला पड़ता है! यह रोकने पर ही उतर आया है। इसे बाबा कैसे समझायें कि सभी बालकों का यह संस्कार

आवश्यक है। भला, जो वस्तुएँ मुख में लेते ही इसने बाहर कर दीं--वे ही बाबा इन बालकों को दे रहे हैं, दाऊ--नन्हा दाऊ इससे अधिक क्या समझे और उसे तो अभी से अपने सभी सखाओं की असुविधा अपने उठा लेने की धुन है। बाबा को शीघ्रता करनी है, दाऊ हठ कर रहा है और बच्चों के ये सुकुमार अधर.....लवण, कषाय, कटु, तिक्त, अम्ल--ये इन अधरों से चाहे जितने मन्द एवं स्वादु बनाकर स्पर्श कराये जायँ--अभी तो ये मधुर को भी सह नहीं पाते।

× × × ×

'ये बालक क्या चाहेंगे ? इनकी रुचि किस ओर होगी ? किस आधार पर ये जीवन व्यतीत करेंगे ?' सबके हृदय अधिक वेग से गति करने लगे हैं। विप्रों का सामगान समाप्त हो गया, वाद्य बंद हुए और गोपियों की उत्कण्ठा ने उनके कलकण्ठ मूक कर दिये। सबके नेत्र एकटक लगे हैं। सब के मन में है 'बालक अपनी वंशगत सुरुचि ही व्यक्त करें !' ये स्वर्ण एवं मणि की राशियाँ, यह हिरण्यपीत पद्मरागमण्डित नन्हा हल, ये वस्त्र, यह रज्जु और वेत्रदण्ड, मणिमय लेखनी और मसिपात्र की भी अद्भुत शोभा है और यह कौशेय-परिवेष्टित ग्रन्थ—ये तो नित्य वन्दनीय हैं। गोपों ने उज्ज्वल छुरिकाएँ, नन्हे खड्ग सजा दिये हैं और यह रक्खा है एक ओर चामर-व्यजन। आज चारों वर्णों के व्यवसाय के ये प्रतीक मण्डलाकार सजाये गये हैं। आज इन्हें समत्व प्राप्त हो गया है इस मण्डप में। शिशु तो नित्य समदर्शी हैं। आज यह सभा-मण्डप तो शिशुओं का है न, इसमें कहीं वैषम्य रह सकता है। यहाँ तो वे जिसे स्पर्श कर लें, वही श्रेष्ठ है।

बालकों को चुनना है इसमें से--वे किसे लेंगे ? यही प्रश्न तो सबके मन को उन्मथित कर रहा है। श्रीव्रजराजकुमार किसे लेगा।? सभी वस्तुएँ अद्भुत हैं। किसी को भी देखते ही उठाने को जी चाहता है। सभी इस प्रकार सजायी गयी हैं कि सब पर समान दृष्टि पड़े। बालक तो मण्डप के द्वार पर छोड़े जायँगे। वे किधर मुड़ेंगे, कुछ ठिकाना है इसका ?

'भैया, तू जा--खिलौना ले तो ले !' बाबा दाऊ को प्रोत्साहित कर रहे हैं। दाऊ तो मण्डप के द्वार पर ही बैठ गया है। इतने सारे खिलौने--वह अकेला ही सब ले ले, यह भी कोई बात है। यह श्याम, यह भद्र, यह तोक, दाऊ तो हठ करने लगा है कि सबको छोड़ दो। सबको आने दो तो वह खेले। सब नहीं आते तो वह कुछ नहीं लेगा। अकेले उसे कुछ नहीं लेना है। बाबा पुचकार रहे हैं, महर्षि प्रोत्साहित कर रहे हैं और यह दाऊ—यह मण्डप में जाकर भी बार बार लौट आता है झट-पट। कम-से-कम श्याम तो चले उसके साथ खेलने।

'तू कोई खिलौना ले आ और यहीं लाकर खेल !' उपनन्दजी ने ठीक समझाया है। भला, अब दाऊ को क्या खिलौना चुनने में देर लगती है। वह चला, वह चला। 'क्या उठायेगा ? दाऊ क्या उठायेगा ?' बाबा, गोपगण, मैया और माता रोहिणी—सबके हृदय, नेत्र एकाग्र हो रहे हैं। 'दाऊ ने तो शस्त्रों की ओर देखा ही नहीं.....।'

'यह अपने छोटे भाई से भी दो पद आगे ही रहेगा !' मैया को हँसी आ गयी। उसने माता रोहिणी की ओर देखा।

'कौन जाने यह पुरानी भूल सुधार दे !' माता रोहिणी के नेत्र तो बाष्प-पूर्ण हो गये हैं। वे गद्‌गद हो उठी हैं। सदा से उन्हें यह खटकता रहा है कि वृष्णि-वंश एक होकर भी मथुरा और गोकुल में विभक्त हो गया है। जब से श्रीकृष्णचन्द्र पर उनकी दृष्टि पड़ी है, वसुदेवजी का मथुरा-निवास उन्हें रुचता ही नहीं। कंस का भय न होता—अवश्य उनके आराध्य इस नीलसुन्दर को देखकर गोकुल में ही बस जाने का निश्चय करते। आज उनके पुत्र ने एक साथ स्वर्ण-हल और वेत्र-दण्ड उठाया है दोनों हाथों से। व्रजरानी का परिहास कहता है कि क्या 'राम' कृषक और गोपाल दोनों होगा ? यह 'बल' अपने अनुज के साथ गोपाल होकर कृषक भी हो जाय तो हानि क्या है !'

माता रोहिणी तो इस कल्पना से ही आनन्दगद्गद हो रही हैं। कौन बताये मैया को, माता रोहिणी को और गोपों को कि यह तो नित्य हलधर है और इस गोकुल में इस मुसली को मूसल के स्थान पर वेत्रदण्ड ही अधिक प्रिय लगता है। गोपाल का यह अग्रज वेत्रदण्ड को दाहिने हाथ में उठायेगा ही।

× × ×

श्याम चला—श्याम चला खिलौने लेने!' अनजान में ही सब आगे उझक गये। सबके पलक स्थिर हो गये। चञ्चल कन्हाई—यह तो खिलौने देखकर ही प्रसन्न हो गया है।

कटि में किङ्किणी, चरणों में नूपुर, करों में कङ्कण, कण्ठ में व्याघ्रनख, क्षुद्रशङ्ख, मुक्ता की माला—यह कनूँ अपनी काली घुँघराली अलकें लहराता, अरुण कमलचरण खींचता घुटनों के सहारे भागा जा रहा है खिलौने उठाने। यह तो मण्डप के मध्य में बैठ गया चामर और व्यजन की ओर पीठ करके। यह क्या लेगा? चारों ओर मुख घुमा-घुमाकर यह तो केवल किलक रहा है!

'ले ले, लाल! ले तो ले, जो तुझे लेना हो!' उपनन्दजी का पुचकारना क्या काम आये। कन्हैया तो अपने नन्हे-नन्हे कर उठाकर एक ओर से सबकी ओर संकेत कर गया। वह तो बाबा को बुला रहा है दोनों हाथ उठाकर कि 'बाबा, वहाँ क्यों खड़े हो! आओ, भीतर आओ जल्दी से और यह सब—हाँ, सब-के सब खिलौने उठा ले चलो!' वह सब लेगा! सब लेगा एक ओर से सब-के सब! भला, इतने खिलौने कैसे उठा ले वह। सबके मध्य में इस प्रकार जमकर बैठ गया है, जैसे सबका वही स्वामी है और इधर उधर मुख घुमाकर किलक रहा है।

'कुमार सर्वतोमुखी उन्नति प्राप्त करेगा। यह सबका—सभी साधनों का अधिपति होगा!' महर्षि शाडिल्य की वाणी ने बाबा को, गोपों को किस आनन्दसिन्धु में निमग्न कर दिया है, अब यह भी कोई बस की बात है कि इसका वर्णन किया जा सके!

'बाबा, तुम वहाँ खूब सारा नवनीत रखा दो न! भला, मैं क्या चुनूँगा! ये सब तो वेत्र-दण्ड और रज्जु लेकर ही लोट-पोट हुए जा रहे हैं!' मधुमङ्गल को भी कुछ चुनना तो है और वह भला, खिलौने क्या चुने। उसे तो कोई भोग लगाने योग्य पदार्थ चाहिये। यह मणिभद्र, भद्र, तोक—अब ये सब-के-सब तो रज्जु या वेत्रदण्ड उठाते हैं। ये गोपबालक ही तो हैं।

× × × ×

आज सम्पूर्ण व्रज, समस्त गोप एक साथ बैठे हैं भोजन करने। आज का भोजन—आज तो वृद्धों में भी उल्लास है। ये व्रजराज और वृषभानुजी, जब ये भी परिहास करने लगे हैं, तब तरुण गोप तो तरुण ही हैं। परिहास तो कर लेते हैं उपनन्दजी-से वृद्ध आज मध्य में। आज का उल्लास-आनन्द—कौन वर्णन करने में समर्थ है।

व्रजेश आज अपने हाथों एक-एक गोप को वस्त्र, अलंकार भेंट कर रहे हैं। आज के उपहार—आज तो यह श्याम के अन्नप्राशन का उपहार है। गोप तो इसे माँग कर ले लें—पर व्रजराज जो दे रहे हैं, ये असीम उपहार तो आये छकड़ों द्वारा ढोये जाने से रहे। मागध, सूत, वन्दी—सभी तो परितृप्त हैं। सभी तो प्रार्थना ही करते हैं आज। कितनी भावपूर्ण प्रार्थना है व्रजपति के प्रधान वन्दी की। जैसे उसने सभी का हृदय अपने शब्दों में मूर्त कर दिया—'व्रजेन्द्र, हम दीन हैं! आप की उदारता के इस विपुल प्रसाद के लिये कितना बड़ा प्रासाद चाहिये—यह भी सोचते हैं आप? अब तो दया करें। गृह में आपका प्रसाद तो विराजेगा ही, पर दीनों को भी वहीं आश्रय के लिये अवकाश चाहिये!'

गोपियों का सत्कार किया है व्रजेश्वरी और माता रोहिणी ने। सबने अन्तःपुर में साथ ही भोजन किया है। मैया ने सबको वस्त्राभरणों से भरपूर सुसज्जित किया है और अञ्चल रत्नों से भर दिये हैं। मैया समझ ही नहीं पाती कि वह किसे क्या दे। उसके लाल का अन्न-प्राशन हुआ, सबने हृदय से आशीर्वाद दिया—इस समय भला, कहीं देकर तुष्टि होने की है।

'अच्छा तो, तुम मुझे भी भेंट दोगी ?' देवरानी ठीक तो कहती है। व्रजेश्वरी कहाँ देखती हैं कि गोकुल में अनेक बालकों के अन्न-प्राशन हुए हैं। उन बालकों की माताओं के लिये यही बहुत है कि वे अपने शिशुओं का नन्दभवन में ही संस्कार कराती हैं। यह जो नन्दनन्दन है—इसे देखकर, इसके साथ बालक के संस्कार का महनीय अवसर—पर मैया तो आज सबको पुरस्कृत करने लगी है। उसने तो सभी को सजाना और उपहार देना प्रारम्भ कर दिया है।

'चल, तेरा लड़का कहाँ से आया ? भद्र तेरा कब से हो गया और तोक ही कब तेरा है। मेरे लड़कों की न्योछावर लेती है या''''।' मैया का परिहास—लेकिन सचमुच ही तो। उसे लगता है कि सभी बालक उसीके—उसके ही हैं। वह अपने शिशुओं के ही उपहार तो दे रही है।

'लाओ! आज तो तुमने धाय बना लिया मुझे; पर श्याम को बड़ा होने दो--वह मेरा ही रहेगा भला !' देवरानी ने भाव भरा अञ्चल फैला दिया। आज कौन अस्वीकार कर दे नन्दरानी के मङ्गल-उपहारों को। पता नहीं किन जन्मों के पुण्यों ने यह सौभाग्य दिया।

'यह तो जन्म से तेरा है; बड़ा होने पर क्या बदल जायगा !' मैया कहाँ कहती है कि श्याम उसीका है। वह तो जब वह राक्षसी आयी थी--वह पूतना, उससे बचने पर ही श्याम को गोपियों के चरणों में रखकर कहने लगी थी--'यह तुम्हारे ही आशीर्वाद से आया ! तुम्हारे ही पुण्यों से बचा और यह रक्खा है तुम्हारे चरणों में, तुम्हारा ही है यह।'

× × × ×

"मैया, ! मैया !" यह मधुमङ्गल सदा कूदता-उछलता शीघ्रता में ही आता है। भगवती पूर्णमासी ने शिशुओं को आशीर्वाद दिया है आज। भला, उन तपोमयी की कोई क्या सेवा करेगा; परंतु वे तो अनुकूलता की मूर्ति ही हैं। वे आश्रम पधारीं; किंतु मधुमङ्गल कहाँ उनके साथ रहता है। यह पता नहीं किधर था। 'मैया, यह दाऊ—तू ने देखा इसे, यह सबके बदले स्वयं ही अन्न-प्राशन करने पर तुला था। तू एक बड़ा-सा मोदक तो दे....!' इसे तो मोदक चाहिये और पता नहीं कहाँ से आज उदारता आ गयी है कि उसमें दाऊ को भाग देने की धुन ले आया है।

'यह कनूँ--यह तो दूध पीकर ही ठीक है !' कनूँ तो सचमुच मैया के अञ्चल में छिपा दूध पी रहा है। कितना तन्मय है दूध पीने में। अन्न-प्राशन के क्षार, कषाय पदार्थों ने माता के दूध की मधुरता बढ़ा तो दी ही है। मधुमङ्गल को तो मोदक चाहिये इस समय और भला, मैया समझा लेगी इसे कि दाऊ को मत दो ? यह चपल एकाध बार खिलाकर मान जाय—यही बहुत।

—❀⊂❀⊂❀—

# तृणावर्त-त्राण

*"चरणयोररुणं करुणार्द्रयोः कचभरे बहुलं विपुलं दृशोः।*
*वपुषि मञ्जुलमञ्जनमेचके वयसि बालमहो मधुरं महः॥"*

—श्रीलीलाशुक

कन्हाई खड़ा होने लगा है। मैया इसे खड़ा कर देती है और यह कुछ क्षण खड़ा रह लेता है अपने दोनों हाथ उठाये, मैया के करों को पकड़ने की मुद्रा में। भला, ये कोमल पद कब तक खड़े रहें। तनिक इधर-उधर डगमग सा करता है और बैठ जाता है। मैया इसे खड़ा करके अपने दोनों कर दोनों ओर तनिक दूर कर लेती है।

दाऊ देखता है कि उसका भाई खड़ा हो गया है, वह ताली बजा-बजाकर नाच रहा है। अपने नन्हे-नन्हे हाथों से ताली बजाता कितना प्रसन्न हो रहा है वह! मैया आनन्दविभोर है, माता रोहिणी ठगी-सी देख रही हैं और ये गोपियाँ—सब जैसे प्रतिमाएँ हों।

यह भद्र दोनों कोमल हाथ भूमि पर टेके, तनिक आगे झुककर मुख ऊपर करके देख रहा है कनूँ की ओर। 'अच्छा, यह तो खड़ा हो गया!' और यह श्याम बैठ गया। यह खिल-खिला रहा है और ताली बजाने का प्रयत्न कर रहा है, बड़े भाई की देखा-देखी। इसके ये उज्ज्वल चारों नन्हे दाँत—इनकी द्युति ने अधर की अरुणिमा को स्नात कर दिया है। मुख तनिक नीचे झुकाकर, सिर इधर-उधर हिलाते यह मग्न हो रहा है। अलकें लहरा रही हैं। अपने खड़े होने का आनन्द मना रहा है यह।

'दा··दा' अभी इतना ही तो तुतलाकर कह पाता है। इसने तो 'माँ' से भी पहिले—सब से पहिले 'दा' सीखा है। है भी इसके लिये यही सरल, अपने बड़े भाई को यह 'दा · दा' कह तो लेता है।

× × × ×

श्याम चलने लगा है डगमग पदों से कुछ डग। मैया इसे खड़ा करके हाथ पीछे हटा लेती है और उत्साहित करती है। यह हिलता डुलता हाथ फैलाये बढ़ता है, बढ़ता है, मैया हाथ हटाती जाती है। दो पद, तीन पद और यह बैठ गया।

'दादा, बाबा, मैया, दाऊ' अब यह तोतली वाणी में ये दो-दो अक्षर बोल लेता है। अब यह अपने बड़े भाई को पुकार लेता है और भद्र को 'भद' कहने लगा है। मैया बड़े स्नेह से पूछती है और यह परिचय देने का प्रयत्न करता है। कुछ अक्षर मुख से निकलते हैं और कुछ की पूर्ति हथेली फैलाकर, हँसकर हो जाती है।

महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—'जो बालक 'त' को 'द' कहते हैं, वे शुद्ध श्रुतिधर हो सकते हैं।' यहाँ तो यह दाऊ भी अब 'त' बोलने लगा है और श्याम अभी 'ताऊ' को भी 'दाऊ' ही बोल पाता है। देखने योग्य होती है उसकी वह भङ्गी। सोचकर, प्रयत्नपूर्वक वह 'ताऊ' को बाबा की गोद में बैठकर पुकारना चाहता है—'दाऊ!' स्वयं अपना मस्तक हिला देता है, जैसे कहता हो—'ना, ना, दाऊ नहीं, दाऊ नहीं!' फिर प्रयत्न करता है, रुकता है और फिर वही 'दाऊ!' और फिर मस्तक हिलाता है।

यह अब मयूर का कण्ठ पकड़कर खड़ा हो जाता है और सम्भवतः मयूर भी इसे चलना सिखलाते हैं। मयूरों ने इसे देखा और पंख फैलाये। यह नवघन-द्युति—वे तो दिन भर आँगन में नाचते ही रहते हैं और यह उनके साथ धीरे-धीरे चलने का प्रयत्न करता है।

× × × ×

तृणावर्त के बल की चरम सीमा का अवसर है यह। निदाघ में ही तो इस असुर का बल बढ़ता है। कंस ने अपने इस भृत्य को ठीक अवसर पर ही आज्ञा दी है गोकुल जाने की। आषाढ़ का यह मध्योत्तर काल, दिशाओं में यों ही धूलि भरी है, यों ही वात्याचक्र उठ रहे हैं और लू चल रही है। इस समय तो तृणावर्त का वेग महेन्द्र के लिये भी असह्य है।

'वह नन्द का लड़का—वह नात्तत्रमास से एक वर्ष का हो गया।' कंस से अधिक गणना कन्हैया की आयु की कौन रख सकता है। एक-एक पल, एक-एक क्षण इसे तो भय के मारे वज्र-रेखा से अङ्कित होते जाते हैं। इसका काल—इसको मारने वाला—वह बढ़ रहा है! वयस्क होता जा रहा है। जैसे मृत्यु कराल मुख फाड़े अपने मन्द पदों से धीरे-धीरे बढ़ती आ रही है। भयविह्वल कंस उसके प्रत्येक पद—प्रत्येक क्षण को त्रस्त देख रहा है। क्या करे? कहाँ जाय? किसे भेजे? उसने तृणावर्त को भली प्रकार समझा कर भेजा है।

मायावी तृणावर्त को भला, गोकुल के लोग क्या देख लेते। वह आया असुर—कान्ह तो माता की गोद में है! मैया इसे भूमि पर उतारे—तृणावर्त को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ. मैया ने श्याम को भूमि पर बैठा दिया। असुर को क्या पता कि अन्तरिक्ष से कोई महाशक्ति इसी समय मुस्करा उठी है।

'यह नन्दका लड़का—इसकी माता ने नेत्र बंद किये हैं! क्या पता दूसरे क्षण ही वह पुत्र को फिर अङ्क में उठा ले!' असुर को भय है कि अवसर फिर मिले या न मिले। उसने कराल वात्याचक्र प्रवर्तित किया और उठा लिया श्याम को।

महाघोर शब्द, उमड़ती-घुमड़ती अपार धूलि, कंकड़ियाँ, पत्ते, तृण—दिशाएँ अन्धकार में डूब गयीं। पशु-पक्षी क्रन्दन करने लगे। मनुष्यों ने जहाँ थे, वहीं बैठकर भूमि पकड़ी। घूमता खर-तर वायु का इतना प्रबल वेग एक साथ—कोई भी अपने को सम्हाल नहीं पाता। कहाँ हैं, क्या हो रहा है, क्या होना चाहिये—यह कैसे सोचा जाय। नेत्र खुलते नहीं, नाक-कान में धूलि भरती जा रही है। शरीर जैसे उड़ जायगा। कौन अपने को स्वस्थमानस रख सकता है ऐसे समय और सो भी जब यह विपत्ति सहसा आयी हो।

समस्त गोकुल के नेत्र बंद करके, सारी दिशाओं को धूलिमय अन्धकार से आच्छादित करके तृणावर्त ने झपट्ट से श्याम को उठाया। जैसे चील या बाज टूटता है, असुर ऊपर से गिरा और पलक झपकते में नन्दनन्दन को उठाकर आकाश में चला गया। ऊपर—ऊपर—और ऊपर, जितना ऊपर वह जा सके—उतने ऊपर से इसे फेंकना चाहता है भूमि पर।

'हाय!' असुर के प्राण ही तड़प सकते हैं। वह हाय! कहने में भी समर्थ नहीं। बड़ा भारी—किसी पर्वत से भी भारी है यह नन्द का पुत्र। मूर्ख असुर—जननी जिस पुत्र का भार इस समय नहीं सह सकती, उसे वह उठाकर ढोने चला है। गर्व है उसे कि अपने वेग में वह पर्वतों को भी तृण की भाँति उड़ा सकता है। गोकुल के किसी वृक्ष की एक कोंपल तक टूटी नहीं, किसी गृह का एक वस्त्र तक उड़ा नहीं सका! मायिक तृण, धूलि के अन्धकार के गर्वपर श्री व्रजराज-कुमार को उठाने का साहस!!

पहिले झपट्टे के वेग में जितना ऊपर जा सकता था, असुर चला गया। कौन जाने वह स्वयं जा सका या उसे किसी ने जाने दिया जान-बूझकर; पर अब नहीं जा सकता—अब ऊपर जाना सम्भव नहीं। यह लड़का उससे भारी है, उसकी समस्त क्षमता से भारी—बहुत भारी है। अब असुर इसे लेकर ऊपर रुका भी नहीं रह सकता। यह उसे नीचे-नीचे ढकेल रहा है।

'मैं इसे किसी प्रकार फेंक सकता—प्राण बच जाते मेरे!' ओह, असुर कहाँ इसे फेंक सकता है। 'भाड़ में जाय कंस! चूल्हे में गयी उसकी सेवा!' लेकिन अब क्या हो सकता है। अब उपाय क्या—यह लड़का जो उसके गले में लटका है, इसने किसी को पकड़कर फिर छोड़ना कहाँ सीखा है। एक बार कोई पकड़ में आये तो—पकड़ लिया सो पकड़ लिया, अब उछल-कूद का

क्या अर्थ। लेकिन तृणावर्त बिचारा तो उछल-कूद भी नहीं कर पाता। वह तो आकाश में हाथ-पैर फटफटा रहा है। उसके नेत्र बाहर निकलने जा रहे हैं। स्नायु अकड़ रहे हैं। शरीर गति-हीन होता जा रहा है।

कन्हाई—कन्हाई क्या करे। उसका क्या दोष? पता नहीं किसने उसे झटके से उठा लिया। उसके नन्हे हाथों में उसका कण्ठ आया और वह उसी कण्ठ को दोनों हाथों से पकड़कर चिपक गया है। ऊपर—इतने ऊपर उसे यह ले आया! भला, वह अपनी पकड़ दृढ़—दृढ़तर करता जाय और चिमटता ही जाय तो इसमें अस्वाभाविक क्या है। वह तो अपने को गिरने से बचाने के प्रयत्न में ही है। तृणावर्त का गला घुट रहा है, वह मरणासन्न है—यह सब तो ठीक; पर कन्हाई को क्या पता। वह क्या करे!

तृणावर्त गतिहीन होता जा रहा है! मूर्छित हो रहा है। गिर रहा है—गिर रहा है ऊपर से पत्थर की भाँति—अरर धम्!

× × × ×

'आज क्या हो गया मुझे! मैं अपने पुत्र को ही अङ्क में नहीं ले पाती! छिः!' मैया के पदों में दर्द-सा होने लगा है। वह आज प्रातःकाल श्याम को अङ्क में लेकर दूध पिलाने बैठी है। कन्हाई तृप्त हो चुका है। मैया उसके स्मितशोभित मञ्जुमुख को देख रही है—कब से देख रही है। 'कितना भोला है यह!' मैया को सहसा लगता है कि यह भारी हो गया है, बहुत भारी हो गया है, अब इसे गोद में लिये रहना सम्भव नहीं।

'मैं जननी हूँ—मुझे अपना ही पुत्र भारी ज्ञात हो रहा है!' मैया चाहे जितनी खिन्न हो, चाहे जितना आश्चर्य करे, पर उसके पद दुखने लगे हैं। 'आज हुआ क्या है? इतनी शीघ्र तो एक प्रकार से बैठने से कभी मेरे पद दुखते नहीं थे। अभी हुई कितनी देर है!' मैया को लगता है कि अवश्य उसी का शरीर स्वस्थ नहीं। भला, श्याम भारी कैसे हो सकता है। कुछ कारण होगा—आज पद इतनी शीघ्र सूने हो गये होंगे और दुखने लगे। लेकिन नहीं—भारी तो यह नीलमणि लगता है। पद तो ठीक हैं! भगवान् नारायण मङ्गल करें!' विवश होकर मैया ने श्याम को अङ्क से नीचे भूमि पर बैठा दिया और अपने आराध्य का ध्यान करने लगी। यह कैसा अशुभ है कि वह अपने पुत्र का ही भार नहीं सह पा रही है। उसे क्या पता कि योगमाया ऊपर अलक्ष्य अन्तरिक्ष में मुस्करा रही हैं और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका रही हैं—'मातः, इस धृष्टता को क्षमा करना!' कहती हुई।

'यह शब्द, यह महाभयंकर हाहाकार जैसे समस्त पर्वत, वृक्ष, धरा—सबको उड़ाता कोई प्रलयपयोधि उमड़ता आ रहा हो!' कहने में बहुत देर लग गयी, मैया ने नेत्र बंद किये भगवान् के ध्यान को, घोरतर शब्द कानों में आया और आकुल होकर नेत्र खोले-खोले कि नेत्र खोलना असम्भव हो गया। घोर अन्धकार, हाथ को हाथ दीखता नहीं, धूलि से दिशाएँ भर गयीं। उड़ती कंकड़ियों से शरीर छिला जाता है। नेत्र खोलते ही वे धूलि और नन्ही कंकड़ियों से भर गये। शरीर, वस्त्र सभी उड़े-से जा रहे हैं। घोरतर वात्याचक्र—इतना सहसा, इतना भयंकर वायु-चक्र भी हो सकता है?

'कनूँ! श्याम! कन्हाई!' मैया क्या करे! वह दोनों हाथों से अपने लाल को उठाकर भीतर कक्ष में भाग जाना चाहती है। कहाँ गया श्याम? वह तो अभी सम्मुख ही बैठाया गया है, कहाँ गया? कहाँ गया? मैया तो पगली की भाँति इधर-उधर टटोल रही है।

'मेरा लाल! मेरा कनूँ!' मैया चीत्कार कर रही है। वह इधर-उधर उन्मत्त-सी दौड़ती, लुढ़कती, टटोल रही है। 'यह अन्धकार, यह वायु, यह धूलि, पता नहीं क्या दशा हो रही होगी सुकुमार बालक की। पता नहीं कहाँ चीत्कार करता होगा वह। पता नहीं कैसे होगा। कहाँ गया? गोद से किधर खिसका? यह प्रबल वात्याचक्र कहाँ उड़ा ले गया?' मैया चीत्कार करती जा रही है।

'व्रजेश्वरी चीत्कार कर रही है ! श्याम आँगन में था उनकी गोद में !' माता रोहिणी कक्ष से बाहर भागीं। भागीं गोपियाँ ! सब तो नन्दभवन आ गयी थीं। सब तो कक्ष से देख रही थीं नन्दनन्दन को माता के अङ्क में दूध पीते। दाऊ, भद्र, दूसरे सब बालक कक्ष में हैं; पर इस समय यह सब किसे स्मरण है। 'व्रजेश्वरी चीत्कार कर रही हैं ! कन्हाई उनके अङ्क में नहीं है ! पता नहीं क्या हुआ उसे !'

घोर अन्धकार, अपने हाथ ही दीखते नहीं। नेत्र खोले नहीं जा पाते और खोलने पर धूलि भरने के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं। सब टकरा रही हैं, परस्पर एक दूसरी को टटोल रही हैं। सब व्याकुल हैं। सब कुछ ढूँढ़ रही हैं अस्त-व्यस्त।

'नन्दनन्दन नहीं है ! कन्हाई मिल नहीं रहा है !' ओह, कितनी भयंकर बात है। इस भयंकर अन्धड़ में वह पाटल-सुकुमार—पता नहीं वायु ने कहाँ उड़ाया, कहाँ फेंका ! सब क्रन्दन करने लगी हैं। सब चीत्कार कर रही हैं। सब इधर-से-उधर टकराती टटोल रही हैं।

× × × ×

धूलि, प्रखर पवनचक्र, अँधेरा और यह सब भी पूरे मुहूर्तभर तक ! जैसे अकस्मात् यह आपत्ति आयी थी, वैसे ही चली गयी। गोप जानें या न जानें, तृणावर्त अवश हुआ और उसकी माया लुप्त हो गयी ! गोप उठे, और सम्हले और अर्र् धम ! यह वज्रपात ! यह महाभयंकर शब्द ! क्या हुआ ? सब दौड़े। इतना बड़ा वात्याचक्र आया, इतनी धूलि उठी और गोकुल में जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। न कहीं कोई वस्तु अस्त-व्यस्त है और न कहीं मलिनता आयी ? आसुरी माया इस दिव्य भूमि पर ऊपर-ऊपर ही निकल गयी ! इसे अपना कलुष स्पर्श देने में वह असमर्थ है। गोप इसे देखते, चौंकते और सोचते भी—पर यह शब्द, यह महाभयंकर शब्द—पता नहीं क्या हो गया है ! यह शब्द नन्दभवन की ओर से आया है। वे दौड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, उन्हें पहिले नन्दभवन पहुँचना है। उन्हें जानना है—श्याम सकुशल तो है !

× × × ×

'नन्दनन्दन नहीं है ! कन्हाई मिल नहीं रहा है ! पता नहीं श्याम का क्या हुआ !' मैया तो कब की संज्ञाशून्य हो गयी; पर गोपियों की दशा क्या कही जाय। वे गिरती हैं, टकराती हैं, टटोलती हैं और पागल सी पुकारती भटकती हैं। उनका देह, प्राण, मन सब लुढ़क रहे हैं। इस अन्धकार में ही ये नन्दभवन से बाहर तक आ गयीं। 'नन्दनन्दन मिल जाय !' ये उसे ढूँढ़ने तो इसी प्रकार, इसी अन्धकार में, ऐसे ही टटोलती, लुढ़कती सम्भवतः विश्व के छोर तक जा सकती हैं—'श्याम मिल जाय ! मिल जाय !'

'यह हुआ प्रकाश !' गोपियों में एक बार साहस आया। प्रकाश हुआ तो कन्हाई दीखेगा ही ! 'यह धमाका ! यह वज्रपात !' सहसा सब गिरते-गिरते बचीं।

'वह श्याम है !' ओह, कितनी प्रसन्नता, कितना उन्माद, कितना जीवन—यह तो इस प्रकार दौड़ पड़ी है कि जैसे वायुदेव इसके चरणों में सनाथ होने इस क्षण बस गये हों।

'वह श्याम !' वह नीलोज्ज्वल ज्योति—तृणावर्त के धूसर अन्धकार से पीड़ित नेत्र उस शत-सहस्र-चन्द्रधवल शीतल नीलज्योति पर सीधे पहुँचे—जैसे तृषा से प्राण त्यागते मृग को सुधा-सागर दृष्टि पड़ा हो।

'वह श्याम !' श्याम—श्याम ही दीखता है। वहाँ और भी कुछ है—बहुत कुत्सित, बहुत घृणित, अत्यन्त अनपेक्षित; पर नेत्र उसे कहाँ देखना चाहते हैं। 'श्याम ! श्याम !' और सब दौड़ी जा रही हैं।

'श्याम !' ललककर उठा लिया इस महाभागा ने। 'कहीं इसे आघात तो नहीं लगा !' पूरा शरीर देख लिया और हृदय से चिपका लिया।

'श्याम !' सभी दौड़ आयी हैं ! सभी को इसे देखना है कि यह सकुशल तो है।

'व्रजेश्वरी ! यह तुम्हारा नीलमणि !' मैया के कानों में तो जैसे सुधाधारा प्रविष्ट हुई है। यह नीलमणि ! यह मैया के मुखपर अपने नन्हे हाथ रखकर उसे उठा रहा है। मैया उठी और उसने हृदय से लगा लिया श्याम को।

× × × ×

'यह राक्षस—रक्त, मांस का बिखरा हुआ यह कुत्सित ढेर—यह राक्षस ही तो है'। पता नहीं कितने ऊपर से गिरा इस विशाल शिलापर। रक्त की अनेक नालियाँ प्रवाहित हो रही हैं। अङ्ग-अङ्ग फट गया है। कौन है यह ? अब इसे कोई क्या पहिचाने—हड्डियाँ तक चूर-चूर हो गयी हैं। मांस का चिथा-सा लोथड़ा !' गोप तो देखते ही रह गये इस विस्तीर्ण आसुरी लोथड़े को भय और विस्मय से।

'ओह, श्याम को यह उठा ले गया था !' सोचकर ही प्राण सूख जाते हैं। 'नन्हा सुकुमार कन्हाई और यह प्रकाण्ड असुर ! वह पुष्प तो व्रजराज के पुण्य से ही सुरक्षित है और यह अधम अपने ही पाप से मर गंया ?' गोपों ने श्याम को देख लिया है, अब इस लोथड़े की सद्गति की व्यवस्था करवानी है उन्हें।

× × × ×

'बाप रे, इतना भयंकर राक्षस !' गोपियों के तो नेत्र ही बंद हो गये। वे तो इस लोथड़े को देखते ही भूमि पर बैठ गयीं। वे अपने चरणों से इसे रौंदती इसके ऊपर चढ़ गयी थीं—मत कहिये ! उनके चरणों में तब प्राण नहीं थे और न नेत्रों ने इसे देखा था और अब—अब श्याम उनके अङ्क में है। यह नन्दनन्दन सकुशल है। राक्षस को देखते ही भागीं वे नन्दभवन की ओर।

गोपियों के ये उत्सुक नेत्र, इनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं, कन्हाई के ढूँढने से केशपाश खुल गये हैं। अङ्ग के वस्त्रों पर श्याम के शरीर में लगे असुररक्त के चिह्न हैं और चरणों के लाक्षा-द्रव को असुर के रक्त ने और अरुण कर दिया है; पर इन्हें अपना ध्यान कहाँ है ? ये तो देख रही हैं मैया की गोद में कन्हाई को।

यह कन्हाई—घुँघुराली काली अलकें भाल और मुख पर बिखर गयी हैं। नेत्रों का कज्जल कपोलों पर फैल गया है और भाल का बिन्दु आड़े-तिरछे हो चुका है। कण्ठ का केहरिनख, पद्मकाष्ठ और क्षुद्रशङ्खों तथा सीपी की माला असुर के रक्त से लथपथ हो गयी है। इनका तो पूरा शरीर ही असुररक्त से भीग गया था। इस नीलकान्त के अङ्ग पर जैसे गाढ़ रक्तचन्दन का अङ्ग-राग हुआ हो। गोपियों के वस्त्रों में यत्र-तत्र लगकर कहीं-कहीं का रक्त स्वच्छ हो गया है। कटि की मेखला, करों के कङ्कण, पदों के नूपुर, सब रुनझुन कर रहे हैं। यह चरण पटक रहा है, सिर हिला रहा है और माता का अञ्चल खींच रहा है। यह मचल रहा है, उलझ रहा है, रुष्ट हो रहा है कि मैया इसे पहिले दूध पिला दे। अभी इसे स्नान कराना है, महर्षि शाण्डिल्य आते होंगे—मङ्गल-पाठ होना है, स्वस्तिवाचन, शान्ति, हवन—सब अभी शेष है और यह मचल रहा है। मचलता जा रहा है—'दूध ! दूध !' कितना मधुर है इसके मुख का यह 'दूध !'

—❀—❀—❀—